ॐ

श्री वीतरागाय नमः

श्रेणिक चरित्र

भविष्यकालीन तीर्थनायक पद्मनाथ के पूर्वभव राजा श्रेणिक का पावन चरित्र

मूल लेखक :
भट्टारक शुभचन्द्रेव

हिन्दी अनुवाद :
स्व० पण्डित गजाधरलालजी

सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्रकाशकीय

भगवान जिनेन्द्र परमात्मा की सर्वांग रहस्यमय दिव्यध्वनि के पावन प्रवाह को गणधरदेव द्वारा सूत्र-निबद्ध किया गया। जिनेन्द्र परमात्माओं की मंगलकारी वाणी चार अनुयोग—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के रूप में उपलब्ध है जो हमें भवसन्ताप से बचने की प्रेरणा प्रदान कर रही है। प्रथमानुयोग को भी बोधिसमाधि का निधान कहा गया है। इस अनुयोग में संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति बतलाते हुए जीवों को धर्ममार्ग में लगाया जाता है। यही कारण है कि जिन वीतरागी सन्तों ने समयसारादि अध्यात्म के परमोत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की है, उन्हीं भावलिंगी सन्तों और विद्वानों ने विभिन्न प्रथमानुयोग के चरित्रग्रन्थों की रचना की है।

चरित्रग्रन्थों की रचना के उसी क्रम में भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ श्रेणिक चरित्र है। जिसे पढ़कर आत्महित की पावन प्रेरणा जागृत होती है। इस ग्रन्थ के कथानायक महाराजा श्रेणिक राजगृहीनगरी के नीतिवान राजा थे, जो कारणवशात् बौद्धमतानुयायी होकर बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु कृतसंकल्प थे। उनका विवाह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा महारानी चेलना के साथ हो गया और दोनों ने एक-दूसरे को अपने -अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया। कालान्तर में महारानी चेलना द्वारा बौद्ध गुरुओं की तथाकथित सर्वज्ञता का भण्डाफोड़ करते हुए उनकी वास्तविकता से महाराजा श्रेणिक को अवगत कराने का प्रयास हुआ लेकिन तत्समय की योग्यता एवं काललब्धि के अभाव में वह प्रयास महाराज श्रेणिक के लिये अग्नि में घी का काम कर गया, जिसकी परिणति उनके द्वारा मुनिराज यशोधर के गले में मरा हुआ सर्प डालकर सप्तम नरक की आयु के बन्ध के रूप में परिणत हुई।

तीन दिन पश्चात् रानी चेलना के साथ मुनिराज यशोधर को इसी स्थिति में शान्तभाव से देखकर महाराज श्रेणिक का हृदय परिवर्तित हुआ और वे सच्चे जैन मतानुयायी बने। यद्यपि यत्किंचित् संशय अभी भी

उनके चित्त में रह गया था, जिसका निराकरण त्रिगुप्ति मुनियों की घटनाओं के माध्यम से हुआ। तत्पश्चात् भगवान महावीर के समवसरण में क्षायिक सम्यग्दर्शन और तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध करके महाराज श्रेणिक आगामी चौबीसी में प्रथम पद्मनाभ तीर्थंकर होनेवाले हैं।

परिणामों का प्रवाह कैसा विचित्र और परिवर्तनशील है कि एक ही भव में जिनशासन के विरोधी परिणाम, वीतरागी सन्त के प्रति उपसर्ग के क्रूर परिणाम, सातवें नरक की आयु का बन्ध और उसी भव में जैनशासन का परमभक्त बनकर क्षायिक सम्यग्दर्शन की उपलब्धि, लोकोत्तर तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध और सप्तम नरक की तैंतीस सागरवाली आयु का अपकर्षण करके मात्र चौरासी हजार वर्ष की पहली नरक की आयुस्थिति का रह जाना, वह जहाँ परिणामों के परिवर्तन के चक्र का बोध कराकर परिणामों के प्रति एकत्वबुद्धि का खण्डन कराता है, वहीं उस त्रैकालिक ध्रुवसत्ता की महिमा से भी परिचित कराता है कि जो इन दोनों परिस्थितियों में एक सा रहा। निश्चित ही वह ध्रुवसत्ता ही एकमात्र विश्वसनीय और आदरणीय है। जिसका क्षण भर का अवलम्बन अधोगति से ऊर्ध्वगति की ओर ले जाता है। ऐसी-ऐसी अनेक प्रेरणाओं से भरपूर इस श्रेणिक चरित्र ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद कार्य स्व० पण्डित गजाधरलालजी शास्त्री, न्यायतीर्थ द्वारा किया गया है। जिसका प्रकाशन दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत से हुआ है। इसी ग्रन्थ को भाषा इत्यादि की दृष्टि से आवश्यक संशोधनपूर्वक सम्पादित कर पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन बिजौलियां ने प्रस्तुत किया है।

सभी जीव इस ग्रन्थ श्रेणिक चरित्र का अध्ययन कर आत्महित की दिशा में अपने कदम बढ़ायें – इसी पवित्र भावना के साथ...

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई

विषय-सूची

पहला सर्ग—	महाराज उपश्रेणिक को राज्य की प्राप्ति का वर्णन	1
दूसरा सर्ग—	महाराज उपश्रेणिक के नगर प्रवेश का वर्णन	16
तीसरा सर्ग—	कुमार श्रेणिक का राजगृहनगर से निष्कासन का वर्णन	30
चौथा सर्ग—	श्रेणिक का कुमारी नन्दश्री के साथ विवाह का वर्णन	53
पाँचवाँ सर्ग—	श्रेणिक को राज्य की प्राप्ति का वर्णन	71
छठवाँ सर्ग—	कुमार अभय का राजगृह में आगमन का वर्णन	84
सातवाँ सर्ग—	अभयकुमार की उत्तम बुद्धि का वर्णन	118
आठवाँ सर्ग—	महाराजा श्रेणिक का चेलना के साथ विवाह का वर्णन	134
नववाँ सर्ग—	महाराज श्रेणिक को मुनिराज के समागम का वर्णन	151
दसवाँ सर्ग—	मनोगुप्ति वचनगुप्ति दोनों गुप्तियों की कथा का वर्णन	183
ग्यारहवाँ सर्ग—	कायगुप्ति कथा का वर्णन	212
बारहवाँ सर्ग—	महाराज श्रेणिक को क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का वर्णन	264
तेरहवाँ सर्ग—	देव द्वारा अतिशय प्राप्ति का वर्णन	284
चौदहवाँ सर्ग—	श्रेणिक, चेलना आदि की गति का वर्णन	297
पन्द्रहवाँ सर्ग—	भविष्यत् काल में होनेवाले भगवान पद्मनाभ के पंच कल्याणक का वर्णन	313

ॐ

भट्टारक श्रीशुभचन्द्राचार्य विरचित—

❀ श्रेणिकचरित्र ❀

पहला सर्ग

महाराज उपश्रेणिक को राज्य की प्राप्ति का वर्णन

श्री वर्द्धमानमानंदं नौमि नानागुणाकरं।
विशुद्धध्यानदीप्तार्चिर्हुतकर्मसमुच्चयं॥

अर्थ — शुक्लध्यानरूपी देदीप्यमान अग्नि से समस्त कर्मों के समूह को जलानेवाले, अनेक गुणों के आकर, आनन्द के करनेवाले वर्द्धमानस्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ॥1॥

जिस भगवान ने बाल्य अवस्था में ही मुनियों का सन्देह दूर करने से श्रेष्ठ विद्वत्ता को पाकर सन्मति नाम को धारण किया, जिस भगवान ने बाल्य अवस्था में ही मायामयी सर्प के मर्दन करने से 'महावीर' नाम को प्राप्त किया, और जो बाल्य अवस्था में ही अत्यन्त बल को पाकर वीरों के वीर कहलाये; जिस भगवान ने मनुष्य लोक सम्बन्धी बड़े भारी राज्य को भी जीर्णतृण के समान समझकर छोड़ दिया एवं जो दीक्षा धारण कर समस्त लोक के वन्दनीय हुए, तथा जो महावीर भगवान केवलदर्शन को प्राप्त कर धर्मरूपी सम्पत्ति से शोभित हुए, ऐसे समस्त लोक में आनन्द

मंगल करनेवाले श्री महावीर भगवान को मैं (ग्रन्थकार) अपने हृदय में धारण करता हूँ।

तत्पश्चात् ज्ञानरूपी भूषण के धारक, धर्मरूपी तीर्थ के स्वामी श्री ऋषभदेव भगवान को लेकर पार्श्वनाथ पर्यन्त तीर्थंकरों को भी मैं अपनी इष्टसिद्धि के लिये इस ग्रन्थ के आदि में नमस्कार करता हूँ। इनसे भी भिन्न जो ज्ञानरूपी सम्पत्ति के धारी हैं, उनको भी मैं नमस्कार करता हूँ तथा ध्यान से देदीप्यमान शरीर के धारी, गणों के स्वामी एवं उत्कृष्ट स्वामी (आदि गणधर) श्री वृषभसेन गुरु को भी मैं अपने हित की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

तत्पश्चात् मुनि, अर्जिका, श्रावक और श्राविका इन चारों गणों से सेवित, धीर, समस्त पृथ्वीतल में श्रेष्ठ, जिनसे मिथ्यावादी लोग डरते हैं और जो तीनों लोक के प्रकाश करनेवाले हैं—ऐसे (अन्तिम गणधर) श्री गौतमस्वामी को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

इनके पश्चात् जिस भगवती वाणी के प्रसाद से संसार में जीव समस्त हिताहित को जानते हैं और जो श्री केवलीभगवान के मुख से प्रगट हुई, उस वाणी को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

तत्पश्चात् जो गुरु हितकारी, श्रेष्ठ वचनरूपी, सम्पत्ति से शोभित, ज्ञानरूपी भूषण के धारक, अत्यन्त तेजस्वी, अहंकाररूपी हस्ती के मर्दन करनेवाले हैं, ऐसे कर्मरूपी वैरियों के विजय से कीर्ति को प्राप्त करनेवाले, हितैषी और पुण्यरूपी मेरुपर्वत के शिखर पर निवास करनेवाले अर्थात् अत्यन्त पुण्यात्मा गुरुओं को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

तथा इस भरतक्षेत्र में आगे होनेवाले, समस्त तीर्थंकरों में उत्तम, अत्यन्त तेजस्वी, श्री पद्मनाभ तीर्थंकर को भी मैं समस्त विघ्नों की

शांति के लिये नमस्कार करता हूँ, जो पद्मनाभ भगवान उत्सर्पिणी काल के कुछ समय के व्यतीत होने पर, इस भरतक्षेत्र में पाँच प्रकार के अतिशयों से सहित, सैकड़ों इन्द्र और देवों से पूजित उत्पन्न होवेंगे और चिरकाल से विद्यमान पापरूपी वृक्ष के लिये वज्र के समान होंगे तथा चतुर्थकाल की आदि में जब समस्त धर्म मार्गों का नाश हो जाएगा, अहंकार व्याप्त होगा, उस समय जो भगवान समस्त जीवों के अज्ञानान्धकार को नाशकर मोक्ष के मार्ग के प्रकाशनपूर्वक धर्म की ओर उन्मुख करेंगे और जिस पद्मनाभ भगवान ने पहिले अपने श्रेणिक भव में (श्रेणिक अवतार में) श्री महावीरस्वामी भगवान के समीप में अनादि काल से विद्यमान मिथ्यात्व को शीघ्र ही दूर किया तथा अतिशय मनोहर निर्मल समस्त दोषों से रहित क्षायिक सम्यक्त्व को धारण किया और समस्त इन्द्रियों को संकोचकर शुद्ध सम्यग्दर्शन से विभूषित हुए; जिस भगवान ने महावीरस्वामी के सामने तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया और जिस पुण्यात्मा पद्मनाभ भगवान ने समस्त लोक में सर्वथा आश्चर्य करनेवाले आस्तिक्य गुण को प्राप्त किया।

जिस पद्मनाभ तीर्थंकर श्रेणिक अवतार के समय उनके लिये हुए प्रश्न के उत्तर में श्री महावीरस्वामी ने समस्त पापों का नाश करनेवाले इस श्रेणिकचरित्र को भी प्रकाश करनेवाले वचनों को प्रतिपादन किया और जिस पद्मनाभ भगवान के जीव श्रेणिक महाराज के प्रश्न के प्रसाद से पुराण व्रत संख्यान आदि के वर्णन के करनेवाले, समस्त विवादियों के अभिमान को नाश करनेवाले इस समय भी अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं, जो श्रेणिक महाराज महाश्रोता, महाज्ञाता, महावक्ता, धर्म की वास्तविक परीक्षा करनेवाले,

भविष्यकाल में होनेवाले समस्त तीर्थंकरों में प्रथम और मुख्य तीर्थंकर भगवान होंगे, ऐसे (श्रेणिक महाराज के जीव) श्री पद्मनाभ तीर्थंकर को भी मैं मस्तक झुकाकर नमस्कारपूर्वक उनके संसार सम्बन्धी समस्त चरित्र का वर्णन करता हूँ।

❁ ❁ ❁

लघुता वर्णन

ग्रन्थाकार शुभचन्द्राचार्य अपनी लघुता प्रगट करते हुए कहते हैं कि कहाँ तीर्थंकर का यह चरित्र, जिसके विस्तार का अन्त नहीं और कहाँ अनेक प्रकार के आवरणों से ढ़की हुई मेरी बुद्धि, तथापि जिस प्रकार सतमंजले उत्तम मकान के ऊपर चढ़ने की इच्छा करनेवाला पंगुपुरुष प्रशंसा का भाजन होता है, उसी प्रकार इस गम्भीर विस्तृत चरित्र के वर्णन करने से मैं भी प्रशंसा का भाजन हूँगा, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

यदि कोई विद्वान मुझे वावदूक अर्थात् अधिक बोलनेवाला वाचाल कहे तो भी मुझे किसी प्रकार का लाभ नहीं, क्योंकि जिस प्रकार कोयल वसन्त ऋतु में ही बोलती है और शुक सदा ही बोलता रहता है, फिर भी शुक का बोलना किसी को आश्चर्य का करनेवाला नहीं होता। उसी प्रकार यद्यपि पूर्वाचार्य परिमित तथा समय पर ही बोलनेवाले थे और मैं सदा बोलनेवाला हूँ तो भी मेरा बोलना आश्चर्यजनक नहीं। जिस प्रकार पुष्पदन्त नक्षत्र के अस्त हो जाने पर अल्प प्रभाववाले तारागण भी चमकने लगते हैं, उसी प्रकार यद्यपि पूर्वाचार्यों के सामने मैं कुछ भी जाननेवाला नहीं हूँ तो भी इस चरित्र के कहने के लिये मैं उद्धत होकर उद्योग करता हूँ।

यद्यपि शब्द शास्त्र के जाननेवाले अधिक बोलनेवाले होते हैं

तो भी वे वचन शुभ ही बोलते हैं, उसी प्रकार यद्यपि हमारी वाणी स्खलित है तो भी हम शुभ वचन बोलनेवाले हैं, इसलिए हम पूर्वाचार्यों के समान ही हैं। जिस प्रकार बड़े-बड़े जहाजवाले सुखपूर्वक अभीष्ट स्थान को चले जाते हैं और उनके पीछे-पीछे चलनेवाले छोटे जहाजवाले भी सुखपूर्वक अपने इष्ट स्थान को प्राप्त हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार पूर्वाचार्यों के पीछे-पीछे चलनेवाले हमको भी इष्टसिद्धि की प्राप्ति होगी। जिस प्रकार दरिद्री पुरुष धनिक लोगों के महलों, उनके उदय तथा उनकी अन्य अनेक विभूतियों को देखकर विषाद नहीं करते; उसी प्रकार सूत्र के अनुसार पूर्वाचार्यों की कृति को देखकर हमको भी वाक्यों की रचना में कभी भी विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि शक्ति के न होने पर ईर्षा-द्वेष करना बिना प्रयोजन का है।

जिस प्रकार सिंह ही अपने शब्द को कह सकता है परन्तु उस शब्द को कहने में मेढ़क असमर्थ है; उसी प्रकार यद्यपि पूर्वाचार्यों ने ग्रन्थों की रचना की है तो भी मैं वैसे ग्रन्थ की रचना करने में असमर्थ ही हूँ। जिस प्रकार अत्यंत छोटे देह का धारक कुन्थु जीव भी देहधारी कहा जाता है, और पर्वत के समान देह का धारण करनेवाला हाथी भी देहधारी कहा जाता है, उसी प्रकार पुराण, न्याय, काव्य आदि शास्त्रों को भलीभाँति जाननेवाला भी कवि कहा जाता है और अल्प शास्त्रों का जाननेवाला मैं भी कवि कहा जाता हूँ। मूक पुरुष भले ही उत्तम न बोलता हो तो भी वह बोलने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार यद्यपि मैं समस्त शास्त्रों के ज्ञान से रहित हूँ तो भी मैं इस चरित्र के वर्णन करने का प्रयत्न करता हूँ।

जिस प्रकार चरित्र के सुनने से पुण्य की प्राप्ति होती है, उसी

प्रकार भलीभाँति विचार कर मैंने इस श्रेणिक चरित्र का कथन करना प्रारम्भ किया है। अथवा चरित्रों के सुनने से भव्य जीवों को संसार में तीर्थंकर इन्द्र चक्रवर्ती आदि पदों की प्राप्ति होती हैं, यह भले प्रकार समझ और तीर्थंकर आदि के गुणों का लोलुपी होकर, दृढ़ श्रद्धानी हो, मैं—शुभचन्द्राचार्य, सारभूत उत्कृष्ट और पवित्र श्रेणिक चरित्र को कहता हूँ। परन्तु जिस प्रकार अधिक विस्तारवाले कच्चे धान्यों की अपेक्षा पका हुआ थोड़ा सा धान्य भी उत्तम होता है, उसी विस्तृत चरित्र की अपेक्षा संक्षिप्त चरित्र उत्तम तथा मनुष्यों के मन को हरण करनेवाला होता है। इसलिए मैं इस श्रेणिक चरित्र का संक्षिप्त रीति से ही वर्णन करता हूँ।

❁ ❁ ❁

कथा प्रारम्भ

समस्त लोक का मन हरनेवाला लाख योजन चौड़ा, गोल और तीन लोक में अत्यन्त शोभायमान जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप कमल के समान मालूम पड़ता है; क्योंकि जिस प्रकार कमल में पत्ते होते हैं, उसी प्रकार भरतादि क्षेत्ररूपी पत्ते इसमें भी मौजूद हैं। जिस प्रकार कमल में पराग होता है, उसी प्रकार नक्षत्ररूपी पराग इसमें भी मौजूद हैं। जिस प्रकार कमल में कली रहती है, उसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में मेरुपर्वतरूपी कली मौजूद है। जिस प्रकार कमल में मृणाल (सफेद तन्तु) रहता है, उसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में भी शेषनागरूपी मृणाल मौजूद है तथा जिस प्रकार कमल पर भ्रमर रहते हैं, उसी प्रकार इस जम्बूद्वीप में अनेक मनुष्यरूपी भ्रमर मौजूद हैं।

यह जम्बूद्वीप दूध के समान उत्तम निर्मल जल से भरे हुए

तालाबों से जीवों को नाना प्रकार के आनंद प्रदान करनेवाला है। यह जम्बूद्वीप राजा के समान जान पड़ता है, क्योंकि जिस प्रकार राजा अनेक बड़े-बड़े राजाओं से सेवित होता है, उसी प्रकार यह द्वीप भी अनेक प्रकार के महीधरों से अर्थात् पर्वतों से सेवित है। जिस प्रकार राजा कुलीन उत्तम वंश का होता है, उसी प्रकार यह जम्बूद्वीप भी कुलीन अर्थात् (कु) पृथ्वी में लीन है और जिस प्रकार का राजा शुभ स्थितिवाला होता है, उसी प्रकार यह भी अच्छी तरह स्थित है, तथा राजा जिस प्रकार रामालीन अर्थात् स्त्रियोंकर संयुक्त होता है, उसी प्रकार यह भी रामालीन, अनेक वन, उपवनों से शोभित है।

जिस प्रकार राजा महादेशी अर्थात् बड़े-बड़े देशों का स्वामी होता है, उसी प्रकार यह भी महादेशी अर्थात् विस्तीर्ण है। यद्यपि यह द्वीप नदीनजड़संसेव्य: अर्थात् उत्कट जड़ मनुष्यों से सेवित है तथापि 'नदीनजड़संसेव्य:' अर्थात् समुद्रों के जलों से वेष्टित है, इसलिए यह उत्तम है। यद्यपि यह जम्बूद्वीप, निम्नगास्त्री विराजित:, अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्रियोंकर सहित है, तथापि 'अनिम्नगास्त्री-विराजित:' अर्थात् पतिव्रता स्त्रियों कर शोभित है, इसलिए यह उत्तम है। यद्यपि यह द्वीप द्विजराजाश्रित: अर्थात् वरुणसंकर राजाओं के आधीन है तो भी उत्तम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का निवास स्थान होने के कारण यह उत्तम ही है और पर्वतों से मनोहर, पुण्यवान उत्तम पुरुषों का निवासस्थान, यह जम्बूद्वीप अनेक प्रकार के उत्तम तालाबों से, तथा बड़े-बड़े कुण्डों से तीनों लोक में शोभित है।

जिस जम्बूद्वीप की उत्तम गोलाई देखकर लज्जित व दु:खित हुआ यह मनोहर चन्द्रमा दिन-रात आकाश में घूमता-फिरता है

तथा जिस प्रकार लोक-अलोक का मध्य भाग है, उसी प्रकार यह जम्बूद्वीप भी समस्त द्वीपों में तथा तीन लोक के मध्य भाग में है, ऐसा बड़े-बड़े यतीश्वर कहते हैं।

इस जम्बूद्वीप के मध्य में अनेक शोभाओं से शोभित, गले हुए सोने के समान देहवाला, देदीप्यमान, अनेक कान्तियों से व्याप्त, सुवर्णमय मेरु पर्वत है। यह मेरु साक्षात् विष्णु के समान ज्ञात होता है। क्योंकि जिस प्रकार विष्णु के चार भुजा हैं, उसी प्रकार इस मेरुपर्वत के चार गजदन्तरूपी चार भुजाएँ हैं और जिस प्रकार विष्णु का नाम अच्युत है, उसी प्रकार यह भी अच्युत अर्थात् नित्य है। जिस प्रकार विष्णु श्री समन्वित अर्थात् लक्ष्मी सहित हैं, उसी प्रकार यह मेरुपर्वत भी श्री समन्वित अर्थात् नाना प्रकार की शोभाओं से युक्त है।

इस मेरुपर्वत पर सुभद्र, भद्रशाल तथा स्वर्ग के नन्दनवन के समान नन्दनवन और अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि से सुगन्धित करनेवाले सौमनस्य वन है। यह मेरु अपाण्डु अर्थात् सफेद न होकर भी पाण्डुशिला का धारण सोलह अकृत्रिम चैत्यालयों से युक्त अपनी प्रसिद्धि से सबको व्याप्त करनेवाला अर्थात् अत्यन्त प्रसिद्ध और नाना प्रकार के देवों से युक्त हैं। बड़े भारी ऊँचे परकोटे को धारण करनेवाला, सुवर्णमय और नानाप्रकार के रत्नों से शोभित, यह मेरु, निराधार स्वर्ग के टिकने के लिये मानो एक ऊँचा खम्भा ही है, ऐसा जान पड़ता है।

यह मेरुपर्वत तीनों लोक में अनादिनिधन, अकृत्रिम, स्वभाव से ही सिद्ध और अनेक पर्वतों का स्वामी अपने आप ही सुशोभित है। यह पर्वत अत्युत्तम शोभा को धारण करनेवाले जम्बूद्वीप के

मध्यभाग में अनुपम सुख मोक्ष को जाने की इच्छा करनेवाले भव्य जीवों को मोक्ष के मार्ग को दिखाता हुआ, और जिनेन्द्र भगवान के गन्धोदक से पवित्र हुआ, एक महान तीर्थपने को प्राप्त हुआ है। चारणऋद्धि के धारण करनेवाले मुनियों से सदा सेवनीय है और समस्त पर्वतों का राजा है। श्रेष्ठ कल्पवृक्षों के फूलों से स्वर्गलोक को भी जीतनेवाले इस मेरुपर्वत पर स्वर्ग को छोड़कर इन्द्र भी अपनी इन्द्राणियों के साथ क्रीड़ा करने को आते हैं।

यह मेरुपर्वत अधिक ऊँचा होने के कारण अत्युच्च कहा गया है, स्वयंसिद्ध होने से अकृत्रिम कहा गया है और पृथ्वी को धारण करनेवाला होने के कारण धाराधीश अर्थात् पृथ्वी का स्वामी कहा गया है। इस मेरुपर्वत के ऊपर विराजमान चैत्यालयों के और स्तुति करनेयोग्य परमात्मा के ध्यान करनेवाले योगीन्द्रों के स्मरण से मनुष्यों के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इस मेरुपर्वत के माहात्म्य का हम कहाँ तक वर्णन करें, इस मेरुपर्वत के माहात्म्य का विस्तार बड़े-बड़े करोड़ों ग्रन्थों में भले प्रकार वर्णन किया गया है।

इसी मेरुपर्वत की दक्षिण दिशा में जहाँ उत्तम धान्य उपजते हैं, मनोहर अनेक प्रकार की विद्याओं से पूर्ण और सुखों का स्थान भरतक्षेत्र है। यह भरतक्षेत्र साक्षात् धनुष के समान है, क्योंकि जिस प्रकार धनुष में बाण होते हैं, उसी प्रकार इसमें गंगा, सिन्धु दो नदी रूपी बाण हैं। इस भरतक्षेत्र के मध्य भाग में रूपाचल नाम का विशाल पर्वत है जो चारों ओर से सिन्धु नदी से वेष्ठित है और जिसकी दोनों श्रेणी सदा रहनेवाले विद्याधरों से भरी हुई हैं। यह भरतक्षेत्र अत्यन्त पवित्र है और गंगा, सिन्धु नाम की दो नदियों से

तथा विजयार्द्ध पर्वत से छह खण्डों में विभक्त अतिशय शोभा को धारण करता है।

इसी भरतक्षेत्र में तीन खण्डों से व्याप्त, पुण्यात्मा भव्यजीवों से पूर्ण, दक्षिण भाग में आर्यखण्ड शोभित है। इस देदीप्यमान आर्यखण्ड में सुख तथा दु:ख से व्याप्त, पुण्य-पापरूपी फल को धारण करनेवाला सुखमा-सुखमादि छह कालों का समूह सदा प्रवर्तमान रहता है।

इन छह प्रकार के कालों में प्रथम काल सुखमा-सुखमा है, जो कि शरीर, आहार आदि से देवकुरु भोगभूमि के समान है। दूसरा काल सुखमा नाम का है, जिसमें मनुष्य के शरीर की ऊँचाई दो कोश के प्रमाण की रहती है। यह काल, स्थिति, आहार आदिरूप से हरिवर्ष क्षेत्र के समान है तथा शुभ है। तीसरा काल सुखमा-दुशमा नामक है, इसमें मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई एक कोश के प्रमाण है। इसकी रचना जघन्य भोगभूमि के समान होती है। चौथा काल दुखमा-सुखमा है, जिसकी रचना विदेहक्षेत्र के समान होती है। तीर्थंकर चक्रवर्ती बलभद्र नारायण आदि महापुरुषों की उत्पत्ति भी इसी काल में होती है। पाँचमा काल दुखमा है, जिसमें पुण्य तथा पाप शुभाशुभगति की प्राप्ति होती है, यह दु:खों का भण्डार है तथा इस पंचम काल में मनुष्यों की आयु शरीर धर्म सब कम हो जाते हैं। इसके पश्चात् धर्म से रहित, पापस्वरूप, दुष्ट मनुष्यों से व्याप्त, और थोड़ी आयुवाले जीवोंसहित, छठवाँ दु:खम-दु:खम काल आता है।

इस प्रकार मोक्षमार्ग साधन करने के लिये दीपक के समान, इस आर्यखण्ड में उक्त प्रकार के काल सदा प्रवर्तमान रहते हैं।

ऐसा यह आर्यखण्ड नाना प्रकार के बड़े-बड़े देशों से व्याप्त, पुर और ग्रामों से सुशोभित, बहुत से मुनियों से पूर्ण और पुण्य की उत्पत्ति का स्थान अत्यन्त शोभायमान है। इस आर्यखण्ड के मध्य में जिस प्रकार शरीर के मध्यभाग में नाभि होती है, उसी प्रकार इस पृथ्वी तल के मध्यभाग में मगध नामक एक देश है, जो अनेक जनों से सेवित और विशेषतया भव्यजनों से सेवित हे। इस मगध देश में धन, धान्य और गुणों के स्थान मनुष्यों से व्याप्त, प्रकट रीति से सम्पत्ति के धारी अनेक ग्राम पास-पास बसे हुए हैं। इस मगधदेश में फल की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को उत्तमोत्तम फलों को देनेवाले उत्कृष्ट कल्पवृक्षों की शोभा को धारण करते हैं। उस देश में वहाँ के मनुष्य पके हुए धान्यों के खेतों में गिरते हुये सूवों को कल्पवृक्ष के फलों के समान जानते हैं। वहाँ अत्यन्त निर्मल जल से भरे हुए, काले-काले हाथियों से व्याप्त सरोवर ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों स्वयं मेघ ही आकर उनकी सेवा कर रहे हैं। वहाँ के तालाब साक्षात् कृष्ण के समान मालूम पड़ते हैं, क्योंकि जिस प्रकार श्रीकृष्ण कमलाकर अर्थात् लक्ष्मी के (कर) हाथ सहित हैं, उसी प्रकार तालाब भी कमलाकर अर्थात् कमलों से भरे हुए हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण सुमनसों (देवों) से मण्डित हैं, उसी प्रकार तालाब भी (सुमन से) अर्थात् नाना प्रकार के फूलों से पूर्ण हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण हस्तियों के मद को चकनाचूर करनेवाले हैं अर्थात् इनके पास आते ही हस्ति शान्त हो जाते हैं और जिस देश में, वन में, पर्वत के मस्तकों पर, ग्राम में, देश में, पुर में, खोलारों में, नदियों के तटों पर, सदा मुनिगण देखने में आते हैं और धर्म के उपदेश में तत्पर, निर्मल, असंख्यात गणधर, बड़े-बड़े संघों के साथ दृष्टिगोचर होते हैं, उस देश में कहीं पर अनेक

प्रकार के विमानों में बैठे हुए उत्तमदेव, अपनी-अपनी अत्यंत सुन्दर देवांगनाओं के साथ केवली भगवान की पूजा करने के लिये आते हैं और कहीं पर मनोहर बागों में, पुण्यात्मा पुरुषों द्वारा प्राप्त करने योग्य अपनी मनोहर स्वर्गपुरी को छोड़कर देवतागण अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा करते हैं। वहाँ गोपालों की रमणियों द्वारा गाये हुवे मनोहर गीतरूपी मन्त्रों से मन्त्रित तथा उनके गीतों में दत्तचित्त और भयरहित हिरणों का समूह निश्चल खड़ा रहता है और भागने पर भी नहीं भागता है। वहाँ जब तालाबों में प्यास से अत्यन्त व्याकुल हो अनेक हाथी पानी पीने आते हैं, तब हथिनियों को देखकर उनके विरह से पीड़ित होकर अपना जीवन छोड़ देते हैं। यह मगधदेश नाना प्रकार के उत्तमोत्तम तीर्थों सहित, नाना प्रकार के देव विद्याधरों से सेवित, और विशेष रीति से अनेक मुनिगणों से शोभित है, इसका कहाँ तक वर्णन करें।

इसी मगधदेश में राजघरों से शोभित, अनेक प्रकार की शोभाओं से मण्डित, धन से पूर्ण तथा अनेक जनों से व्याप्त, राजगृह नामक एक नगर है। राजगृह नगर में न तो अज्ञानी मनुष्य हैं, और न शीलरहित स्त्रियाँ हैं, और न निर्धन पुरुष बसते हैं। वहाँ के पुरुष उत्तम कुबेर के समान ऋद्धि के धारण करनेवाले और स्त्रियाँ देवांगनाओं के समान हैं। जगह-जगह पर कल्पवृक्षों के समान वृक्ष हैं और स्वर्गों के विमानों के समान सुवर्ण के घर बने हुए हैं। वहाँ का राजा इन्द्र के समान अत्यन्त बुद्धिमान है। वहाँ ऊँचे-ऊँचे धान्यों के वृक्ष, ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो वे मूर्तिमान अत्यन्त शोभा हैं और अपने पराक्रम से इस लोक को भलीभाँति जीतकर स्वर्ग लोक को जीतने की इच्छा से स्वर्ग लोक को जा रहे हैं।

उस नगर के रहनेवाले भव्यजीव मनुष्य नाना प्रकार के व्रतों से भूषित होकर केवलज्ञान को प्राप्त कर तथा समस्त कर्मों के निर्मूलन कर परमधाम मोक्ष को प्राप्त होते हैं। और वहाँ की स्त्रियों के प्रेमी अनेक पुरुष भी व्रतों के सम्बन्ध से श्रेष्ठ चारित्र को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं, क्योंकि पुण्य का ऐसा ही फल है। वहाँ के कितने ही सुख के अर्थी भव्यजीव उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन प्रकार के पात्रों को दान देकर भोगभूमि नामक स्थान को प्राप्त होते हैं और जीवनपर्यन्त सुख से निवास करते हैं। राजगृह नगर के मनुष्य ज्ञानवान हैं, इसलिए वे विशेष रीति से दान तथा पूजा में ही ईर्ष्या-स्पर्द्धा करना चाहते हैं और ज्ञान में (कला-कौशलों में) कोई किसी के साथ ईर्ष्या तथा द्वेष नहीं करते। इसमें जिनमन्दिर तथा राजमन्दिर सदा जय-जय शब्दों से पूर्ण, उत्तम सभ्य मनुष्यों से आकीर्ण, याचकों को नाना प्रकार के फल देनेवाले शोभित होते हैं।

राजगृह नगर का स्वामी नाना प्रकार के शुभ लक्षणों से युक्त शरीर और देदीप्यमान यश का धारण करनेवाला 'उपश्रेणिक' नाम का राजा था। वह उपश्रेणिक राजा अत्यन्त ज्ञानवान, कल्पवृक्ष के समान दानी, चन्द्रमा के समान तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी, इन्द्र के समान परम ऐश्वर्यशाली, कुबेर के समान धनी और समुद्र के समान गम्भीर था।

इसके अतिरिक्त उसमें और भी अनेक प्रकार के गुण थे। वह त्यागी था, भोगी था, सुखी था, धर्मात्मा था, दानी था, वक्ता था, चतुर था, शूर था, निर्भय था, उत्कृष्ट था, धर्मादि उत्तम कार्यों में मान करनेवाला ज्ञानवान और पवित्र था, इसीलिए अनेक राजाओं

से सेवित उपश्रेणिक महाराज को न तो चतुरंग सेना से ही कुछ काम था और न अपने बल से ही कुछ प्रयोजन था।

महाराज उपश्रेणिक के साक्षात् इन्द्र की इन्द्राणी के समान, जो उत्तम रूप तथा लावण्य से युक्त थी, इन्द्राणी नाम की पटरानी थी। वह महारानी इन्द्राणी, अनेक प्रकार के गुणों से युक्त होने के कारण अपने पति को सदा प्रसन्न रखती थी। उसके स्तन, अमृतकुम्भ के समान मोटे, कामदेव को जिलानेवाले, उत्तम हाररूपी सर्प से शोभित दो कलशों समान जान पड़ते थे और उसके उत्तम स्तनों के सम्बन्ध से मदन ज्वर तो कभी होता ही नहीं था। जैसे रसायन के खाने से ज्वर दूर हो जाता है, वैसे ही उसके स्तनों के रसायन से मदन ज्वर भी नष्ट हो जाता था। वह इन्द्राणी अत्यन्त पवित्र और नाना प्रकार की शोभाओं से सहित, उपश्रेणिक राजा को आनन्द देती थी तथा वह राजा भी इस पटरानी के साथ सदा भोगविलासों को भोगता था।

इस प्रकार परस्पर अतिशय प्रेमयुक्त, अत्यन्त निर्मल सुखरूपी सरोवर में मग्न, अत्यन्त पवित्र और महान, जिनके चरणों की वन्दना बड़े-बड़े राजा आकर करते थे। चारों ओर जिनकी कीर्ति फैल रही थी, और समस्त प्रकार के दु:खों से रहित तथा पुण्य मूर्ति वे दोनों राजा-रानी इन्द्र के समान पुण्य के फलस्वरूप राजलक्ष्मी को भोगते थे।

राजा उपश्रेणिक ने राज्य को पाकर उसे चिरकाल पर्यन्त भोग किया, समस्त पृथ्वी को उपद्रवों से रहित कर दिया। उनके राज्य में किसी प्रकार के वैरी नहीं रह गये। उनके लिये ऐसे राज्य में

महारानी इन्द्राणी के साथ स्थित होना ठीक ही था क्योंकि भव्य जीवों को धर्म की कृपा से राज्यसम्पदा की प्राप्ति होती है, धर्म (पुण्य) से उत्तमोत्तम स्त्रियाँ तथा चक्रवर्ती की लक्ष्मी मिलती है और धर्म से ही स्वर्ग के विमानों के समान उत्तमोत्तम घर, आज्ञाकारी उत्तम पुत्र भी मिलते हैं, इसलिए भव्यजीवों को श्री जिनेन्द्र भगवान के सारभूत उत्कृष्ट धर्म की अवश्य ही आराधना करनी चाहिए।

इस प्रकार भविष्य काल में होनेवाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के पूर्व भव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में महाराज उपश्रेणिक को राज्य की प्राप्ति का वर्णन करनेवाला पहला सर्ग समाप्त हुआ।

दूसरा सर्ग

महाराज उपश्रेणिक के नगर प्रवेश का वर्णन

पद्म की शोभा को धारण करनेवाले जिनेश्वर, तथा भविष्य में तीर्थों की प्रवृत्ति करनेवाले ईश्वर, श्री पद्मनाभ भगवान को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

अनन्तर इसके उन दोनों राजा-रानी के महान पुण्य के उदय से, अनेक सुखों का स्थान, भले प्रकार माता-पिता को सन्तुष्ट करनेवाला, परम ऋद्धिधारक, श्रेणिक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। कुमार श्रेणिक में सर्वोत्तम गुण थे, उसका रूप शुभ था और अतिशय निर्मल था। वह अत्यन्त भाग्यवान और लक्ष्मीवान था। कुमार श्रेणिक के कामिनी स्त्रियों के मन को लुभानेवाले काले केश ऐसे जान पड़ते थे, मानों उसके मुख कमल की सुगन्धि से सर्प ही इकट्ठे हुए हैं। उनका विस्तीर्ण सुन्दर और अतिशय मनोहर तिलक से शोभित ललाट ऐसा मालूम पड़ता था, मानो ब्रह्मा ने तीनों लोक के आधिपत्य का पट्टक ही रचा है।

बालक के दोनों नेत्र नीलकमल के समान विशाल अतिशय शोभित थे। दोनों नेत्रों की सीमा बाँधने के लिये उनके मध्य में अतिशय मधुर सुगन्धि को ग्रहण करनेवाली नासिका शोभित थी। स्फुरायमान दीप्तिधारी बालक श्रेणिक का मुख यद्यपि चन्द्रमा के समान देदीप्यमान था, तथापि निर्दोष, सदा प्रकाशमान, और समस्त कलंकों से रहित ही था। विशाल एवं अतिशय मनोहर हारों से भूषित उसका वक्ष:स्थल राज्यभार के धारण करने के लिये विस्तीर्ण था और अनेक प्रकार की शोभाओं से अत्यंत सुशोभित था। कामिनी स्त्रियों के फँसाने के लिये जाल समान उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी

जान पड़ती थी मानों याचकों को अभीष्ट दान की देनेवाली दो मनोहर कल्पवृक्ष की शाखा ही हैं। उसके कटिरूपी वृक्ष पर, करधनी में, लगी हुई छोटी-छोटी घंटियों के ब्याज से शब्द करता हुआ, कामदेव सहित, करधनीरूपी महा सर्प निवास करता था। श्रेणिक के शुभ आकृति के धारक, अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम लक्षणों से युक्त और अतिशय कान्ति के धारण करनेवाले दोनों चरण अत्यन्त शोभित थे। उस पुण्यात्मा एवं भाग्यवान कुमार श्रेणिक के अतिशय मनोहर शरीररूपी महल में सम्पत्ति के साथ विवेक बढ़ता था और अनेक प्रकार की राजसम्बन्धी कलाओं के साथ ज्ञानवृद्धि को प्राप्त होता था।

यद्यपि कुमार श्रेणिक बालक था, तथापि बुद्धि की चतुराई से वह बड़ा ही था और सज्जनों का मान्य था। वह प्रत्येक कार्य में चतुर और सौभाग्य, बुद्धि आदि असाधारण गुणों का भी आकर था। उसने बिना परिश्रम के शीघ्र ही शास्त्ररूपी समुद्र को पार कर लिया था और क्षत्रिय धर्म की प्रधानता के कारण अनेक प्रकार की शस्त्रविद्याएँ भी सीख ली थीं। भाग्यशाली जो बालक श्रेणिक अनेक प्रकार के गुणों से मण्डित उत्तम ज्ञान, बुद्धि से भूषित था, उसके हाथ दान से शोभित थे। इस प्रकार यौवन अवस्था को प्राप्त, अत्यन्त बलवान श्रेणिक अपनी सुन्दरता आदि सम्पदाओं से सम्पन्न था, जिसे देख उसके माता-पिता अत्यन्त तुष्ट रहते थे। श्रेणिक के अतिरिक्त महाराज उपश्रेणिक के पाँच सौ पुत्र और भी थे जो अत्यन्त पुण्यात्मा और उत्तमोत्तम शुभ लक्षणों से भूषित थे।

महाराज उपश्रेणिक के देश के पास ही उसका शत्रु चन्द्रपुर का राजा सोमशर्मा रहता था, जो अपने पराक्रम के सामने समस्त जगत

को तुच्छ समझता था। जिस समय महाराज उपश्रेणिक को यह पता लगा कि चन्द्रपुर का स्वामी सोमशर्मा अपने सामने किसी को पराक्रमी नहीं समझता, तो उन्होंने शीघ्र ही उसे अपने आधीन करने का विचारकर अनेक उपायों से उसे अपने आधीन तो कर लिया, परन्तु उसे पुनः ज्यों का त्यों राज्याधिकार दे दिया। सोमशर्मा जब महाराज उपश्रेणिक से हार गया तो उसको बहुत दुःख हुआ और उसने मन में यह बात ठान ली कि महाराज उपश्रेणिक से इस अपमान का बदला किसी न किसी समय अवश्य लूँगा। तदनुसार उसने एक दिन यह चाल चली कि सुवर्ण, धन, धान्य, मनोहर वस्त्र और उत्तमोत्तम आभूषण की भेंट महाराज उपश्रेणिक की सेवा में भेजी, उसके साथ एक वीत नाम का घोड़ा भी भेजा। यह घोड़ा देखने में सीधा, परन्तु सर्वथा अशिक्षित, अतिशय दुष्ट एवं अत्यन्त ही धोखेबाज था।

जिस समय महाराज उपश्रेणिक ने चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा की भेजी हुई भेंट को देखा तो वे सोमशर्मा के मन के भीतरी अभिप्राय को न समझ, उसके विनय भाव पर अतिशय मुग्ध होकर उसकी बारम्बार प्रशंसा करने लगे और भेंट से अपने को धन्य भी मानने लगे।

ऊपर से ही मनोहर घोड़े को देख वे मुक्त कण्ठ से यह कहने लगे कि अहो! यह राजा सोमशर्मा का भेजा हुआ घोड़ा सामान्य घोड़ा नहीं है किन्तु समस्त घोड़ों का शिरोमणि अश्वरत्न है। मेरी घुड़साल में ऐसा मनोहर घोड़ा कोई है ही नहीं, ऐसा कहते-कहते उस घोड़े की परीक्षा करने के लिये वे अपने आप उस पर सवार हो गये और चढ़कर मार्ग में अनेक प्रकार की शोभाओं को देखते हुए वन की ओर रवाना हुए।

जिस समय महाराज उपश्रेणिक वन के मध्यभाग में पहुँचे और आनन्द में आकर घोड़े के कोड़ा लगाया, फिर क्या था? कोड़ा लगते ही वह अशिक्षित एवं दुष्ट घोड़ा उछलकर बात ही बात में ऐसे भयंकर वन में निर्भयता से प्रवेश कर गया, जहाँ अजगरों के फूफ्कार शब्द हो रहे थे, रीछ भी भयंकर शब्द कर रहे थे, बड़े-बड़े हाथी भी चिंघाड़ रहे थे और बन्दर वृक्षों से गिर पड़ने पर भयंकर चित्कार शब्द कर रहे थे एवं जहाँ-तहाँ भलीभाँति के पक्षियों के भी शब्द सुनाई पड़ते थे। घोड़े ने उस वन में प्रवेश कर, महाराज उपश्रेणिक को ऐसे अन्धकारमय भयंकर गड्ढे में, जहाँ सूर्य की किरण प्रवेश नहीं कर सकती थी, पटक दिया और बात की बात में दृष्टि से लुप्त हो गया।

अतिशय बलवान पुरुषों को भी दुर्बल मनुष्यों के साथ कदापि बैर नहीं करना चाहिए क्योंकि दुर्बल के साथ भी किया हुआ बैर मनुष्यों को इस संसार में अनेक प्रकार का अचिन्तनीय कष्ट देता है।

अहा! दुःखों का समूह कैसा आश्चर्य करनेवाला है। देखो! कहाँ तो मगधदेश का स्वामी राजा उपश्रेणिक और कहाँ अनेक प्रकार के भयंकर दुःखों को देनेवाला महान वन? तथा कहाँ अतिशय मनोहर राजगृहनगर? कहाँ अन्धकारमय गड्ढा? क्या किया जाए, बैर का फल ही ऐसा है, इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे उभयलोक में दुःख देनेवाले इस परम बैरी, बैर-विरोध को अपने पास कदापि न फटकने दें।

जब लोगों ने महाराज उपश्रेणिक के लापता होने का समाचार सुना तो सेना में, देश में, अनेक जनों से सर्वथा पूर्ण राजगृहनगर में एवं अन्यान्य नगरों में भी शोक और चिन्ता छा गयी और हाहाकार

मच गया। रणवास की समस्त रानियाँ यह समाचार सुनते ही मूर्च्छित हो गईं और महाराज के वियोग में एकदम करुणाजनक रुदन करने लगीं। जितने केशविन्यास हार आदिक शृंगार थे, उन सबको उन्होंने तोड़कर अलग फैंक दिये। चतुरंगिनी सेना ने और महाराज उपश्रेणिक के पुत्रों ने महाराज को ढूँढ़ने के लिये अनेक प्रयत्न किये किन्तु कहीं पर भी उनका पता न लगा। किन्तु 'णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं' इत्यादि महामन्त्र का ध्यान करते हुए महाराज उपश्रेणिक अन्धकारमय एवं दु:खों के देनेवाले उसी गड्ढे में पड़े अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते रहे।

जिस वन के भीतर भयंकर गड्ढे में महाराज उपश्रेणिक पड़े थे, उसी वन में एक अत्यन्त मनोहर भीलों की पल्ली थी। उस पल्ली का स्वामी, समस्त भीलों का अधिपति क्षत्रिय यमदण्ड नाम का राजा था। उसकी विद्युन्मती पटरानी अतिशय मनोहर और रूप एवं सौभाग्य की खान थी। इन दोनों राजा-रानी के चन्द्रमा के समान उत्तम मुखवाली तिलकवती नाम की एक कन्या थी।

क्रीड़ा करने का अत्यन्त प्रेमी राजा यमदण्ड, इधर-उधर अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं को करता हुआ उस गड्ढे के पास आया, जिस गड्ढे में महाराज उपश्रेणिक पड़े हुए नाना प्रकार के कष्टों को भोग रहे थे। गड्ढे के अत्यन्त समीप आकर जब महाराज उपश्रेणिक को उसने भयंकर गड्ढे में पड़ा देखा तो वह आश्चर्य से अपने मन में यह विचार करने लगा कि यह कौन है ? यह कैसे इस दशा को प्राप्त हुआ ? और इसे किसने इस प्रकार का भयंकर कष्ट दिया है ?

कुछ समय इसी प्रकार विचार करते-करते जब उसको यह बात ज्ञात हो गई कि ये राजगृहनगर के स्वामी महाराज उपश्रेणिक

हैं तो वह शीघ्र ही अपने घोड़े पर से उतर पड़ा और अत्यन्त विनय से उसने महाराज उपश्रेणिक के दोनों चरणों को नमस्कार किया और विनयपूर्वक उनके पास बैठकर यह पूछने लगा कि—हे प्रभो! किस दुष्ट बैरी ने आपको इस भयंकर गड्ढे में लाकर गिरा दिया? और हे मगधेश! ऐसी भयंकर दशा को आप किस कारण से प्राप्त हुए? कृपाकर यह समस्त समाचार सुनाकर मुझे अनुग्रहीत करें। आपकी इस दु:खमय अवस्था को देखकर मुझे अत्यन्त दु:ख है।

जिस समय महाराज उपश्रेणिक ने भीलों के स्वामी यमदण्ड का इस प्रकार भक्ति भरा वचन सुना तो उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन्होंने प्रिय वचनों में राजा यमदण्ड के प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया और कहा—मित्र! यदि तुमको अत्यन्त आश्चर्य करनेवाले मेरे वृत्तान्त के सुनने की अभिलाषा है तो ध्यानपूर्वक सुनो, मैं कहता हूँ—

मेरे देश के समीप देश में रहनेवाला सोमशर्मा नाम का एक चन्द्रपुर का स्वामी है। वह अपने पराक्रम के सामने किसी को भी पराक्रमी नहीं समझता था और बड़े अभिमान से राज्य करता था। जिस समय मुझे उसके इस प्रकार के अभिमान का पता लगा तो मैंने अपने पराक्रम से बात की बात में उसका अभिमान ध्वंस कर दिया और उसे अपना सेवक बनाकर पुन: मैंने ज्यों का त्यों उसे चन्द्रपुर का स्वामी बना दिया। यद्यपि उसने मेरी आधीनता स्वीकार तो कर ली, परन्तु उसने अपने कुटिल भावों को नहीं छोड़ा; इसलिए एक दिन उस दुष्ट ने नाना प्रकार के आभूषण, उत्तम वस्त्र एवं धन-धान्य, सुवर्ण आदि पदार्थ मेरी भेंट के लिये भेजे, और इन पदार्थों के साथ एक घोड़ा भी भेजा।

यद्यपि वह घोड़ा ऊपर से मनोहर था, परन्तु अशिक्षित एवं दुष्ट था। जिस समय उसकी भेजी हुई भेंट मैंने देखी तो मैं उसके कुटिलभाव को तो समझ नहीं सका किन्तु बिना विचारे ही मैं उसके इस प्रकार के बर्ताव को उत्तम बर्ताव समझकर प्रसन्न हो गया। भेंट में भेजे हुए उन समस्त पदार्थों में मुझे घोड़ा बहुत ही उत्तम मालूम पड़ा, इसलिए बिना विचारे ही उस घोड़े की परीक्षा करने के लिये मैं उस पर सवार होकर वन की ओर चल पड़ा। जिस समय मैं वन में आया तो मैंने तो आनन्द में आकर उसके कोड़ा मारा किन्तु वह घोड़ा कोड़े के इशारे को न समझकर एकदम ऊपर उछला और मुझे इस भयंकर गड्ढे में पटककर न जाने कहाँ चला गया? इसी कारण मैं इस गड्ढे में पड़ा हुआ इस प्रकार के कष्टों को भोग रहा हूँ।

जब महाराज उपश्रेणिक ने अपना समस्त वृत्तान्त सुना दिया तो उन्होंने राजा यमदण्ड से भी पूछा कि हे भाई! तुम कौन हो और कैसे तुम्हारा यहाँ आना हुआ और तुम्हारी क्या जाति है?

महाराज उपश्रेणिक के समस्त वृत्तान्त को जानकर और भले प्रकार उनके प्रश्न को भी सुनकर राजा यमदण्ड ने विनयभाव से उत्तर दिया कि हे प्रभो! समस्त भीलों का स्वामी मैं राजा यमदण्ड हूँ और क्रीड़ा करता-करते मैं इस स्थान पर आ पहुँचा हूँ। मेरी जाति क्षत्रिय है और अपने राज्य से भ्रष्ट होकर मैं इस पल्ली में रहता हूँ, इसलिए हे महाभाग! कृपाकर आप मेरे घर पधारिये और अपने चरणकमलों से मेरे घर को पवित्र कर मुझे अनुग्रहीत कीजिये।

महाराज उपश्रेणिक ने तो अपने दु:ख को दूर करने के लिये उसे विनीत समझकर शीघ्र ही उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर

लिया और उसके साथ-साथ उसके घर की ओर चल दिया।

यद्यपि राजा यमदण्ड क्षत्रियवंशी राजा था और उसका आचार विचार उत्तम गृहस्थों के समान होना चाहिए था किन्तु उसका सम्बन्ध अधिक दिनों से भीलों के साथ हो गया था, इसलिए उसकी क्रियाएँ गृहस्थों की क्रियाओं के समान नहीं रही थीं-भीलों की क्रियाओं के समान हो गईं थीं। महाराज उपश्रेणिक ने जब उसके घर जाकर उसके गृहस्थाचार को देखा तो वे एकदम दंग रहे गये और राजा यमदण्ड से कहा कि हे यमदण्ड! यद्यपि तुम क्षत्रिय राजा हो, तथापि अब तुम्हारा गृहस्थाचार क्षत्रियों के समान नहीं रहा है और मैं शुद्ध गृहस्थाचारपूर्वक बने हुए भोजन को ही ग्रहण कर सकता हूँ। पवित्र एवं विशुद्ध ज्ञानी होकर मैं आपके घर में भोजन नहीं कर सकता।

जिस समय राजा यमदण्ड ने महाराज उपश्रेणिक के इस प्रकार के वचनों को सुना तो उसने तत्क्षण इस भाँति विनयपूर्वक कहा— हे प्रभो! यदि आप ऐसे गृहस्थाचार संयुक्त मेरे घर में भोजन करना नहीं चाहते हैं तो आप घबड़ायें नहीं, गृहस्थाचारपूर्वक भोजन के लिये मेरे यहाँ दूसरा उपाय भी मौजूद है। वह उपाय यही है कि मेरे अत्यन्त शुभ लक्षणों को धारण करनेवाली, भले प्रकार गृहस्थाचार में प्रवीण, एक तिलकवती नाम की कन्या है, वह कन्या शुद्ध क्रियापूर्वक भोजन-पानी आदि से आपकी सेवा करेगी।

भीलों के स्वामी यमदण्ड के इस प्रकार के विनम्र वचनों को सुनकर मगध देशाधिपति महाराज उपश्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी दिन से अपने पिता की आज्ञा से कन्या तिलकवती ने भी महाराज उपश्रेणिक की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी। कभी वह

कन्या एक प्रकार का और कभी दूसरे प्रकार का मिष्ट भोजन बनाकर महाराज को प्रसन्न करने लगी। कभी महाराज के रोग को भलीभाँति पहिचान कर वह उत्तम औषधियुक्त भोजन उनको कराती और कभी अतिशय मधुर शीतल जल से महाराज के मन को सन्तुष्ट करती। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद औषधियुक्त भोजनों से विशेषतया उस कन्या के हाथ से भोजन करने से महाराज उपश्रेणिक का स्वास्थ्य ठीक हो गया तथा महाराज उपश्रेणिक पूर्व की तरह ज्यों के त्यों निरोग हो गये।

जब तक महाराज सरोग रहें, तब तक तो मैं किस प्रकार निरोग हूँगा? मेरा यह रोग किस रीति से नष्ट होगा? इत्यादि चिन्ता सिवाय महाराज के चित्त में किसी विचारने स्थान नहीं पाया, किन्तु निरोग होते ही निरोगता के साथ-साथ उस कन्या के स्नेह, सेवा, रूप एवं सौन्दर्य पर अतिशय मुग्ध होकर वे विचार करने लगे कि इस कन्या का रूप आश्चर्यकारक है और इसके मनोहर वचन भी आश्चर्य करनेवाले ही हैं। तथा इसकी यह मन्द-मन्द गति भी आश्चर्य ही करनेवाली है। इसकी बुद्धि अतिशय शुभ है, इसके दोनों नेत्र चकित हरिणी के समान चंचल एवं विशाल हैं। अर्ध चन्द्र के समान मनोहर इसका ललाट है और इसका मुख चन्द्रमा की कान्ति के समान कान्ति का धारण करनेवाला है। यह कोकिला के समान अतिशय मनोहर शब्दों को बोलनेवाली है, रूप एवं सौभाग्य की खान है, अतिशय मनोहर इस कन्या के ये दोनों स्तन, खजाने के दो सुवर्णमय कलशों के समान उन्नत कामदेवरूपी सर्प से कलंकित, अतिशय स्थूल हैं और हर एक मनुष्य को सर्वथा दुर्लभ हैं और इसके दोनों स्तनों के मध्य में अत्यन्त मनोहर कामदेवरूपी ज्वर को दमन करनेवाली नदी है, इसके समस्त अंगों की ओर दृष्टि डालने

से यही बात अनुभव में आती है कि इस प्रकार सुन्दराकारवाली रमणीरत्न न तो कभी देखने में आई और न कभी सुनने में आई, और न आवेगी।

महाराज उपश्रेणिक इस प्रकार कन्या के स्वरूप की उधेड़बुन में लगे थे कि इतने में ही राजा यमदण्ड उनके पास आये और महाराज उपश्रेणिक ने कहा कि हे भीलों के स्वामी यमदण्ड! तुम्हारी तिलकवती नाम की कन्या नाना प्रकार के गुणों की खान एवं अनेक प्रकार के सुखों को देनेवाली है, आप इस कन्या को मुझे प्रदान कीजिये क्योंकि मेरा विश्वास है कि मुझे इसी से संसार में सुख मिल सकता है।

महाराज उपश्रेणिक के इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजा यमदण्ड ने विनयभाव से कहा कि हे प्रभो! कहाँ तो आप समस्त मगधदेश के प्रतिपालक और कहाँ मेरी अत्यन्त तुच्छ यह कन्या? हे महाराज! देवांगनाओं के समान अतिशय रूप और सौभाग्य की खान आपके अनेक रानियाँ हैं तथा कुमार श्रेणिक पहले आपके ही पुत्र हैं जो अतिशय बलवान, धीर और समस्त पृथ्वीतल की भले प्रकार रक्षा करनेवाले हैं, इसलिए अत्यन्त तुच्छ यह मेरी प्यारी पुत्री प्रथम तो आपके किसी काम की नहीं। यदि दैवयोग से इसका सम्बन्ध आपसे हो भी जाए तो हे प्रभो! क्या यह अन्य रानियों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखी जाने पर उस अपमान से उत्पन्न हुई पीड़ा को सहन कर सकेगी?

और हे प्रजापालक! प्रथम तो मुझे विश्वास नहीं कि इसके कोई पुत्र होगा। कदाचित् दैवयोग से इसके कोई पुत्र भी उत्पन्न हो जाए और श्रेणिक आदि कुमारों का वह सदा दास बना रहे, तो भी

उसको अवश्य दु:ख ही होगा और पुत्र के दु:ख से दु:खित यह मेरी प्राणस्वरूप पुत्री अन्य रानियों द्वारा अवश्य ही अपमानित रहेगी, इसलिए उपरोक्त दु:खों के भय से मैं अपनी इस प्यारी पुत्री का आपके साथ विवाह करना उचित नहीं समझता।

हाँ! यदि आप मुझे इस प्रकार वचन देवें कि जो इससे पुत्र उत्पन्न होगा, वही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा तो मैं हर्षपूर्वक आपकी सेवा में अपनी पुत्री को समर्पण कर सकता हूँ। आप जो उचित न्याय एवं अन्याय समझे, सो करें, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ।

राजा यमदण्ड के इस प्रकार के वचन सुनकर महाराज उपश्रेणिक ने उसकी समस्त प्रतिज्ञाओं को स्वीकार किया और प्रसन्नतापूर्वक उसकी तिलकवती पुत्री के साथ विवाह कर, उसके साथ भाँति-भाँति की क्रीड़ा करते हुए महाराज उपश्रेणिक विशाल सम्पत्ति के साथ राजगृह नगर को रवाना हुए और मार्ग में अनेक प्रकार वन-उपवनों की शोभाओं को देखते राजगृह नगर के समीप आ पहुँचे। महाराज उपश्रेणिक के आने का समाचार सारे नगर में फैल गया। महाराज उपश्रेणिक का शुभागमन सुनते ही समस्त नगरनिवासी मनुष्य, राजसेवक एवं महाराज के समस्त पुत्र, अपने को धन्य और पुण्यात्मा समझकर, उनके दर्शनों के लिये अतिशय लालायित होकर शीघ्र ही उनके सामने स्वागत के लिये आये और आकर विनयपूर्वक महाराज के चरणों में नमस्कार किया। चिरकाल से महाराज के वियोग से दु:खित उनके दर्शन से सन्तुष्ट हो समस्त जन उपश्रेणिक महाराज की ओर प्रेमपूर्वक टकटकी लगाकर देखने लगे और अतिशय प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए उन लोगों ने कुछ

समय तक वही ठहरकर पीछे महाराज से नगर में प्रवेश करने के लिये प्रार्थना की तथा महाराज के चलने पर समस्त नगर निवासी जनों ने महाराज के पीछे–पीछे राजगृह नगर की ओर प्रस्थान किया।

महाराज उपश्रेणिक के नगर में प्रवेश करते ही उनके शुभागमन के उपलक्ष में अतिशय उत्सव मनाया गया। पटह, शंख, काहल, दुंदुभि, आदि मनोहर बाजे बजने लगे, तथा उत्तमोत्तम हावभावों के दिखाने में प्रवीण, नृत्यकला में अति चतुर, देवांगनाओं के मद को चूर करनेवाली और अति सुन्दर नृत्यांगनाएँ अधिक आनन्द नृत्य करने लगीं। महाराज उपश्रेणिक बहुत दिनों के बाद नगर के देखने से अति आनन्दित हुए और सर्वांगसुन्दरी महारानी तिलकवती के साथ–साथ अनेक प्रकार के तोरणों से शोभित, नीली, पीली आदि ध्वजाओं से सुशोभित, चित्त को हरण करनेवाले, नाना प्रकार के चौकों से मण्डित राजगृह नगर में प्रवेश किया।

राजगृह नगर के राजमार्ग में जाते हुए महाराज उपश्रेणिक को देखकर अनेक नगरवासी अपने मन में इस प्रकार कल्पना करके कहते थे कि अहा! पुण्य का माहात्म्य विचित्र है। देखो, कहाँ तो अत्यन्त धीर–वीर महाराज उपश्रेणिक और कहाँ उत्तमांगी, चन्द्रमुखी, मृगाक्षी, लक्ष्मी के समान अति मनोहर स्थूल उन्नत स्तनों से मण्डित कन्या तिलकवती ? कहाँ राजा उपश्रेणिक का विशाल वन में गड्ढे में गिरना और निकलना और कहाँ फिर इस कन्या के साथ विवाह ?

जान पड़ता है कि इस कन्या की प्राप्ति के लिये महाराज उपश्रेणिक को समस्त पुण्य मिलकर वहाँ ले गये थे। इसमें सन्देह नहीं कि जो मनुष्य पुण्यवान हैं, उनके लिये विपत्ति भी सम्पत्ति रूप और दुःख भी सुखस्वरूप हो जाता है। बुद्धिमान मनुष्यों को

चाहिए कि वे सदा पुण्य का ही संचय करें।

इस प्रकार नगरवासियों के कथा कौतूहलों को सुनते हुए महाराज उपश्रेणिक ने रानी तिलकवती के साथ-साथ अनेक प्रकार की शोभाओं से सुशोभित राजमन्दिर में प्रवेश किया। राजमन्दिर में प्रवेश करने पर महाराज उपश्रेणिक ने तिलकवती के उत्तमोत्तम गुणों से मुग्ध हो उसे अतिशय मनोहर क्रीड़ा योग्य महल में ठहराया और नवविवाहित तिलकवती के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने लगे।

कभी-कभी तो महाराज कमल के रसलोलुप भँवरे के समान रानी तिलकवती के मुखकमल के रस का आस्वादन करते, और कभी-कभी चन्दन लता पर गन्धलोलुप भ्रमर के तुल्य उसके साथ उत्तान-क्रीड़ा करते। जान पड़ता था कि स्तनरूपी दो मनोहर क्रीड़ा-पर्वतों से युक्त महारानी तिलकवती का वक्ष:स्थल वन है और महाराज उपश्रेणिक उस वन में विहार करने मनोहर हिरण हैं।

जब महाराज उपश्रेणिक अपने हाथों से महारानी तिलकवती के स्तनों पर से अति मनोहर वस्त्र को खींचते थे, तब जान पड़ता था कि उसके स्तनरूपी खजाने के कलशों पर उनकी रक्षार्थ दो सर्प ही बैठे थे। महारानी तिलकवती के, मैथुनरूपी जल से युक्त कामदेवरूपी मनोहर कमल के आधारभूत, दोनों जवारूपी सरोवर के बीच महाराज उपश्रेणिक, ऐसे मालूम पड़ते थे मानों सरोवर में हंस ही क्रीड़ा कर रहा है। रानी तिलकवती के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर महाराज उपश्रेणिक ने उसे केवल क्रीड़ा के ताडनों से व्याकुल ही नहीं किया था किन्तु निर्दयता के साथ वे उसे चुम्बनों से भी व्याकुल करते थे।

इस प्रकार प्रेमपूर्वक चिरकाल क्रीड़ा करने से रानी तिलकवती

के चलाती (चलातकी) नाम का उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ और अत्यन्त भाग्यशाली वह चलातकी थोड़े ही काल में बड़ा हो गया। इस रीति से पुण्य के माहात्म्य से अत्यन्त मनोहर, नवीन स्त्रियों में उत्तम, अत्यन्त उज्ज्वल, हरएक कला में प्रवीण, समस्त पुण्य-फलों से उत्पन्न उत्तम रूपवाली और समस्त देवांगनाओं के समान अत्यन्त उत्कृष्ट, भाग्यवती तिलकवती को महाराज उपश्रेणिक नाना प्रकार की क्रीड़ाओं से तुष्टकर थे, तथा मोह से नाना प्रकार की काम को पैदा करनेवाली चेष्टाओं को करनेवाली, अत्यन्त मनोहर, अपने शरीर को दिखानेवाली, अत्यन्त प्रौढ़ा, दैदीप्यमान वस्त्रों से शोभित, मुकुट जड़ित मणियों की किरणों से अधिक शोभायमान, अत्यन्त निर्मल रूपवाली और पुण्य की मूर्ति तिलकवती भी अपने हावभावों से, नानाप्रकार के भोगविलासों से महाराज उपश्रेणिक के साथ क्रीड़ा कर उन्हें तृप्त करती थी।

सच है:—धर्मात्मा प्राणियों को धर्म की कृपा से ही उत्तम कुल में जन्म मिलता है, धर्म की कृपा से ही उत्तमोत्तम राजमन्दिर मिलते हैं, धर्म के माहात्म्य से ही मनोहर रूपवाली भाग्यवती सती सर्वोत्तम स्त्रीरत्न की प्राप्ति होती है, धर्म से ही समस्त प्रकार की आकुलता रहित विभूति प्राप्त होती है, एवं अत्यन्त आनन्द को देनेवाले धर्म से ही मोक्ष-सुख भी मिलता है, इसलिए उत्तम मनुष्यों को उचित है कि वे उत्तमोत्तम राज्य, स्वर्ग, मोक्ष इत्यादि सुखों को प्राप्त करानेवाले धर्म के फलों को भलीभाँति जानकर धर्म में अपनी बुद्धि को स्थिर कर धर्म को धारण करें।

इस प्रकार महाराज श्रेणिक के जीव भविष्यकाल में होनेवाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के चरित्र में महाराज उपश्रेणिक के नगर प्रवेश को कहनेवाला द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

तीसरा सर्ग

कुमार श्रेणिक का राजगृह नगर से निष्कासन

समस्त कर्मों से रहित, प्राचीन, मनोहर, अखण्ड केवलज्ञानरूपी सूर्य के धारक, प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

अनन्तर महाराज मगधेश्वर उपश्रेणिक के मन में इस प्रकार की चिन्ता हुई कि मेरे बहुत से पुत्र हैं, इनमें से मैं किस पुत्र को राज्य का भार दूँ? इस प्रकार अतिशय दूरदर्शी महाराज उपश्रेणिक ने इस बात को चिरकाल तक विचार कर, और इस बात को भी भलीभाँति स्मरण कर कि तिलकवती के पुत्र चलातकी को मैंने राज दे दिया है, किसी ज्योतिषी को एकान्त में बुलाकर पूछा—

हे नैमित्तिक! तू ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला है। अत: इस बात को शीघ्र विचार कर कह कि मेरे बहुत से पुत्रों में राज्य का भोगनेवाला कौन पुत्र होगा?

महाराज की इस बात को सुनकर ज्योतिर्विद नैमित्तिक अष्टांग निमित्तों से भलीभाँति महाराज के प्रश्न को विचार कर बोला— महाराज! मैं ज्योतिष शास्त्र के बल से 'आपके पुत्रों में से राज्य का भोगनेवाला कौन-सा पुत्र होगा' कहता हूँ, आप ध्यान लगाकर सुनिये।

उसके जानने का पहिला निमित्त तो यह है-कि आपके जितने पुत्र हैं, सब पुत्रों को आप एक-एक घड़े में शक्कर भरकर दीजिए उनमें जो पुत्र किसी दूसरे मनुष्य पर उस घड़ा को रखकर निर्भय सिंह के द्वार में प्रवेश कर अपने घड़े में खेलता हुआ चला आवे तो जानिये कि वही पुत्र राज्य का अधिकारी होगा।

दूसरा निमित्त यह है—कि आप अपने सब कुमारों को एक-एक नवीन घड़ा दीजिये और उनसे कहिये कि हरएक ओस के जल से उस घड़े को भरकर ले आवे। जो पुत्र ओस से घड़े को भरकर ले आवेगा अवश्य वही पुत्र राजा होगा।

तीसरा निमित्त यह भी है कि आप अपने सब पुत्रों को एकसाथ भोजन करने के लिये बैठाईये और आप उन पुत्रों को खीर, शक्कर, पूवे और दाल-भात आदि सर्वोत्तम स्वादिष्ट पदार्थों को एक साथ बैठाकर खिलाइये, जिस समय वे भोजन के स्वाद में अत्यन्त लीन हो जावें, उस समय भयंकर डाढ़ोंवाले अत्यन्त क्रूर तथा बाघों के समान मत्त कुत्तों को धीरे से छुड़वा दीजिये, उस समय जो उन भयंकर कुत्तों को हटाकर आनन्दपूर्वक निर्भयता से भोजन करेगा, वही पुत्र आपके समान इस मगधदेश का निःसन्देह राजा हो सकेगा।

चौथा निमित्त यह समझिये—जिस समय नगर में आग लगे, उस समय जो पुत्र सिंहासन, छत्र, चंवर आदि पदार्थों को अपने सिर पर रखकर नगर से बाहर निकले, समझ लीजिये कि मुकुट का धारण करनेवाला वही राज्य का भोगनेवाला होगा।

और हे महाराज! राज्य की प्राप्ति का पाँचवाँ निमित्त यह भी है:—थोड़े से पिटारों को उत्तमोत्त माल तथा खाजे आदि मिष्ठानों से भरवाकर, उनके मुँह को अच्छी तरह से बन्द कराकर और मुहर लगवाकर, हर एक के घर में रखवा दीजिये तथा उन पिटारों के साथ शुद्ध निर्मल मधुर जल से पूर्ण एक-एक उत्तम घड़े को भी मुँह बन्द कर उसी तरह प्रत्येक के घर में रखवा दीजिये, फिर प्रत्येक कुमार को एक-एक घड़े में से पानी तथा एक-एक पिटारे में से लड्डू आदि के खाने की आज्ञा दीजिए। उनमें से जो कुमार जल से

भरे हुए घड़े को मुख को बिना खोले ही पानी पी लेवे तथा पिटारे से बिना खोले ही लड्डू आदि पदार्थों को खा लेवे, समझ लीजिये कि वही पुत्र राज्य का भोगनेवाला होगा।

इस प्रकार नैमित्तिक के बताये हुए पाँच निमित्तों को सुनकर महाराज ने उस नैमित्तिक को विदा किया और ज्योतिषी के बतलाये हुए उन निमित्तों से कुमारों की परीक्षा करने के लिये स्वयं ऐसा विचार करने लगे कि आश्चर्य की बात है कि राज्य तो मैंने चलातकी को देने के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया है, लेकिन अब नहीं जान सकता कि इन निमित्तों से परीक्षा करने पर राज्य का भोगनेवाला कौन ठहरेगा ?

कुछ समय बीतने पर महाराज ने एक समय अपने समस्त पुत्रों को सभा में बुलाया और सरल स्वभाव से वे लोग महाराज की आज्ञा के अनुसार सभा में आकर अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये। उनको भलीभाँति बैठे हुए देखकर महाराज ने कहा—हे पुत्रो ! मैं कहता हूँ, सुनो-आप लोग एक-एक शक्कर का घड़ा लेकर सिंहद्वार की ओर जाइये।

महाराज के इस वचन को सुनकर महाराज की आज्ञा के पालन करनेवाले सब कुमार महाराज की आज्ञा से एक-एक शक्कर के घड़े को स्वयं लेकर सिंहद्वार की ओर गये तथा थोड़ी दूर वहाँ पर ठहरकर अपने-अपने घरों को चले आये। पर चतुर कुमार श्रेणिक किसी अन्य सेवक के सिर पर घड़े को रखवाकर सिंहद्वार में गया तथा पीछे खेलता हुआ अपने घर को चला आया। जब महाराज उपश्रेणिक ने यह बात सुनी, तब वे चकित होकर रह गये और अपने मन में विचार करने लगे कि निःसन्देह भाग्यशाली

श्रेणिककुमार ही राज्य का अधिकारी होगा, अब मैं अपने राज्य को चलाती कुमार के लिये कैसे दे सकूँगा ?

❀ ❀ ❀

इस प्रकार कुछ समय तक विचार करते-करते महाराज ने दूसरे निमित्त की परीक्षा करने केलिये अपने पुत्रों को बुलाया और कहा—हे पुत्रों ! तुम सब आज फिर मेरी बात को सुनो। सब लोग एक-एक नवीन घड़ा लो और उसको अपनी चतुरता से ओस के जल से मुँह तक भरकर लाओ।

महाराज का वचन सुनते ही वे समस्त राजकुमार सबेरा होते ही बड़े उत्साह के साथ ओस के जल से घड़ों को भरने के लिये अनेक प्रकार के तृणयुक्त जगहों पर गये और वहाँ पर ओस के जल से भींगे तृणों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े प्रयत्न से तृणों के जल को ग्रहण करने के लिये अलग-अलग बैठ गये। जिस समय वे उस ओस के पानी को नवीन घड़ा में भरते थे, घड़े के भीतर जाते ही क्षणभर में वह ओस का पानी सूख जाता था। इस तरह ओस के जल से घड़ा भरने के लिये उन्होंने यथाशक्ति बहुत परिश्रम किया और भाँति-भाँति के प्रयत्न किये किन्तु उनमें से एक भी कुमार घड़ा को न भर सका किन्तु एकदम घबड़ाकर सबके सब कुमार अपने-अपने स्थानों में चुपचाप बैठ गये।

बहुत काल बैठने पर जब उन्होंने यह बात निश्चय समझ लिया कि घड़े नहीं भरे जा सकते, तब चलाती आदि सब राजकुमार महाराज की इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो लज्जा के भरे मुख नीचे किये हुए अपने-अपने घरों को चले गये, परन्तु अत्यन्त बुद्धिमान कुमार श्रेणिक, महाराज की आज्ञा पालन करने के लिये जिस प्रदेश

में ओस के जल से भीगे हुए बहुत तृण थे, वहाँ गया और उन तृणों पर उसने एक कपड़ा डाल दिया।

जिस समय वह कपड़ा ओस के जल से भींग गया, तब उस भीगे कपड़े को निचोड़-निचोड़कर उस जल से घड़े को अच्छी तरह भरकर वह अपने घर ले आया, और उस के जल से भरे हुए घड़े को महाराज उपश्रेणिक के सामने रख दिया। महाराज ने जिस समय कुमार श्रेणिक द्वारा लाये ओस के जल से भरे हुए घड़े को देखा तो श्रेणिक को अत्यन्त बुद्धिमान समझकर वे चिन्ता से व्याकुल हो गये और मन में विचार करने लगे कि अवश्य कुमार श्रेणिक ही राज्य का भोगनेवाला होगा, किन्तु मैंने तो यह वचन दे दिया है कि राज्य चलातीकुमार को ही दिया जाएगा। अब न जाने इस वचन की क्या गति होगी?

❁ ❁ ❁

इस प्रकार कुमार श्रेणिक को दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण देखकर पुनः राज्यकार्य की परीक्षा के लिये महाराज उपश्रेणिक ने श्रेणिक आदि समस्त पुत्रों को भोजन के लिये अपने घर में बुलाया। जिस समय समस्त राजकुमार एकसाथ भोजन करने के लिये बैठ गये, तब बड़े आदर के साथ उनके सामने सुवर्णों के बड़े-बड़े थाल रख दिये गये और उन थालों में उनके लिये खाजे, घेवर, मोदक, खीर, मीठामाड़, घी मूंग का मिष्ट स्वादिष्ट चूरा, उत्तम दही और अनेक प्रकार के पके हुए अन्न तथा मीठा भात, और भी अनेक प्रकार के भोजन तथा पूवा भिगोड़े आदिक अनेक मनोहर मिष्टान्न परोसे गये। जिस समय क्षुधा से पीड़ित तथा स्वाद के लोलुप सब कुमार भोजन करने लगे और भोजन के स्वाद के आनन्द में मग्न हुए, तब

महाराज उपश्रेणिक की आज्ञा से राजसेवकों ने भयंकर कुत्तों को छोड़ दिया। फिर क्या था ? वे भयंकर कुत्ते सुगन्धित उत्तम भोजन को देखकर उसी ओर झुके और भौंकते हुए समस्त कुत्ते राजकुमारों के भोजनपात्रों पर बात की बात में टूट पड़े।

भोजनपात्रों के ऊपर उन कुत्तों को टूटते हुए देखकर मारे भय से काँपते हुए राजकुमार अपने-अपने भोजन के पात्रों को छोड़कर एकदम वहाँ से भागे और आपस में हँसी करते हुए तितर-बितर होकर अपने-अपने घरों में चले गये। बुद्धिमान कुमार श्रेणिक ने जब यह दृश्य देखा कि ये कुत्ते आगे बढ़े चले ही आ रहे हैं और काटने के लिये उद्यत हैं, तब उसने अपनी बुद्धि से उन सब कुत्तों को दूर हटाया और दूसरे-दूसरे कुमारों की पत्तलों को कुत्तों के सामने फेंककर उन्हें बहुत दूर भगा दिये और स्वाद से भोजन करने लगा।

इस बात को सुनकर महाराज उपश्रेणिक फिर भी अत्यन्त चिन्तासागर में निमग्न हो गये और विचारने लगे कि मैं अब इस उत्तम राज्य को चलातीकुमार को किसी रीति से प्रदान करूँ ?

एक समय जब नगर में भयंकर आग लगी तथा ज्वाला से समस्त नगर जलने लगा और नगर के लोग जहाँ-तहाँ भागने लगे, तब कुमार श्रेणिक तो झट सिंहासन, छत्र आदि सामान को लेकर वन को चला गया, शेष राजकुमार कोई हाथ में भाला लेकर वन को गया और कोई खड्ग लेकर, कोई घोड़ा आदि लेकर, वन को गये। इस बात को सुनकर फिर भी महाराज उपश्रेणिक मन में अत्यन्त दु:खित हुए तथा सोचने लगे कि चलाती पुत्र किस रीति से इस राज्य का भोगनेवाला बने ?

ज्योतिषी की बतलाई हुई इतनी परीक्षाओं में कुमार श्रेणिक को

उत्तीर्ण देख महाराज उपश्रेणिक को सन्तोष न हुआ अतएव उन्होंने ज्योतिषी के बतलाये हुए अन्तिम निमित्त की परीक्षा के लिये फिर भी किसी समय अपने राजकुमार को बुलाया तथा प्रत्येक घर में महाराज उपश्रेणिक ने अत्यन्त मधुर लड्डूओं से भरे हुए एक पिटारे का मुख बन्द कर रखवा दिया और उसके साथ में अत्यन्त निर्मल जल से भरा हुआ एक-एक नवीन घड़ा भी रखवा दिया।

इन सब बातों के पीछे लड्डुओं के खाने के लिये और पानी पीने के लिये समस्त राजकुमारों को महाराज उपश्रेणिक ने आज्ञा भी दी। कुमार श्रेणिक के अतिरिक्त जितने राजकुमार थे, सबने उन लड्डुओं से भरे हुए पिटारे को एकदम हाथ में लेकर बिना विचारे ही शीघ्र खोल डाला और अपनी भूख की शान्ति के लिये लड्डू खाना प्रारम्भ कर दिया तथा प्यास लगने पर घड़ों के मुँह खोलकर उनसे पानी पिया परन्तु कुमार श्रेणिक, जो उन सब कुमारों में अत्यंत बुद्धिमान था, चट महाराज के मन का तात्पर्य समझ पिटारे के मुख को बिना ही उघाड़े उसको लेकर इधर-उधर हिलाने लगा और इस प्रकार उस पिटारे से निकले हुए चूर्ण को खाकर उसने अपनी क्षुधा की शान्ति की तथा जहाँ पर घड़ा रखा था, वहाँ जो जल घड़े से बाहिर इकट्ठा हुआ था उसी से अपनी प्यास बुझाई किन्तु घड़े के मुख को खोलकर पानी नहीं पिया।

अनन्तर महाराज उपश्रेणिक ने समस्त राजकुमारों को अपने-अपने घर जाने के लिये आज्ञा दी। परीक्षा से राज्य की प्राप्ति के लिये सब चिह्न धीर-वीर, भाग्यशाली कुमार श्रेणिक में देखकर महाराज उपश्रेणिक अपने मन में इस प्रकार चिन्ता करने लगे, कि ज्योतिषी के बतलाये निमित्तों से कुमार श्रेणिक सर्वथा राज्य के योग्य सिद्ध

हो चुका, अब मैं किस रीति से चलाती पुत्र को राज्य दूं? मैं पहिले यह वचन दे चुका हूँ कि यदि राज्य दूँगा तो चलाती को ही दूँगा, किन्तु ज्योतिषी द्वारा बतलाये हुए निमित्तों से राजकुमार श्रेणिक उपयुक्त ठहरता है।

अब मैं पहले दिये हुए अपने वचन की कैसे रक्षा करूँ? हाँ! यह बात बिल्कुल ठीक है कि जिसका भाग्य बलवान होता है, उसको राज्य मिलता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इस प्रकार अत्यन्त भयंकर चिन्ता-सागर में गोता लगाते हुए महाराज उपश्रेणिक ने अत्यन्त बुद्धिमान सुमति तथा मतिसागर नाम के मन्त्रियों को तथा इनसे अतिरिक्त अन्य मन्त्रियों को भी बुलाया और उनसे इस प्रकार अपने मन का भाव कहा—

हे मन्त्रियों! आप सब लोग अत्यन्त बुद्धिमान तथा श्रेष्ठ हैं। मेरे मन में एक बड़ी भारी चिन्ता है, जिससे मेरा सब शरीर सूखा जाता है, उस चिन्ता की निवृत्ति किस रीति से होगी, इस पर विचार करो।

महाराज की इस विचित्र बात को सुनकर अन्य मन्त्रियों ने तो कुछ उत्तर न दिया परन्तु अत्यन्त बुद्धिमान सुमति नाम के मन्त्री ने कहा—हे प्रभो! हे राजन्! हे समस्त पृथ्वी के स्वामी! हे समस्त बैरियों के मस्तकों को नीचे करनेवाले! महाभाग! आप सरीखे नरेन्द्रों को किस बात की चिन्ता हो सकती है? हे प्रभो! देवों के घोड़ों को भी अपने कला कौशल से जीतनेवाले अनेक घोड़े आपके यहाँ मौजूद हैं, जो कि अपने खुरों के बल से तमाम पृथ्वी का चूर्ण कर सकते हैं, और आपकी भक्ति में सदा तत्पर रहते हैं।

अपने दाँतरूपी खड्गों से तमाम पृथ्वी को विदारण करनेवाले अंजन पर्वत के समान लम्बे-चौड़े आपके यहाँ अनेक हाथी मौजूद

हैं। हे राजेन्द्र! आपके मन्दिर में भलीभाँति आपकी आज्ञा के पालन करनेवाले अनेक पदाति (सेना) भी मौजूद है और रथी शूरवीर भी आपके यहाँ बहुत हैं, जो कि संग्राम में भलीभाँति आपकी आज्ञा के पालन करनेवाले हैं। आपको किसी बैरी की भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि आपके देश में आपका कोई बैरी भी नजर नहीं आता, आपमें धन तथा राज्य का कोई बाँटनेवाला (दायाद) भी नहीं है और आपके पुत्र भी आपकी आज्ञा के पालन करनेवाले हैं।

आपके राज्य में कोई आपका विरोधी कुटिल दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर हे प्रभो! आपके मन में किस बात की चिन्ता है? आप उसे शीघ्र प्रकाशित करें, उसको दूर करने के लिये अनेक उपाय मौजूद हैं, उसकी शीघ्र ही निवृत्ति हो सकती है। यदि आप इस समय उसको नहीं बतलायेंगे तो ठीक नहीं, क्योंकि राजा के चिन्ताग्रस्त होने से पुरवासी मन्त्री आदिक सब ही चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं, उनको भी दुःख उठाना पड़ता है क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा अर्थात् जिस प्रकार का राजा हुआ करता है, उसकी प्रजा भी उसी प्रकार की हुआ करती है।

इस प्रकार अत्यन्त बुद्धिमान सुमति नामक मन्त्री की इस बात को सुन महाराज उपश्रेणिक बोले—हे सुमते! मुझे देश आदि अथवा पुत्र आदि की ओर से कुछ भी चिन्ता नहीं है, किन्तु चिन्ता मुझे इसी बात की है कि मैं इस राज्य को किस पुत्र को प्रदान करूँ?

मन्त्री ने उत्तर दिया—हे अत्यन्त बुद्धिमान महाराज! आपक सुयोग्य पुत्र कुमार श्रेणिक है, उसी को बेधड़क राज्य दे दीजिये। मन्त्री की बात को सुनकर महाराज उपश्रेणिक ने कहा—हे मन्त्रिन्! जिस समय मेरे शत्रु द्वारा भेजे हुए घोड़े ने मुझे वन में पटक दिया

था, उस समय यमदण्ड नामक भील राजा ने वन में मेरी सेवा की थी तथा उसकी पुत्री तिलकवती ने अपनी अतुलनीय सेवा से एक तरह मुझे नवजीवित किया था। अकस्मात् उसी के साथ मेरा विवाह हो गया।

विवाह के समय तिलकवती के पिता ने यह मुझसे कौल करा लिया था कि यदि आप इस पुत्री के साथ अपना विवाह करना चाहते हैं, तो मुझे यह वचन दे दीजिये कि इससे जो पुत्र होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा, नहीं तो मैं अपनी पुत्री का विवाह आपके साथ नहीं करूँगा। मैंने उस तिलकवती के सौन्दर्य एवं गुणों पर मुग्ध होकर उसके पिता को उस प्रकार का वचन दे दिया था कि मैं इसी के पुत्र को राज्य दूँगा किन्तु मैंने राज्य किसको देना चाहिए, यह बात जिस समय ज्योतिषी से पूछी तो उसने ज्योतिष विद्या से यही कहा कि इस महाराज्य का अधिकारी कुमार श्रेणिक ही है।

अब बताइये ऐसी दशा में मैं क्या करूँ और राज्य किसको दूँ? यदि मैं चलातीकुमार को राज्य न देकर कुमार श्रेणिक को राज्य प्रदान करूँ और अपने वचन का ख्याल न रखूँ तो संसार में मेरा जीवन सर्वथा निष्फल है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि यदि मैं अपने वचन का पालन न कर सकूँगा तो मेरा पहिले कमाया हुआ सब पुण्य भी बिना प्रयोजन का है, क्योंकि मल-मूत्र आदि सात धातुओं से बना हुआ यह शरीर पुण्यरहित निस्सार है अर्थात् किसी काम का नहीं।

इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि चंचल जीवन की अपेक्षा इस शरीर में सत्य वचन ही सार है, अर्थात् जो कहकर वचन का पालन करता है, वही मनुष्य आर्य है और उत्तम है किन्तु जो

अपने वचन को पालन नहीं करता है, वह उत्तम नहीं। क्योंकि जिस मनुष्य ने संसार में अपने वचन की रक्षा नहीं की, उसने उपार्जन किये हुए पुण्य का सर्वथा नाश कर दिया और यह बात भी है कि संसार में शरीर सर्वथा विनाशिक है।

जीवन बिजली के समान चंचल है और सब प्रकार की सम्पदायें भी पलभर में नष्ट होनेवाली हैं। यदि स्थिर है तो एक वचन ही है, ऐसा सब स्वीकार करते हैं। ऐसा समझकर हे मन्त्रिन्! सुमते! मैंने जो वचन कहा है, उस वचन पर तुम्हें भलीभाँति विचार करना चाहिए, जिससे कि संसार में मेरा जीवन सार्थक समझा जावे, निरर्थक नहीं। इस प्रकार जब महाराज उपश्रेणिक ने कहा, तब मतिसागर नामक मन्त्री बोला—

हे महाराज! इस थोड़ी सी बात के विचारने में आप क्यों चिन्ता करते हैं? क्योंकि चिन्ता स्वर्ग राज्य की लक्ष्मी को विकारयुक्त बना सकती है और फिर थोड़ी-सी बात के लिये चिन्ता करना क्या बड़ी बात है? मैं अभी कुमार श्रेणिक को देश के बाहर निकाले देता हूँ, आप चिन्ता छोड़िये। इस चिन्ता में क्या रखा है? मतिसागर मन्त्री की अपने अनुकूल इस बात को सुनकर महाराज उपश्रेणिक मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उस मन्त्री से यह बात भी कहने लगे—

हे मन्त्रिन्! इस कार्य को तुम शीघ्र करो, इसमें देरी करना ठीक नहीं है। इस प्रकार महाराज उपश्रेणिक की आज्ञा को सिरोधार्य कर वह मतिसागर नाम का मन्त्री कुमार श्रेणिक के समीप गया। जिस समय वह कुमार के पास गया तो अपने पास बुद्धिमान मतिसागर मन्त्री को आते देखकर अत्यन्त चतुर कुमार श्रेणिक ने उसका बड़ा भारी सम्मान किया और परस्पर में बड़े स्नेह से उन दोनों ने कुशल

भी पूछी। थोड़ी देर तक कुमार श्रेणिक के पास बैठकर तथा कुमार को भलीभाँति प्रणामकर मन्त्री मतिसागर ने यह वचन कहा—

हे कुमार! आप मेरे मनोहर तथा हितकारी वचन को सुनिये। आपके अपराध से महाराज उपश्रेणिक को बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ है, वे आप पर सख्त नाराज हैं, न जाने वे आपको क्या दण्ड न देवेंगे? और क्या अहित न कर पावेंगे क्योंकि राजा के कुपित होने पर आपको यहाँ पर नहीं रहना चाहिए। मन्त्री मतिसागर के इस प्रकार अश्रुतपूर्व वचन सुनकर कुमार श्रेणिक ने उत्तर दिया—

कृपाकर आप बतावें कि मेरा क्या अपराध हुआ है? इस प्रकार कुमार के बोलने पर मन्त्री मतिसागर ने उत्तर दिया—

जिस समय तुम सब कुमारों के भोजन करते समय कुत्ते छोड़े गये थे और जिस समय समस्त पात्रों को झूठा कर दिया था, उस समय तुमसे भिन्न सब कुमार तो भोजन छोड़कर चले गये थे और यह कहो तुम अकेले क्यों भोजन करते रह गये थे? इसलिए ऐसा मालूम होता है कि महाराज की नाराजी का यही कारण है और यह बात ठीक भी है क्योंकि नीचता का कारण कुत्तों से छुआ हुआ भोजन अपवित्र भोजन ही कहलाता है। मन्त्री मतिसागर की इस बात को सुनकर और कुछ हँसकर कुमार ने मनोहर शब्दों में उत्तर दिया—

हे मन्त्रिन्! कुत्तों को बुद्धिपूर्वक हटाकर मुझे यत्न से भले प्रकार रक्षित भोजन करना ही योग्य था, इसीलिए मैंने ऐसा किया था क्योंकि जो कुमार अपने भोजनपात्रों की, न कुछ बलवान कुत्तों से भी रक्षा कर सकते, वे कुमार राज सन्तान अर्थात् प्रजा की क्या रक्षा कर सकते हैं? इसलिए जो आपने यह बात कही है कि तुमने

कुत्तों का छुआ हुआ भोजन किया, इसलिए महाराज तुम पर नाराज हैं, यह बात तुम्हें बुद्धिमान नहीं सूचित करती। कुमार के इस प्रकार न्याययुक्त वचन सुनकर समस्त दुष्कार्यों को भले प्रकार जानकर भी वह मन्त्री फिर अतिशय बुद्धिमान श्रेणिककुमार से बोला—

हे बुद्धिमान कुमार! तुम्हें इस समय न्याय एवं अन्याय के विचारने की कोई आवश्यकता नहीं। महाराज का क्रोध इस समय अनिवार्य और आश्चर्यकारी है। अब तुम यही काम करो कि थोड़े दिन के लिये इस देश से चले जाओ और राजमन्दिर में न रहो क्योंकि यह नियम है कि संसार में राजा के क्रोध के सामने कुलीन भी नीच कुल में उत्पन्न हुआ कहलाता है, नीतियुक्त अनीतियुक्त कहा जाता है और पण्डित भी वज्रमूर्ख कहा जाता है। प्यारे कुमार श्रेणिक! यदि तुम राज्य ही प्राप्त करना चाहते हो तो न तो तुम्हें देश से अलग होने में किसी बात का विचार करना चाहिए, और न किसी प्रकार की भावना ही करनी चाहिए, किन्तु जैसे बने वैसे इस समय शीघ्र ही इस देश से तुम्हें चला जाना चाहिए। हे कुमार! परदेश में कुछ दिन रहकर फिर तुम इसी देश में आ जाना, पश्चात् राज्य आपको अवश्य ही मिलेगा, क्योंकि राज्य आपका ही है।

मन्त्री मतिसागर के ऐसे कपट भरे वचन सुनकर, राजा का क्रोध परिणाम में दु:ख देनेवाला है, इस बात को जानकर और अपनी माता आदि को भी पूछकर, अत्यन्त दु:खित हो कुमार श्रेणिक राजगृह नगर से निकल पड़े तथा महाराज उपश्रेणिक द्वारा भेजे हुए रक्षा के बहाने से गूढ वेष धारण करनेवाले पाँच हजार जासूस योद्धाओं के साथ-साथ एकदम नगर से बाहिर हो गये।

कुमार की माता महारानी इन्द्राणी के कान तक यह बात पहुँची

कि कुमार श्रेणिक को देश निकाला हुआ है, सुनते ही वह इस प्रकार भयंकर रुदन करने लगी—हा पुत्र! हा महाभाग! हे कमल के समान नेत्रों को धारण करनेवाले! हा कामदेव के समान! हा अत्यन्त पुण्यात्मा! हा अत्यन्त शुभ लक्षणों को धारण करनेवाले! हा गजेन्द्र की सूंड के समान लम्बे-लम्बे हाथों के धारक! हा कोकिल के समान प्यारी बोली के बोलनेवाले! हा कमल के समान उत्तम मुख के धारक! हा उत्तम एवं ऊँचे ललाट में शोभित! हा कामदेव के समान मनोहर शरीर के धारक! हा कामदेव के समान विलासी! हा सुन्दर! हा शुभाकार! हा नेत्रप्रिय! हा सन्तोष के देनेवाले! हा शुभ! हा राज्य के धारण करने में शूरवीर! हा प्रिय! हा सुन्दर आकृति के धारण करनेवाले कुमार! मुझ दु:खिनी माँ को छोड़कर तू कहाँ चला गया है? जो वन अनेक प्रकार के भयंकर सिंह व्याघ्रों से भरा हुआ है, उस वन में तू कहाँ पर होगा?

हाय! पूर्व भव में मैंने ऐसा कौन सा घोर पाप किया था, जिससे इस भव में मुझे ऐसे उत्तम पुत्ररूपी रत्न का वियोग सहना पड़ा? हाय! क्या पूर्वभव में मैंने किसी माता से पुत्र का वियोग कर दिया था? अथवा श्री जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का मैंने उल्लंघन किया था? या मैंने अपने शील का मर्दन किया था-व्यभिचार का आश्रय किया था? अथवा मैंने किसी तालाब का पुल नष्ट किया था? या मलिन जल से मैंने वस्त्र धोये थे? अथवा अग्नि से मैंने किसी उत्तम वन को भस्म किया था? या मैंने व्रत का भंग कर दिया था? अथवा मुझसे किसी दिगम्बर मुनि की निन्दा हो गई थी? या मैंने किसी से द्रोह किया था? या पर के वचन की मैंने अवज्ञा कर दी थी? अथवा मैंने इस भव में पाप किया है, जिससे मुझे ऐसे उत्तम पुत्र-रत्न से जुदा होना पड़ा?

इस प्रकार बारम्बार कुमार श्रेणिक की माता इन्द्राणी का करुणाजनक भयंकर रुदन सुनकर समस्त नगर में हाहाकार मच गया। समस्त पुरवासी लोग करुणाजनक स्वर से कुमार श्रेणिक के लिये रोने लगे और परस्पर कहने लगे—

राजा ने जो कुमार को नगर से निकाल दिया है, वह अज्ञानता से ही निकाला है क्योंकि बड़े खेद की बात है कि कुमार श्रेणिक तो अद्वितीय भाग्यवान, सर्वथा राज्य के योग्य, अद्वितीय दाता और भोक्ता था, बिना विचारे महाराज उपश्रेणिक ने उसे कैसे नगर से निकाल दिया? इस प्रकार कुमार श्रेणिक के चले जाने पर अत्यन्त उन्नत कोलाहलयुक्त भी नगर शान्त हो गया! कुमार के शोक से समस्त पुरवासी दुःखसागर में गोता लगाने लगे। वह कौन-सा दुःख न था जो कुमार के वियोग में पुरवासियों को न सहना पड़ा हो?

इधर पुर तो कुमार के शोकसागर में मग्न रहा, उधर कुमार श्रेणिक मार्ग में जाते-जाते कुछ दूर चलकर अत्यन्त दुःखित एवं अपमानजन्य दुःख के प्रवाह से जिनका मुख फीका हो गया है, माँ को स्मरण करने लगे तथा और भी आगे कुछ धीरे-धीरे चलकर बुद्धिमान कुमार श्रेणिक, मयूर शब्दों से शोभित किसी निर्जन अटवी में जा पहुँचे। वहाँ से अनेक प्रकार के धान्यों से शोभित चित्र-विचित्र ध्वजाओं से मण्डित, एवं राजमन्दिर से भी शोभित कोई मनोहर नन्दिग्राम उन्हें दिख पड़ा।

महा धीर-वीर कुमार धीरे-धीरे उसी नगर की ओर रवाना होकर उस नगर के द्वार पर आ पहुँचे। द्वार की अपूर्व शोभा निरखते हुए वहाँ पर ठहर गये, पीछे उस नगर में प्रवेश कर कुमार श्रेणिक अनेक प्रकार के माला, घण्टा, तोरण आदि कर शोभित, अत्यन्त

मनोहर, श्रेष्ठ सम्पत्ति के धारक राजमन्दिर के पास पहुँचे और वहाँ उन्होंने अत्यन्त वृद्ध, नानाप्रकार के गुणोंकर मण्डित मनोहर, अतिशक प्रीति करनेवाले, उत्कृष्ट, किसी इन्द्रदत्त नाम के सेठ को देखा और उससे कहा—

हे श्रेष्ठिन्! आप यहाँ न बैठिये, मेरे साथ आइये। यहाँ पर कोई नन्दिग्राम का स्वामी ब्राह्मण निश्चय से रहता है। हम दोनों भोजन की प्राप्ति के लिये भ्रमण कर रहे हैं, आइये, उसके पास चलें, वह हमें अवश्य भोजनादि देगा। ऐसा कहकर कुमार श्रेणिक और सेठ इन्द्रदत्त दोनों उस ब्राह्मण के पास गये और उससे कहा—

हे विप्र नन्दिनाथ! तू महाराज उपश्रेणिक के सम्मान का पात्र राज्यसेवा के योग्य है और तू राज्यकार्य के लिये महाराज द्वारा दिये हुए माल का मालिक है, इसलिए हम दोनों को पीने के लिये कुछ जल और भोजन के लिये कुछ धान्य दे क्योंकि राज्य के कार्य में चतुर हम दोनों राजदूत हैं और भ्रमण करते-करते यहाँ पर आ पहुँचे हैं। कुमार श्रेणिक के इस प्रकार वचन सुनकर क्रोध से नेत्रों को लाल करता हुआ एवं सदा पर के ठगने में तत्पर उस ब्राह्मण ने क्रोध से उत्तर दिया—

कहाँ के राजसेवक? कौन? किस कारण से कहाँ से यहाँ आ गये? मैं तुम्हें पीने के लिये पानी तक न दूँगा, भोजनादिक की तो बात ही क्या है? जाओ-जाओ शीघ्र ही तुम मेरे घर से चले जाओ, जरा भी तुम यहाँ पर मत ठहरो। यदि तुम राजसेवक भी हो तो भी मुझे कोई परवाह नहीं। ब्राह्मण के इस प्रकार मूर्खताभरे वचन सुनकर कोप से जिनका गात्र कंप रहा है, उन कुमार श्रेणिक ने कहा—

अरे दयाहीन भिक्षुक! हम कौन हैं ? तुझे इस समय कुछ भी मालूम नहीं, तुझे पीछे मालूम होगा। तेरे ऐसे दया रहित वचनों पर मैं बाद में विचार करूँगा। जो कुछ तुझे उस समय दण्ड दिया जाएगा इस समय उसके कहने की विशेष आवश्यकता नहीं, ऐसा कहकर कुमार श्रेणिक और सेठ इन्द्रदत्त जहाँ बौद्धसंन्यासी रहते थे, वहाँ गये और वहाँ पर उन्होंने रक्तवस्त्रों को धारण करनेवाले अनेक बौद्ध संन्यासियों को देखा।

कुमार श्रेणिक के लक्षणों को राजा के योग्य देखकर, यह राजकुमार है, इस बात को जानकर और यह शीघ्र ही राजा होगा, यह भी समझकर उनमें से एक संन्यासी ने राजकुमार श्रेणिक से पूछा—

हे मगध देश के स्वामी महाराज उपश्रेणिक के पुत्र बुद्धिमान कुमार श्रेणिक! तुम कहाँ जा रहे हो ? अकेले यहाँ पर आप कैसे आये ?

कुमार ने उत्तर दिया कि राजा ने कोपकर हमें देश से निकाल दिया है। फिर बौद्ध संन्यासियों के आचार्य ने कहा—हे कुमार! अब आप पहले भोजनादि कीजिये, फिर मेरे हितकर वचनों को सुनिये। कुमार! आप कुछ दिन बाद नियम से मगध देश के राजा होवेंगे, इसमें आप जरा भी सन्देह न करें। मेरे वचनों पर आप विश्वास कीजिये और आप सुख की प्राप्ति के लिये शीघ्र ही बौद्धधर्म को ग्रहण कीजिये।

इस बौद्धधर्म की कृपा से ही आपको नि:सन्देह राज्य की प्राप्ति होगी। विश्वास कीजिये कि व्रतों के करने से तथा उपवासों के आचरण करने से हमारे समस्त कार्यों की सिद्धि होती है। हमारा

यह उपदेश है कि आप राज्य की प्राप्ति के लिये निश्चल रीति से बौद्धधर्म को धारण करें।

हे कुमार! किसी समय जब संसार में यह प्रश्न उठा था कि धर्म क्या है? उस समय समस्त विज्ञान के पारगामी महादेव भगवान बुद्ध ने यह वचन कहा था कि हे चतुरार्य! जो धर्म वास्तविक रीति से सच्चे आत्मा के स्वरूप को बतलानेवाला है और समस्त पदार्थों के क्षणिकत्व को समझानेवाला है, वही धर्म वास्तविक धर्म है, एवं वही सेवन करने के योग्य है, उससे भिन्न कोई भी धर्म सेवन योग्य नहीं।

हे राजकुमार! विज्ञान, वेदना, संस्कार, रूप, नाम ये पाँच प्रकार की संज्ञाएँ ही तीनों लोक में दु:ख-स्वरूप हैं। पाँच प्रकार के विज्ञान आदिक मार्ग समुदाय और मोक्ष, ये तत्त्व हैं। अष्टांग मोक्ष की प्राप्ति के लिये इन्हीं तत्त्वों को समझना चाहिए। यह समस्त लोक क्षणभंगुर नाशवान है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं। चित्त में जो पदार्थ सदाकाल रहनेवाला नित्य मालूम पड़ता है, वह स्वप्न के समान भ्रमस्वरूप है तथा जो ज्ञान समस्त प्रकार की कल्पनाओं से रहित निर्भ्रान्त अर्थात् भ्रम भिन्न और निर्विकल्प हो, वही प्रमाण है किन्तु सविकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है, वह मृगतृष्णा के समान भ्रमजनक ही है।

जिन तत्त्वों का वर्णन बौद्धधर्म में किया है, वे ही वास्तविक तत्त्व हैं। इसलिए यदि तुम अपने पिता के राज्य की प्राप्ति के लिये उत्सुक हो-मगधदेश के राजा बनना चाहते हो तो आप समस्त इष्ट पदार्थों का सिद्ध करनेवाला बौद्धध्र्मा शीघ्र ही ग्रहण करो। हे कुमार! यदि आपको राजा बनने की इच्छा है तो आप बौद्धधर्म को

ही अपना मित्र बनायें क्योंकि इस धर्म से बढ़कर दुनियाँ में दूसरा कोई भी मित्र नहीं है।

बौद्धाचार्य के इन वचनों ने कुमार श्रेणिक के पवित्र हृदय पर पूरा प्रभाव जमा दिया। कुमार श्रेणिक ने बौद्धाचार्य के कथनानुसार बौद्धधर्म धारण किया एवं उस बौद्धाचार्य के चरणों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बौद्धधर्म के पक्के अनुयायी बन गये। अतिशय निर्मल चित्त के धारक कुमार श्रेणिक ने उसी बौद्धाश्रम में इन्द्रदत्त सेठ के साथ-साथ स्नान, अन्न, पानादि से मार्ग की थकावट दूर की तथा राज्य की ओर से जो उनका अपमान हुआ था और उस अपमान से जो उनके चित्त पर आघात हुआ था, उस आघात को भी वे भूलने लगे और उस बौद्धाचार्य के साथ कुछ दिन पर्यन्त वहीं पर रहे।

अनन्तर इसके अब यहाँ पर अधिक रहना ठीक नहीं, यह विचारकर अतिशय हर्षितचित्त, बौद्धधर्म के सच्चे अनुयायी, कुमार श्रेणिक उस स्थान से चले। यह समाचार सेठ इन्द्रदत्त ने भी सुना। सेठ इन्द्रदत्त भी यह जानकर कि कुमार श्रेणिक अत्यन्त पुण्यात्मा है, कुमार के पीछे-पीछे चल दिये। इस प्रकार वनमार्गों को देखते हुए, अनेक प्रकार की पर्वत गुफाओं को निहारते हुए, मत्तमयूरों के नृत्य को आनन्दपूर्वक देखते हुए वे दोनों महोदय जब कुछ थक गये, तब कुमार श्रेणिक ने अति मधुर वाणी से सेठ इन्द्रदत्त से कहा—

हे श्रेष्ठिन् (मातुल)! चलते-चलते इस मार्ग में मैं और आप थक गये हैं, इसलिए चलिये जिह्वारूपी रथ पर चढ़कर चलें। कुमार की इस आकस्मिक बात को सुनकर अचम्भे में पड़कर सेठ इन्द्रदत्त ने विचारा कि संसार में कोई जिह्वारथ है? यह बात न तो हमने आज तक सुनी और न साक्षात् जिह्वारूपी रथ ही देखा। मालूम होता है

यह कुमार कोई पागल मनुष्य है। ऐसा थोड़ी देर तक विचार कर सेठ इन्द्रदत्त चुप हो गये, उन्होंने कुमार श्रेणिक से बातचीत करना भी बन्द कर दिया एवं दोनों चुपचाप ही आगे को चलने लगे।

थोड़ी दूर आगे जाकर, अपने निर्मल जल से पथिकों के मन को तृप्त करनेवाली, अत्यन्त निर्मल जल से भरी हुई एक उत्तम नदी दोनों ने देखी। नदी के देखते ही कुमार श्रेणिक ने तो अपने जूते पहिनकर नदी में प्रवेश किया और सेठ इन्द्रदत्त ने पैरों से दोनों जूतों को पहिले उतारकर हाथ में ले लिया, बाद वे नदी में घुसे। मगधदेश के कुमार श्रेणिक को जूते पहिनकर जब उन्होंने नदी में प्रवेश करते हुए देखा तो सेठ और भी अचम्भा करने लगे और उनको इस बात का पक्का निश्चय हो गया कि कुमार श्रेणिक जरूर कोई पागल पुरुष है। तथा कुमार श्रेणिक के काम से उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि अन्य बुद्धिमान पुरुष तो यह काम करते हैं कि जल में जूता उतारकर घुसते हैं, किन्तु कुमार श्रेणिक ने जूता पहिने ही नदी में प्रवेश किया, मालूम होता है कि यह साधारण मूर्ख नहीं, बड़ा भारी मूर्ख है।

इस प्रकार विचार करते-करते सेठ इन्द्रदत्त फिर कुमार श्रेणिक के पीछे-पीछे आगे चले। कुछ दूर चलकर उन्होंने अत्यन्त शीतल छाया युक्त एक वृक्ष देखा। मार्ग में धूप आदि से अतिशय क्लांत कुमार श्रेणिक और सेठ इन्द्रदत्त दोनों ही उस वृक्ष के पास पहुँचे।

कुमार श्रेणिक तो उस वृक्ष की छाया में अपने सिर पर छतरी तानकर बैठे और सेठ इन्द्रदत्त छतरी बन्द कर। कुमार को छतरी ताने हुए बैठा देखकर सेठ इन्द्रदत्त फिर भी मन में गहरा विचार करने लगे कि संसार में और मनुष्य तो छतरी को धूप से बचने के

लिये सिर पर लगाते हैं किन्तु यह कुमार अत्यन्त शीतल वृक्ष की छाया में भी छतरी लगाये बैठा है, यह तो बड़ा मूर्ख मालूम पड़ता है।

इस प्रकार विचार करते-करते फिर भी सेठ इन्द्रदत्त कुमार के साथ आगे चले। आगे चलकर उन्होंने अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम मनुष्यों से व्याप्त, अनेक प्रकार के हाथी, घोड़ा आदि पशुओं से भरा हुआ अतिशय मनोहर, एक नगर देखा। नगर को देखकर कुमार श्रेणिक ने सेठ इन्द्रदत्त से पूछा—

हे मामा! कृपाकर कहें यह उत्तम नगर बसा हुआ है या उजड़ा हुआ? कुमार के इन वचनों को सुनकर सेठ इन्द्रदत्त ने उत्तर नहीं दिया किन्तु अतिशय चतुर कुमार श्रेणिक और इन्द्रदत्त फिर भी आगे को चल दिये। आगे कुछ ही दूर जाकर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर पुरवासी मनुष्य अपनी स्त्री को मार मारते हुए देखा। देखकर फिर कुमार श्रेणिक ने सेठ इन्द्रदत्त से प्रश्न किया कि —हे श्रेष्ठिन्! बताईये कि जिस स्त्री को यह सुन्दर मनुष्य मार रहा है, वह स्त्री बँधी हुई है अथवा खुली हुई? कुमार के इस प्रकार के वचन सुनकर इन्द्रदत्त ने विचारा कि यह कुमार अवश्य पागल है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

इस प्रकार अपने मन में कुमार के पागलपने का दृढ़ विश्वास कर फिर भी दोनों आगे को बढ़े। आगे चलते-चलते उन्होंने जिसको मनुष्य जलाने के लिये ले जा रहे थे, ऐसे एक मरे हुए मनुष्य को देखा। मृत मनुष्य को देखकर फिर भी कुमार श्रेणिक को शंका हुई और शीघ्र ही उन्होंने सेठ इन्द्रदत्त से पूछा—मामा! मुझे शीघ्र बतावें कि यह मुर्दा आज मरा है या पहिले का मरा हुआ है।

आगे बढ़कर श्रेणिक ने भले प्रकार पके हुए फलों से रम्य फलों

की उत्तम सुगन्धि से जिसके ऊपर भौंरा गुँजार शब्द कर रहे हैं, जो जल से भींगे हुए फलों से नीचे को नम रहा है, एक उत्तम शालिक्षेत्र देखा। शालिक्षेत्र देखकर कुमार ने फिर सेठी इन्द्रदत्त से प्रश्न किया—हे माता! शीघ्र बताइये इस क्षेत्र का मालिक इस क्षेत्र के फलों को खावेगा या खा चुका?

आगे चलकर किसी एक नवीन क्षेत्र में हल चलाता हुआ एक किसान मिला, उसको देखकर फिर कुमार श्रेणिक ने प्रश्न किया कि हे श्रेष्ठिन्! जल्दी बताइये इस हल पर हल के स्वामी कितने हैं तथा आगे बढ़कर एक बदरीवृक्ष दृष्टिगोचर हुआ, उसे देखकर फिर भी कुमार ने सेठी इन्द्रदत्त से पूछा—हे मातुल! कृपाकर मुझे बताइये कि इस बेरिया के पेड़ में कितने काँटे हैं?

इस प्रकार कुमार श्रेणिक तथा सेठी इन्द्रदत्त दोनों जनों की जिह्वारथ, जूता, छतरी, ग्राम का निश्चय, स्त्री, मुर्दा, शालिक्षेत्र, हल, काँटे के विषय में बातचीत हुई। पुण्य के फल से अत्यन्त विशद बुद्धि के धारक कुमार श्रेणिक ने अपने स्नेहयुक्त वचनों से, शब्दों के अर्थ को भलीभाँति नहीं समझनेवाले भी सेठ इन्द्रदत्त के कानों को तृप्त कर दिया और उत्तम बुद्धि को प्रकट करनेवाले वचन कहे। तथा नाना प्रकार की शास्त्र कथाओं में प्रवीण, चन्द्रमा के समान शोभा को धारण करनेवाला, तेजस्वी, लक्ष्मीवान, अपने पुण्य से जितेन्द्रिय पुरुषों को भी अपने आधीन करनेवाला, पृथ्वी में सुन्दर, कुमार श्रेणिक ने सेठ इन्द्रदत्त के साथ उत्तमोत्तम तालाबों से शोभित वेणपद्म नगर में प्रवेश किया।

देखो, कर्म का फल—कहाँ तो मगधदेश? कहाँ राजगृहनगर? और नन्दिग्राम कहाँ! तथा कहाँ बौद्धमत का सेवन? और कहाँ सेठ

इन्द्रदत्त के साथ मित्रता! संसार कर्मों का फल विचित्र और अलक्ष्य है, किन्तु नियम है कि जीवों के समस्त अशुभ कार्यों का नाश धर्म से ही होता है, धर्म से ही शुभ कर्मों की प्राप्ति होती है। संसार में धर्म से प्रिय वस्तुओं का समागम होता है, इसलिए जिन मनुष्यों की उपर्युक्त वस्तुओं के पाने की अभिलाषा है, उन्हें चाहिए कि वे सदा अपनी बुद्धि को धर्म में ही लगावें।

इस प्रकार भविष्यत् काल में होनेवाले श्रीपद्मनाभ तीर्थंकर के जीव श्री महाराज श्रेणिक चरित्र में कुमार श्रेणिक का राजगृह नगर से निष्कासन कहनेवाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

चौथा सर्ग

महाराज श्रेणिक का नंदश्री के साथ विवाह वर्णन

अनन्तर जिस समय सेठ इन्द्रदत्त वेणपद्म नगर के तालाब के पास पहुँचे तो वहीं से उन्होंने वेणपद्म नगर को देखा तथा जिस वेणपद्म नगर की स्त्रियों के मुख-चन्द्रमा मनोहर, कामीजनों के मन तृप्त करनेवाले थे, उनकी मनोहरता के सामने चन्द्रमा अपने को कुछ भी मनोहर नहीं मानता था और लज्जित हो रात-दिन जहाँ-तहाँ घूमता-फिरता था तथा जिस नगर के निवासी मनुष्य सदा पुण्यकर्म में तत्पर, दानी, भोगी, धीर-वीर और जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा को भलीभाँति पालन करनेवाले थे, ऐसे उस सर्वोत्तम नगर की शोभा देखकर वे अति प्रसन्न हुए और कुमार श्रेणिक से कहने लगे—हे कुमार! इस नगर में आप क्या करेंगे? कहाँ पर निवास करेंगे? मुझे कहें।

इन्द्रदत्त की बात सुनकर कुमार श्रेणिक ने उत्तर दिया कि हे वणिकस्वामी इन्द्रदत्त! मैं भाँति-भाँति के कमलों से शोभित इस तालाब के किनारे रहूँगा, आप अपने मनोहरपुर में जाकर निवास करें।

कुमार के मुख से ऐसे उत्तम वचन सुनकर सेठ इन्द्रदत्त ने फिर कहा कि हे राजकुमार! यदि आप यहाँ रहना चाहते हैं तो मेरा एक निवेदन है, वह यही कि जब तक मेरी आज्ञा न होवे, आप इस तालाब को छोड़कर कहीं न जायें।

इन्द्रदत्त के उस प्रकार के वचनों को सुनकर कुमार श्रेणिक तो तालाब के किनारे बैठ गये और सेठ इन्द्रदत्त ने अपने नगर की ओर

गमन किया। ज्यों इन्द्रदत्त अपने घर पहुँचे और जिस समय वे अपने कुटुम्बियों से मिले तो उनको अति आनन्द हुआ, मारे आनन्द के उनके दोनों नेत्र फूल गये, अंग रोमांचित हो गया और मुख भी कान्तिमान हो गया तथा जिस समय स्त्री-पुत्र-पुत्रियों ने उनका सम्मान किया और प्रेम की दृष्टि से देखा तो उन्होंने पूर्वोपार्जित धर्म के प्रभाव से अपना जन्म सार्थक जाना और अपने को कृतकृत्य समझा।

महोदय सेठ इन्द्रदत्त के यौवन एवं उन्नत स्तनों से शोभित, चन्द्रमुखी कोकिला के समान मधुर बोलनेवाली-पिकबैंनी नन्दश्री नाम की कन्या थी। उस कन्या ने अपने मनोहर कण्ठ से कोकिला को जीत लिया था। वह मुख से चन्द्रमा को, नेत्रों से कमल पत्र को और हाथ से कमल पल्लव को जीतनेवाली थी। उसके केशों के सामने मनोहर नीलमणि भी तुच्छ मालूम पड़ती थी। गति से वह हंसिनी की चाल नीची करनेवाली थी एवं स्तनों से उसने सुवर्णकलशों को, नितम्बों से उत्तमशिला को, रूप से कामदेव की स्त्री रति को तिरस्कृत कर दिया था।

जिस समय इस कन्या ने अपने पिता इन्द्रदत्त को देखा तो शीघ्र ही उसने प्रणामपूर्वक कुशलक्षेम पूछी तथा कुशलक्षेम पूछने के बाद अपनी मनोहर वाणी से यह कहा कि हे पूज्यपिता! आपके साथ कोई भी उत्तम बुद्धिमान मनुष्य आया हुआ नहीं दिखता। परदेश से आप किसी मनुष्य के साथ-साथ आये हैं अथवा अकेले? पुत्री के ऐसे वचन सुनकर एवं उन वचनों के तात्पर्य को भी भलीभाँति समझकर सेठ इन्द्रदत्त ने हर्षपूर्वक उत्तर दिया—

हे पुत्री! मेरे साथ एक मनुष्य आया है और वह अत्यन्त

रूपवान, युवा, गुणी, मनोहर, तेजस्वी और बुद्धिमान है तथा वह मनुष्य अपने को मगधदेश के स्वामी महाराज उपश्रेणिक का पुत्र कुमार श्रेणिक बतलाता है, यद्यपि वह तेरे लिये सर्वथा वरने योग्य है, तथापि उसमें एक बड़ा भारी दोष है कि वह विचाररहित वचन बोलने के कारण मूर्ख मालूम पड़ता है।

पिता के इस प्रकार के वचन ध्यानपूर्वक सुनकर मनोहरांगी, दाँतों की दीप्ति से सर्वत्र प्रकाश करनेवाली, कठिनस्तनी, नतांगी कुमारी नंदश्री ने कहा—हे पिता! कृपाकर आप मुझसे कहें कि जो मनुष्य आपके साथ आया है, उसकी आपने क्या-क्या चेष्टा देखी हैं, उसकी उम्र क्या है और किसलिए वह यहाँ पर आया है?

पुत्री के इस प्रकार वचन सुनकर सेठ इन्द्रदत्त ने कहा—हे पुत्री! यदि उसके विषय में कुछ जानने की लालसा है, तो मैं उस मनुष्य के सब वृत्तान्त को कहता हूँ, तू आनन्दपूर्वक सुन-मैं लौटकर घर आ रहा था, तब बीच मार्ग में नन्दग्राम के समीप मेरी उससे भेंट हुई। उसी समय से उसने मुझे मामा बना लिया और मार्ग में भी मामा कहकर ही मुझे पुकारा, सो यह बता कि कौन और कहाँ का रहनेवाला तो वह और मैं कहाँ का रहनेवाला? फिर उसने मुझे मामा कहकर क्यों पुकारा? दूसरे कुछ चलकर फिर उसने कहा कि हम दोनों थक गये हैं, इसलिए चलो अब जिह्वारूपी रथ पर सवार होकर गमन करें।

हे पुत्री! यह बात बिल्कुल उसने मिथ्या कही थी, क्योंकि जिह्वारथ संसार में कोई है, यह बात आजतक न सुनी, न देखी। पुनः कुछ चलकर नदी पड़ी, उसमें उसने जूते पहनकर प्रवेश किया तथा अत्यंत शीतल वृक्ष की छाया के नीचे वह छतरी तानकर

बैठा तथा आगे चलकर एक अनेक प्रकार के मनोहर घरों से शोभित, मनुष्य एवं हाथी, घोड़ा आदि पशुओं से व्याप्त, एक नगर पड़ा, उस नगर को देखकर उसने मुझसे पूछा—हे मातुल! यह नगर उजड़ा हुआ है या बसा हुआ?

हे पुत्री! यह प्रश्न भी उसने मन को आनंद देनेवाला नहीं हो सकता। आगे चलकर मार्ग में कोई एक मनुष्य किसी स्त्री को मार रहा था, उस स्त्री को देखकर फिर उसने मुझे पूछा—हे मामा! यह स्त्री बँधी हुई है या खुली हुई?

उसी प्रकार आगे चलकर एक मरा हुआ मनुष्य मिला, उसे देखकर फिर उसने पूछा कि यह आज का मरा है अथवा पहले का ही मरा हुआ है? आगे चलकर अतिशय पके हुए उत्तम धान्यों से व्याप्त एक क्षेत्र पड़ा, उसे देखकर उसने यह कहा—हे मामा! इस खेत का मालिक इसके फलों को खावेगा या खा चुका?

इसी प्रकार हल चलाते हुए किसी किसान को देखकर उसने पूछा कि इस हल पर हल के चलानेवाले कितने मनुष्य हैं? तथा आगे चलकर एक बेरी का वृक्ष पड़ा, उसको देखकर उसने यह कहा—हे मातुल! इसमें कितने कांटे हैं—इत्यादि उसके द्वारा किये हुए अयोग्य, पूर्वापर विचाररहित प्रश्नों से मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह कुमार अवश्य पागल है।

पिता के मुख से कुमार श्रेणिक द्वारा की हुई चेष्टाओं को सुनकर बुद्धिमति नन्दश्री ने जवाब दिया—हे पिता! उस कुमार को जो उपर्युक्त चेष्टाओं से आपने पागल समझ रखा है, सो वह कुमार पागल नहीं है, किन्तु वह अत्यन्त चतुर एवं अनेक कलाओं में निपुण है, ऐसा निःसंशय समझिये। क्योंकि जो उस कुमार ने आपको

मामा कहकर पुकारा था, उसका मतलब यह था कि संसार में भानजा अत्यन्त माननीय एवं प्रिय होता है, इसलिए मामा के कहने से उस कुमार ने आपके प्रेम की आकांक्षा की थी तथा जिह्वारथ का अर्थ कथा कौतूहल है।

कुमार ने जो जिह्वारथ कहा था, वह भी उसका कहना बहुत ही उत्तम था, क्योंकि जिस समय सज्जन पुरुष मार्ग में थक जाते हैं, उस समय वे थकावट को अनेक प्रकार के कथा कौतूहल से दूर करते हैं। कुमार का लक्ष्य भी उस समय थकावट को दूर करने के लिये ही था तथा जो कुमार नदी के जल में जूते पहनकर घुसा था, वह काम भी उसका एक बड़ी भारी बुद्धिमानी का था, क्योंकि जल के भीतर बहुत से कंटक एवं पत्थरों के टुकड़े पड़े रहते हैं, सर्प आदिक जीव भी रहते हैं।

यदि जल में जूता पहनकर प्रवेश न किया जाए तो कंटक एवं पत्थरों के टुकड़ों के लग जाने का भय रहता है। सर्प आदि काटने का भी भय रहता है। इसलिए कुमार का जल में जूता पहनकर घुसना सर्वथा योग्य ही था।

तथा हे पिता! कुमार वृक्ष की छाया में छतरी लगाकर बैठा था, उसका वह कार्य भी एक बड़ी भारी बुद्धिमानी को प्रगट करनेवाला था, क्योंकि वृक्ष की छाया में छतरी लगाकर न बैठ जाने पर पक्षी आदि जीवों की वीट गिरने की सम्भावना रहती है। इसलिए वृक्ष की छाया में छतरी लगाकर कुमार का बैठना भी सर्वथा योग्य था।

अति मनोहर नगर को देखकर कुमार ने जो आपसे यह प्रश्न किया था—हे मातुल! यह नगर उजड़ा हुआ है या बसा हुआ? उसका आशय भी बहुत दूर तक था क्योंकि भले प्रकार बसा हुआ

नगर वही कहा जाता है, जो नगर उत्तम धर्मात्मा मनुष्यों से जिन प्रतिबिम्ब, जिन चैत्यालय, एवं उत्तम यतीश्वरों से अच्छी तरह परिपूर्ण हो और उससे भिन्न नगर उजड़ा हुआ कहा जाता है, 'इसलिए यह नगर बसा हुआ है अथवा उजड़ा हुआ ?' यह प्रश्न भी कुमार का विचारपूर्ण था।

हे पिता ! स्त्री को मारते हुए किसी पुरुष को देखकर जो कुमार ने, 'यह स्त्री बँधी हुई है अथवा खुली हुई है ?' आपसे यह प्रश्न किया था, वह प्रश्न भी उसका अत्युत्तम प्रश्न था क्योंकि बँधी हुई स्त्री विवाहिता कही जाती है और छूटी हुई का नाम अविवाहिता है। कुमार का प्रश्न भी इसी आशय को लेकर था कि यह स्त्री इस पुरुष की विवाहिता है अथवा अविवाहिता ? अत: कुमार का यह प्रश्न भी उसकी चतुरता को जाहिर करता है।

मरे मनुष्य को देखकर कुमार ने यह प्रश्न किया था कि 'यह मरा हुआ मनुष्य आज का मरा हुआ है अथवा पहले का मरा हुआ ?' उसका यह प्रश्न भी बड़ी चतुरता से परिपूर्ण था, क्योंकि हे पूज्य पिता ! जो मनुष्य धर्मात्मा, दयावान, ज्ञानवान, विनय से उत्तम पात्रों को दान देनेवाला, एवं समस्त जगत में यशस्वी होता है और वह मर जाता है, उसको हाल का मरा हुआ कहते हैं और इससे भिन्न जो मनुष्य दानरहित, कामी, पापी होता है, उसको संसार में पहले से ही मरा हुआ कहते हैं। कुमार का जो यह प्रश्न था कि— 'यह मरा हुआ मनुष्य हाल का मरा हुआ है अथवा पहले का ? यह प्रश्न भी कुमार को अत्यन्त बुद्धिमान एवं चतुर बतलाता है ?'

हे पिता ! कुमार ने धान्य परिपूर्ण खेत को देखकर आपसे जो यह पूछा था कि इस क्षेत्र के स्वामी ने इस क्षेत्र के धान्य का उपभोग

कर लिया है अथवा करेगा ? यह प्रश्न भी कुमार का बड़ी बुद्धिमानी का था क्योंकि कर्ज लेकर जो खेत बोया जाता है, उसके धान्य को तो पहले ही उपभोग कर लिया जाता है, इसलिए वह मुक्त कहा जाता है और जो खेत बिना कर्ज के बोया जाता है, उस खेत के धान्य को उस खेत का स्वामी भोगेगा ऐसा कहा जाता है। कुमार के प्रश्न का भी यही आशय था कि यह खेत कर्ज लेकर बोया गया है अथवा बिना कर्ज के ? इसलिए इस प्रश्न से भी कुमार की बुद्धिमानी वचनागोचर जान पड़ती है।

हे तात! कुमार श्रेणिक ने जो यह प्रश्न किया था कि—हे मातुल! इस बेरी के वृक्ष के ऊपर कितने काँटे हैं ? सो उसका आशय यह है कि काँटे तो दो प्रकार के होते हैं—एक सीधे दूसरे टेढ़े। उसी प्रकार दुर्जनों के भी वचन होते हैं।

इसलिए यह प्रश्न भी कुमार श्रेणिक का सर्वथा सार्थक ही था। इसलिए उक्त प्रश्नों से कुमार श्रेणिक अत्यन्त निपुण, विद्वानों के मनों को हरण करनेवाला, समस्त कलाओं में प्रवीण और अनेक प्रकार के शास्त्रों में चतुर है, ऐसा समझना चाहिए। हे तात! आप धैर्य रखें, कुमार श्रेणिक की बुद्धि की परीक्षा मैं और भी कर लेती हूँ, किन्तु कृपाकर आप मुझे यह बतावें कि अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम विचारों से परिपूर्ण सर्वोत्तम गुणों का मन्दिर, वह कुमार ठहरा कहाँ है ?

नन्दश्री के इस प्रकार सन्तोष भरे वचन सुनकर इन्द्रदत्त ने उत्तर दिया—हे सुते! जिस कुमार के विषय में तूने मुझे पूछा है, अतिशय रूपवान एवं युवा वह कुमार इस नगर के तालाब के किनारे पर ठहरा हुआ है।

पिता के मुख से ऐसे वचन सुनते ही कुमार को तालाब के किनारे ठहरा हुआ जानकर, नन्दश्री शीघ्र ही भागती-भागती, जो पर मनुष्य के मन के अभिप्रायों को जानने में अतिशय प्रवीण थी, ऐसी अपनी प्रिय सखी निपुणमति के पास गयी और निपुणमणि के पास पहुँचकर यह कहा—

हे लम्बे-लम्बे नखों को धारण करनेवाली प्रिय सखी निपुणमति! जहाँ पर अत्यन्त रूपवान कुमार श्रेणिक बैठे हैं, वहाँ पर तू शीघ्र जा और उनको आनन्दपूर्वक यहाँ लिवाकर ले आ। प्रियतमा सखी! इस बात में जरा विलम्ब न हो। कुमारी नन्दश्री की यह बात सुनकर प्रथम तो निपुणमति सखी ने अपना बहुत शृंगार किया, पश्चात् वह नख में तेल भरकर कुमारी की आज्ञानुसार जिस स्थान पर कुमार श्रेणिक विराजमान थे, वहाँ पर गयी। वहाँ कुमार को बैठे हुए देखकर एवं उनके शरीर की अपूर्व शोभा को निहारकर उसने अति मधुर वाणी से कुमार से कहा—हे कुमार! आप प्रसन्न तो हैं? क्या पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख को धारण करनेवाले आप ही सेठ इन्द्रदत्त के साथ आये हैं?

निपुणमती के इस प्रकार चित्ताकर्षक वचन सुन कुमार चुप न रह सके। उन्होंने शीघ्र ही उत्तर दिया कि हे चन्द्रवदनी अबले! मैं ही सेठ इन्द्रदत्त के साथ आया हूँ, जो कुछ काम होवे, बे रोक-टोक आप कहें और किसी बात का विचार न करें।

कुमार के इस प्रकार आनन्दप्रद एवं मनोहर वचन सुनकर निपुणमती ने उत्तर दिया—हे कुमार! जिस सेठ इन्द्रदत्त के साथ आप आये हैं, उसी सेठ की अपने रूप से रति को भी तिरस्कार करनेवाली सर्वोत्तम नन्दश्री नाम की पुत्री है। उस पुत्री का कटिभाग,

दोनों स्तनों के भार से अत्यन्त कृश है। अतिशय कृश कटिभाग की रक्षार्थ उसके दो स्थूल नितम्ब हैं, जो अत्यन्त मनोहर हैं। भाँति-भाँति के कौशलों से अनेक स्त्रियों का विधाता ब्रह्मा भी इस नन्दश्री की रूप आदि सम्पदा देखकर इसके समान दूसरी किसी सत्री को उत्तम नहीं मानता है। उसका मुख कामीजनों के चित्तरूपी रात्रिविकासी कमलों को विकसित करनेवाला एवं समस्त अन्धकार को नाश करनेवाला पूर्ण चन्द्रमा है और वह अतिशय देदीप्यमान नखों से शोभित है।

हे कुमार! उसी समस्त कामीजनों के चित्त को हरण करनेवाली कुमारी नन्दश्री ने, अपनी सुगन्धि से भ्रमरों को लुभानेवाला, सर्वोत्तम एवं आनन्द का देनेवाला यह नखभर तेल मेरे द्वारा आपके लगाने के लिये भेजा है। हे महाराज! जितनी जल्दी हो सके, इसको लगाकर आप सुखपूर्वक स्नान करें तथा मेरे साथ अनेक प्रकार की शोभाओं से व्याप्त सेठ इन्द्रदत्त के घर शीघ्र चलें।

जिस समय कुमार ने निपुणमती के वचन सुने और जब नखभर तेल देखा तो उनके मन में गहरी चिन्ता हो गयी। वे मन ही मन यह कहने लगे कि यह न कुछ तेल है, इसको सर्वांग में लगाकर स्नान कैसे किया जा सकता है? मालूम होता है सुगन्ध के लोभी भ्रमरों से चुम्बित, एवं उत्तम, यह थोड़ा तेल मेरी बुद्धि की परीक्षा के लिये कुमारी नन्दश्री ने भेजा है, ऐसा क्षण एक भले प्रकार विचारकर गुरुओं के भी गुरु कुमार ने अपने पाँव के अंगूठे से जमीन में एक उत्तम गड्ढा खोदा और मुँह तक उसको जल से भरकर दीर्घ नख धारण करनेवाली सखी निपुणमती से कहा कि—हे उन्नतस्तनी सुभगे! तू इस जल के भरे हुए गड्ढे में नख में भरे हुए तेल को डाल दे।

कुमार श्रेणिक की इस प्रकार आज्ञा पाते ही अति स्नेह की दृष्टि से कुमार की ओर देखकर और मन ही मन में अति प्रसन्न निपुणमती ने जल से भरे हुए उस गड्ढे में तेल छोड़ दिया और अनेक प्रकार की कलाओं में प्रवीण वह चुपचाप अपने घर की ओर चल दी। निपुणमती को इस प्रकार जाते हुए देखकर कुमार ने पूछा—हे अबले! सेठ इन्द्रदत्त का घर कहाँ और किस जगह पर है? किन्तु कुमार के इस प्रकार के उत्तम प्रश्न को सुनकर भी निपुणमती ने कुछ भी जवाब नहीं दिया और विनययुक्त वह निपुणमती कान में स्थित तालवृक्ष के पत्ते का भूषण दिखाकर चुपचाप चली गयी।

कुमार ने चातुर्य के देखने से प्रफुल्लित कमलों के समान नेत्रों से शोभित सखी निपुणमती ने शीघ्र ही अत्यन्त मनोहर सेठ इन्द्रदत्त के घर में प्रवेश किया और कुमारी नन्दश्री के पास जाकर जो-जो कुमार श्रेणिक का चातुर्य उसने देखा था, सब कह सुनाया। कुमारी नन्दश्री निपुणमती से कुमार के चातुर्य की प्रशंसा सुनकर शीघ्र ही अपने पिता के पास गयी और जो कुमार श्रेणिक का चातुर्य उसके पिता को आश्चर्य का करनेवाला था, उसे सेठ इन्द्रदत्त को जा सुनाया और यह कहा—

हे तात! कुमार श्रेणिक अत्यन्त गुणी हैं, ज्ञानवान हैं, समस्त जगत के चातुर्यों में प्रवीण हैं, कोकशास्त्र के भी ज्ञाता हैं और अनेक प्रकार की कलाओं को भी जाननेवाले हैं, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। इसलिए आप कुमार के पास जाएँ और शीघ्र ही यहाँ पर उनको लिवाकर ले आवें। आप उन्हें पागल न समझें क्योंकि जिस समय आप कुमार के साथ-साथ आये थे, उस समय जिह्वारथ

आदि वाक्यों से कुमार क्रीड़ा करते हुए आपके साथ में आये थे और उन वाक्यों से कुमार ने अपना चातुर्य आपको बतलाया था। उनमें स्वाभाविक, मनोहर एवं अनेक प्रकार के कल्याणों को करनेवाले अनेक गुण विद्यमान हैं।

इधर कुमार के विपथ में नन्दश्री तो यह कह रही थी, उधर कुमार ने निपुणमती के चले जाने पर पहले तो उस तेल से अपने शरीर का अच्छी तरह मर्दन किया। अंजन के समान काले बालों में उसे अच्छी तरह लगाया। और इच्छापूर्वक उस तालाब में स्नान किया, पीछे वहाँ से नगर की ओर चल दिये। स्वर्गपुर के समान उत्तम शोभा को धारण करनेवाले उस पुर में घुसकर वे यह विचारने लगे कि सेठ इन्द्रदत्त का घर कहाँ और किस ओर है? मुझे किस मार्ग से सेठ इन्द्रदत्त के घर जाना चाहिए?

इसी विचार में वे इधर-उधर बहुत घूमे, अनेक घर देखे, बहुत सी गलियों में भ्रमण किया, किन्तु इन्द्रदत्त के घर का उन्हें पता न लगा। अन्त में घूमते-घूमते वे क्लान्त हो गये और ज्यों ही उन्होंने श्रम दूर करने के लिये किसी स्थान पर बैठना चाहा, त्यों ही उन्हें निपुणमती के इशारे का स्मरण आया। वे अपने मन में विचारने लगे कि जिस समय निपुणमती तालाब से गयी थी, उस समय मैंने उसे पूछा था कि इन्द्रदत्त का घर कहाँ है? उस समय उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया था किन्तु तालवृक्ष के पत्ते से बने हुए भूषण से मण्डित वह अपना कान दिखाकर ही चली गयी थी। इसलिए जान पड़ता है कि जिस घर में ताल का वृक्ष हो, निश्चित ही वह सेठ इन्द्रदत्त का घर है।

अब कुमार तालवृक्ष सहित घर का पता लगाने लगे। पता

लगाते-लगाते उन्हें एक तालवृक्ष से मण्डित सतखना महल नजर पड़ा और लालसापूर्वक वे उसी की ओर झुक पड़े।

इधर कुमार के आने का समय जानकर कुमार की और भी बुद्धि की परीक्षा के लिये कुमारी नन्दश्री ने द्वार के सामने घोंटूपर्यन्त कीचड़ डलवा रखी थी और उसमें एक-एक पैर के फासले में एक-एक ईंट भी रखवा दी थी तथा अपनी प्रिय सखी से वह यों अपना विचार प्रकट कर कह रही थी कि हे सखी! अब मैं कुमार की बुद्धि की परीक्षा जब स्वयं अपने नेत्रों से कर लूँगी, तब मैं उस कुमार के साथ अपने विवाह की प्रतिज्ञा करूँगी।

नन्दश्री की यह बात सुनकर कुमार के बुद्धिचातुर्य को देखने के लिये वह निपुणमती सुन्दरी भी उसके पास बैठ गयी। इस प्रकार अनेक कथा कौतूहलों को करती हुईं वे दोनों कुमार के आगमन का इन्तजार कर रही थीं कि तभी कुमार श्रेणिक भी दरवाजे के पास पहुँचे।

आते ही जब उन्होंने द्वार पर घोंटूपर्यन्त भरी हुई कीचड़ देखी और उस कीचड़ के ऊपर एक-एक पैर के फासले से रखी हुईं ईंटें भी जब उनके नजर पड़ीं तो यह विचित्र दृश्य देखकर वे एकदम दंग रह गये और अपने मन में विचारने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि नगरभर में और कहीं भी कीचड़ देखने में नहीं आयी, कीचड़ वर्षाकाल में होती है, वर्षा का मौसम भी इस समय नहीं फिर इस द्वार के सामने कीचड़ कहाँ से आयी ? मालूम होता है कि नन्दश्री ने मेरी बुद्धि की परीक्षा के लिये यह द्वार पर कीचड़ भरवायी है और कीचड़ के मध्य में ईंटें रखवाईं हैं। दूसरा कोई भी प्रयोजन नजर नहीं आता। मुझे अब इस घर के भीतर जाना आवश्यकीय है।

यदि मैं इन ईंटों पर पाँव रखकर भीतर जाता हूँ तो अवश्य गिरता हूँ और कीचड़ में गिरने पर मेरी हँसी होती है। हँसी संसार में अत्यन्त दु:ख की देनेवाली है। इसलिए मुझे कीचड़ में होकर ही जाना चाहिए। यदि मेरे पाँव कीचड़ में जाने से लिथड़ भी जाएँ तो भी मेरा कोई नुकसान नहीं। ऐसा एक क्षण अपने मन में पक्का निश्चय कर अतिशय बुद्धिमान, भले प्रकार लोकचातुर्य में पण्डित, कुमार श्रेणिक ने, उस कीचड़ में होकर ही महल में प्रवेश किया।

कुमार के इस उत्तम चातुर्य को देखकर कुमारी नन्दश्री दंग रह गयी किन्तु कुमार की बुद्धि की परीक्षा का कौतूहल अभी तक उसका समाप्त नहीं हुआ। इसलिए जिस समय कुमार उस कीचड़ को लाँघकर महल में घुसे और जिस समय नन्दश्री ने उनके पाँव कीचड़ में लिथड़े हुए देखे तो फिर भी उसने किसी सखी द्वारा कीचड़ धोने के लिये एक चुल्लू पानी कुमार के पास भेजा।

कुमार ने जिस समय कुमारी नन्दश्री द्वारा भेजा हुआ थोड़ा सा पानी देखा तो देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने मन में पुन: विचारने लगे कि कहाँ तो इतना अधिक कीचड़! और कहाँ यह थोड़ासा जल! इससे कैसे कीचड़ धुल सकती है? एक क्षण ऐसा विचार कर और एक बाँस की फच्चट लेकर पहले तो उससे अपने पैर में लगे हुए कीचड़ को खुरचकर दूर किया, पश्चात् उस नन्दश्री द्वारा भेजे हुए पानी के कुछ हिस्से में एक कपड़ा भिगोकर उस थोड़े से जल से ही उन्होंने अपने पाँव धो लिये और अपने महनीय बुद्धिबल से अनेक आश्चर्य करानेवाले कुमार ने उसमें से भी कुछ जल बचाकर कुमारी के पास भेज दिया।

कुमार के इस चातुर्य को अपनी आँखों से देख कुमारी नन्दश्री

से चुप न रहा गया, वह एकदम कहने लगी—अहा! जैसा कौशल एवं ऊँचे दर्जे का पाण्डित्य कुमार श्रेणिक में है, वैसा कौशल एवं पाण्डित्य अन्यत्र नहीं है, ऐसा कहती-कहती अपने रूप से लक्ष्मी को नीचे करनेवाली, कुमार के गुणों पर अतिशय मुग्ध, कुमारी नन्दश्री ने कामदेव से भी अति मनोहर, कुमार श्रेणिक को भीतर जाकर ठहरा दिया और विनयपूर्वक यह निवेदन भी किया कि हे महाभाग! कृपाकर आज आप मेरे मन्दिर में ही भोजन करें।

हे उत्तम कान्ति को धारण करनेवाले प्रभो! आज आप मेरे ही अतिथि बनें। मुझ पर प्रसन्न हों। अयि प्राज्ञवर! हमारे अत्यन्त शुभ भाग्य के उदय से आपका यहाँ पधारना हुआ है। हे मेरी समस्त अभिलाषाओं के कल्पद्रुम! आप मेरे अतिथि बनकर मुझ पर शीघ्र कृपा करें। संसार में बड़े भाग्य के उदय से इष्टजनों का संयोग होता है। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ इष्टजन को पाकर भी उनकी भलेप्रकार सेवा सत्कार नहीं करते, उन्हें भाग्यहीन समझना चाहिए। हे पुण्यात्मन्! भोजन के लिये आदरपूर्वक आग्रह कर रही हूँ।

कुमारी के ऐसे अतिशय आदरपूर्ण वचन सुन कुमार श्रेणिक ने अपनी मधुर वाणी से कहा—सुभगे! संसार में तू अति चतुर सुनी जाती है। हे उत्तम लक्षणों को धारण करनेवाली पण्डिते! हे बाले! हे मनोहरांगी! मैं भोजन तब करूँगा, जब मेरी प्रतिज्ञानुसार भोजन बनेगा। वह मेरी प्रतिज्ञा यही है कि मेरे हाथ में ये बत्तीस (३२) चावल हैं, इन बत्तीस चावलों से भाँति-भाँति के पके हुए अन्न से मनोहर भोजन बनाकर दूध, दही आदि से परिपूर्ण, और भी अनेक प्रकार के व्यंजनों से युक्त, सरस स्वादिष्ट, पूवा आदि पदार्थ सहित, उत्तम भोजन जो मुझे खिलायेगा, उसी के यहाँ मैं भोजन करूँगा, दूसरी जगह नहीं।

कुमार के ऐसे प्रतिज्ञा–परिपूर्ण एवं अपनी परीक्षा करनेवाले वचन सुनकर कुमारी प्रथम तो एकदम विस्मित हो गयी। पश्चात् उसने बड़े विनय से कहा कि लाइये, अपने चावलों को कृपाकर मुझे दीजिए।

कुमारी के आग्रह से कुमार को चावल देने पड़े तथा कुमार से बत्तीस चावल लेकर उनको पीस कूटकर कुमारी ने उनके पूवे बनाये। उन पूवों को बेचने के लिये अपनी प्रियसखी निपुणमति को देकर बाजार भेज दिया। कुमारी की आज्ञानुसार निपुणमति उन पूवों को लेकर सफेद वस्त्र पहिनकर बाजार की ओर गयी और जहाँ पर जूवा खेला जाता था, वहाँ पहुँचकर और किसी जुआरी के पास जाकर उन पूवों की उसने इस प्रकार तारीफ करना प्रारम्भ किया कि ये पूवे अति पवित्र देवमयी हैं, जो भाग्यवान मनुष्य इनको खरीदेगा, उसे अवश्य अनेक लाभ होंगे। सर्व खिलाड़ियों में इन पूवों को खानेवाला ही विशेष रीति से जीतेगा। इसमें सन्देह नहीं।

निपुणमति के इस प्रकार आश्चर्य भरे वचनों पर विश्वास कर एवं उन पूवों को सच ही देवमयी जानकर जुआरियों के मन में उनके खरीदने की इच्छा हुई और खेल में विजय एवं अथक धन की आशा से उनमें से एक जुआरी ने मुँहमाँगी कीमत देकर पूवों को तत्काल खरीद लिया और कीमत अदा कर दी। कीमत का रुपया लेकर और कुमार की प्रतिज्ञानुसार भोजन के लिये उसे पर्याप्त जानकर निपणुमती ने उसी समय नन्दश्री को जाकर चुपचाप दे दिया।

जिस समय नन्दश्री ने पूवों की कीमत को देखा तो उसको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने भाँति–भाँति के मधुर भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। जिस समय वह भोजन बना चुकी, उसने भोजन के लिये

कुमार को बुला भी लिया। भोजन का बुलावा सुन नन्दश्री का रूप देखने के अति लोलुपी, अपने मन में अति प्रसन्न कुमार पाकशाला में चट आ धमके। कुमारी ने कुमार को देखते ही आदरपूर्वक आसन दिया और प्रेमपूर्वक भोजन कराना आरम्भ कर दिया।

कभी तो वह कुमारी भोजन में मग्न कुमार को खीर आदि पदार्थों से उत्तम रसों से परिपूर्ण अनेक मसालों युक्त, अति मधुर बेरों के टुकड़ों को खिलाती हुई और कभी अपनी चतुरता से भाँति-भाँति के फलों का उसने भोजन कराया तथा कभी-कभी उसने दूध दही मिश्रित नाना प्रकार के व्यंजन बनाकर कुमार को खिलाये एवं कुमार भी उसके चातुर्य पर विचार करते-करते भोजन करते रहे। जिस समय कुमार भोजन कर चुके, उस समय कुमार ने पान खाया।

इस प्रकार कुमार के चातुर्य से अति प्रसन्न, उनके गुणों में अतिशय आसक्त, कुमारी नन्दश्री जिस प्रकार राजहंस के पास बैठी हुई राजहंसी शोभित होती है, कुमार के समीप में बैठी हुई अत्यन्त शोभित होने लगी।

इन समस्त बातों के बाद कुमारी के मन में फिर कुमार की बुद्धि की परीक्षा का कौतूहल उठा। उसने शीघ्र एक अति टेड़े छेद का मूँगा कुमार को दिया और उसमें डोरा पिरोने के लिये निवेदन किया। कुमारी द्वारा दिये हुए इस कार्य को कठिन कार्य जान क्षणभर तो कुमार उसके पोने के लिये विचार करते रहे। पीछे भले प्रकार सोच विचारकर उस डोरे के मुखपर थोड़ा गुड़ लपेट दिया और अपनी शक्ति के अनुसार मूँग के छेद में उसको प्रविष्ट कर चींटियों के बिल पर उसे जाकर रख दिया।

गुड़ की आशा से जब चींटियों ने डोरे को खींचकर पार कर

दिया तब डोरा पार हुआ जानकर कुमार श्रेणिक ने मूंगे को लाकर नन्दश्री को दे दिया। कुमारी नन्दश्री कुमार श्रेणिक का यह अपूर्व चातुर्य देख अति प्रसन्न हुई, उसका मन कुमार में आसक्त हो गया। यहाँ तक कि कुमार के श्रेष्ठगुणों से, उनकी रूप सम्पदा से कामदेव भी बुरी रीति से उसे सताने लग गया।

सेठ इन्द्रदत्त को यह पता लगा कि कुमारी नन्दश्री कुमार श्रेणिक पर आसक्त है, कुमार श्रेणिक को वह अपना बल्लभ बना चुकी है तो शीघ्र ही राजा के समान सम्पत्ति के धारक इन्द्रदत्त ने कुमारी के विवाहार्थ बड़े आनन्द से उद्योग किया।

कुमार–कुमारी के विवाह का उत्सव नगर में बड़े जोरशोर से प्रारम्भ हुआ। समस्त दिशाओं को बधिर करनेवाले घण्टे बजने लगे, नगर अनेक प्रकार की ध्वजाओं से व्याप्त, मनोहर तोरणों से शोभित, कल्याण को सूचन करनेवाले शुभ शब्दों से युक्त हो गया। उस समय भेरियों के बड़े–बड़े शब्द होने लगे। शंख काहल आदि बाजे बजने लगे। नक्काड़ों के शब्द भी उस समय खूब जोर शोर से होने लगे। समस्त जनों के सामने भाँति–भाँति की शोभाओं से मण्डित कुमार–कुमारी का विवाह मण्डप प्रीतिपूर्वक बनाया गया। बन्दीगण कुमार श्रेणिक के यश को मनोहर पद्यों में रचकर गान करने लगे। कुमार श्रेणिक और कुमारी नन्दश्री के विवाह के देखने से दर्शकजनों को वचनागोचर आनन्द हुआ। उन दोनों के रूप देखने से दोनों के गुणों पर मुग्ध दोनों की सब लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

दम्पति का रूप देख समस्त लोग इस भाँति कहने लगे कि आश्चर्यकारी इनकी गति है तथा आश्चर्य इनका रूप और मधुर

वचन है। ये सब बातें पूर्व पुण्य से प्राप्त हुई हैं। नन्दश्री को देखकर अनेक मनुष्य कहने लगे कि चन्द्र के समान कान्ति को धारण करनेवाला तो यह नन्दश्री का मुख है, फूले कमल के समान इसके दोनों नेत्र हैं, और अत्यन्त विस्तीर्ण इसका ललाट है। कुमार श्रेणिक का संसार में अद्‌भुत पुण्य मालूम पड़ता है, जिससे कि इस कुमार को ऐसे स्त्रीरत्न की प्राप्ति हुई है तथा कुमार को देखकर लोग यह कहने लगे कि इस नन्दश्री ने पूर्व जन्म में क्या कोई उत्तम तप किया था! अथवा किसी उत्तम व्रत को धारण किया था। अथवा इष्ट पदार्थों के देनेवाले शील का इसने परभव में आश्रय किया था, अथवा इसने उत्तम पात्रों को पवित्र दान दिया था, जिससे इसको ऐसे उत्तम रूपवान गुणवान पति की प्राप्ति हुई है।

इस प्रकार धर्म के प्रभाव से समस्त लोक द्वारा प्रशंसित, अतिशय हर्षित चित्त, अत्यन्त दीप्तियुक्त देह के धारक, वे दोनों स्त्री-पुरुष भलीभाँति सुख का अनुभव करने लगे।

इस प्रकार होनेवाले श्री पद्मनाभ भगवान के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक का कुमारी नन्दश्री के साथ विवाह-वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पाँचवाँ सर्ग

महाराज श्रेणिक को राज्य की प्राप्ति

जिस उत्तम धर्म की कृपा से संसार में उन दोनों दम्पति को अतिशय सुख मिला, धर्मात्मा पुरुषों को अनेक विभूति देनेवाले उस परम पवित्र धर्म को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार विवाह के अनन्तर कुमार श्रेणिक ने पके हुए ताल फल के समान उत्तम स्तनों से मण्डित, मन को भले प्रकार सन्तुष्ट करनेवाली कान्ता नन्दश्री के साथ क्रीड़ा करनी प्रारम्भ कर दी। कभी तो कुमार उसके साथ मनोहर उद्यान में लता मण्डपों में रमने लगे, कभी उन्होंने नदियों के तट अपने क्रीड़ास्थल बनाये तथा कभी-कभी वे उत्तम स्तनों से विभूषित नन्दश्री के साथ महल की अटारियों में क्रीड़ा करने लगे। जिस प्रकार दरिद्री पुरुष खजाना पाकर अति मुदित हो जाता है और उसे अपने तन-बदन का होशहवाश नहीं रहता, उसी प्रकार कुमार बस नन्दश्री के देहस्पर्श से अतिशय आनन्द का अनुभव करने लगे।

मनोहरांगी नन्दश्री भी सूर्य की किरणस्पर्श से जैसे कमलिनी आनन्दित होती है, उसी प्रकार कुमार के हाथ के कोमल स्पर्श से अनन्य प्राप्त सुख का आस्वादन करने लगी। कभी तो वे दोनों दम्पति चुम्बनजन्य सुख का अनुभव करने लगे और कभी स्वाभाविक रस का आस्वादन करने लगे तथा कभी-कभी दोनों ने परस्पर रूपदर्शन एवं रति से उत्पन्न आनन्द का अनुभव किया, और कभी हास्योत्पन्न रस चाखा। कभी-कभी स्तनस्पर्श से उत्पन्न एवं कथा कौतूहल से जनित सुख का भी उन्होंने भोग किया।

इस प्रकार मानसिक, कायिक, वाचनिक अभीष्ट सुख को अनुभव करनेवाले, भाँति-भाँति की क्रीड़ाओं में मग्न, सुखसागर में गोते मारनेवाले, कुमार श्रेणिक और नन्दश्री को जाते हुए काल का भी पता न लगा।

कुछ दिन के बाद उत्तम गुणयुक्त कुमार के साथ क्रीड़ा करते-करते रानी नन्दश्री के धर्म के प्रभाव से गर्भ रह गया तथा सुन्दर आकार का धारक शुभ लक्षणों कर युक्त वह उदर में स्थित जीव दिनोंदिन बढ़ने लगा। गर्भ के प्रभाव से रानी नन्दश्री के अतिशय मनोहर अंग पर कुछ सफेदी छा गयी, स्तनों के अग्रभाग (चूचुक) काले पड़ गये। उसे किसी प्रकार के भूषण भी नहीं रुचने लगे। तथा भूषण रहित वह ऐसी शोभित होने लगी जैसा नक्षत्रों के अस्त हो जाने पर प्रभात शोभित होता है। गर्भ के भार से नन्दश्री की गति भी अधिक मन्द हो गयी।

भोजन भी बहुत कम रुचने लगा और उसको अपने अंग में गलनि भी होने लगी एवं मतवाले हाथी के समान गमन करनेवाली, मुखरूपी चन्द्रमा से शोभित मनोहरांगी नन्दश्री के अंग में गर्भ से होनेवाले मनोहर चिह्न भी प्रकाशित होने लगे। कदाचित् नन्दश्री को सात दिन पर्यन्त अभयदान का सूचक उत्तम दोहला हुआ। अपने घर की स्थिति देख उस दोहला की पूर्ति अति कठिन जानकर वह चिन्ता करने लगी और जैसी पानी के अभाव में उत्तम लता कुम्हला जाती है, उसी प्रकार उसका अंग भी चिन्ता से सर्वथा कुम्हलाने लगा।

किसी समय कुमार श्रेणिक की दृष्टि नन्दश्री पर पड़ी। उदास एवं कान्ति रहित रानी नन्दश्री को देख उन्हें अति दु:ख हुआ। वे अपने मन में विचार करने लगे कि अतिशय मनोहर एवं देदीप्यमान

सुन्दरी नन्दश्री के शरीर में अति बाधा देनेवाला यह दु:ख कहाँ से टूट पड़ा! इसकी यह दशा क्यों और कैसी हो गई! क्षण एक ऐसा विचार उन्होंने पास जाकर नन्दश्री से पूछा—हे प्रिय! किस कारण से आपका शरीर सर्वथा खिन्न, कृष और फीका पड़ गया है, वह कौन-सा कारण है, मुझे कहो?

कुमार के ऐसे हितकारी एवं मधुर वचन सुनकर और दोहले की पूर्ति सर्वथा कठिन समझकर पहिले तो नन्दश्री ने कुछ भी उत्तर न दिया, किन्तु जब उसने कुमार का आग्रह विशेष देखा तो वह कहने लगी—हे कान्त! मैं क्या करूँ, मुझे सात दिन पर्यन्त अभयदान का सूचक दोहला हुआ है। इस कार्य की पूर्ति अति कठिन जान मैं खिन्न हूँ। मेरी खिन्नता का दूसरा कोई भी कारण नहीं।

प्रियतमा नन्दश्री के ऐसे वचन सुन कुमार ने गम्भीरतापूर्वक कहा—प्रिये! इस बात के लिये तुम किंचित् भी खेद न करो। मत व्यर्थ खेद कर अपने शरीर को मत सुखाओ। सुव्रते! मैं शीघ्र ही तुम्हारी इस अभिलाषा को पूर्ण करूँगा। चतुरे! जो तुम इस कार्य को कठिन समझ दु:खित हो रही हो, सो सर्वथा व्यर्थ है। मधुरभाषिणी एवं शुभांगी नन्दश्री को ऐसा आश्वासन देकर भले प्रकार समझा-बुझाकर, कुमार श्रेणिक किसी वन की ओर चल पड़े और वहाँ पर किसी नदी के किनारे बैठ नन्दश्री की इच्छा पूर्ण करने के लिये विचार करने लगे।

उस समय उसी नगर के राजा वसुपाल का ऊँचे-ऊँचे दाँतों को धारण करनेवाला एक मतवाला हाथी नगर से बड़े झपाटे से बाहिर निकला प्रत्येक घर के द्वार को तोड़ता हुआ, बहुत से नगर के खम्भों को उखाड़ता हुआ, अनेक प्रकार के वृक्षों को नीचे गिराता हुआ,

उत्तमोत्तम लतामंडपों को निर्मूल करता हुआ, अनेक सज्जन वीरों द्वारा रोकने पर भी नहीं रुकता हुआ, अपने चित्कार से समस्त दिशाओं को बधिर करता हुआ, एवं अपनी सूँड़ को ऊपर उठा दिग्गजों को भी मानो युद्ध करने लिये ललकारता हुआ और समस्त नगर को व्याकुल करता हुआ वह मत्त हाथी उसी नदी की ओर झपटा, जहाँ कुमार बैठे थे।

जिस समय पर्वत के समान विशाल, अति मत्त, अपनी ओर आता हुआ, वह भयंकर हाथी कुमार की नजर पड़ा तो कुमार शीघ्र ही उसके साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो गये तथा उस मतवाले हाथी के सन्मुख जाकर अनेक प्रकार से उसके साथ युद्ध कर मारे मुक्कों के उसे मदरहित कर दिया और निर्भयतापूर्वक क्रीड़ार्थ उसकी पीठ पर शीघ्र ही सवार हो राजद्वार की ओर चल दिये।

मतवाले हाथी पर बैठे हुए कुमार को देखकर हाथी के कर्मों से भयभीत, कुमार का हाथी के साथ युद्ध देखनेवाले कुमार की वीरता से चकित, अनेक मनुष्य जय-जय शब्द करने लगे एवं परस्पर एक-दूसरे से यह भी कहने लगे—सेठ इन्द्रदत्त के दामाद का पराक्रम आश्चर्यकारक है। रूप और नवयौवन भी विशेष प्रशंसनीय है। शक्ति भी लोकोत्तर ज्ञात होती है।

देखो, जिस मत हाथी को बलवान से बलवान भी कोई मनुष्य नहीं जीत सकता था, उस हाथी को इस कुमार ने अपने बुद्धि बल और पुण्य के प्रभाव से बात की बात में जीत लिया। इधर मनुष्य तो इस भाँति पवित्र शब्दों से कुमार की स्तुति करने लगे, उधर गज से भी अतिशय पराक्रमी कुमार ने अनेक प्रकार की ढीली-पीली ध्वजाओं से शोभित क्रीड़ापूर्वक नगर में प्रवेश किया।

सुन्दर आकार के धारक, असाधारण उत्तम गुणों से मंडित कुमार श्रेणिक को हाथी पर चढ़े हुए देखकर महाराज वसुपाल मन में अति हर्षित हुए और बड़ी प्रीति एवं हर्ष से उन्होंने कुमार से कहा—

हे वीरों के सिरताज ! हे अनेक पुण्य फलों के भोगनेवाले कुमार ! जिस बात की तुम्हें इच्छा हो, शीघ्र ही मुझे कहो। हे उत्तमोत्तम गुणों के भण्डार कुमार ! शक्त्यानुसार मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।

महाराज के सन्तोष भरे वचन सुनकर अन्य मनुष्यों द्वारा कुछ माँगने के लिये प्रेरित भी कुमार ने लज्जा एवं अहंकार से कुछ भी जवाब नहीं दिया, महाराज के सामने वे चुपचाप ही खड़े रहे।

सेठ इन्द्रदत्त भी ये सब बातें देख रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही कुमार के मन के भाव को समझ लिया और इस भाँति महाराज से निवेदन किया—महाराज ! यदि आप कुमार के काम को देखकर प्रसन्न हुए हैं और उनकी अभिलाषा पूर्ण करना चाहते हैं तो एक काम करें, सात दिन तक इस नगर और देश में सब जगह पर आप अभयदान की डयोडी पिटवा दें।

सेठ इन्द्रदत्त के ऐसे कुमार के अनुकूल वचन सुन राजा वसुपाल अति सन्तुष्ट हुए और उन्होंने बेधड़क कह दिया कि आपने जो कुमार के अनुकूल कहा है, वह मुझे मंजूर है। मैं सात दिन तक नगर एवं देश में सब जगह अभयदान के लिये तैयार हूँ। ऐसा कहकर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अभयदान के लिये नगर एवं देश में सर्वत्र डंका भी पिटवा दिया।

रानी नन्दश्री ने यह बात सुनी कि कुमार की वीरता पर मोहित होकर महाराज वसुपाल ने सात दिन तक अभयदान देना स्वीकार किया है तो सुनते ही वह अपने मनोरथ को पूर्ण हुआ समझ, बहुत

प्रसन्न हुई और जैसे नवीन लता दिनोंदिन प्रफुल्लित होती जाती है, वैसे वह भी दिनोंदिन प्रफुल्लित होने लगी। शुभ लग्न, शुभ वार, शुभ नक्षत्र, शुभ दिन एवं शुभ योग में किसी समय रानी नन्दश्री ने अतिशय आनन्दित, पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर मुख का धारक, कमल के समान मनोहर नेत्रों से युक्त, उत्तम पुत्र को जना। पुत्र की उत्पत्ति से मारे आनन्द के रानी नन्दश्री का शरीर रोमांचित हो गया और वह सुखसागर में गोता लगाने लगी।

सेठ इन्द्रदत्त के घर पुत्री नन्दश्री से दोहता हुआ है, यह समाचार सारे नगर में फैल गया। सेठ इन्द्रदत्त के घर कामिनियाँ मनोहर गीत गाने लगीं। बन्दीजन पुत्र की स्तुति करने लगे, पुत्र के आनन्द में मनोहर शब्द करनेवाले अनेक बाजे भी बजने लगे। बालक के गर्भस्थ होने पर नन्दश्री को अभयदान का दोहला हुआ था, इसलिए उस दिन को लक्ष्यकर सेठ इन्द्रदत्त के कुटुम्बी मनुष्यों ने बालक का नाम अभयकुमार रख दिया एवं जैसे रात्रि-विकासी कमलों को आनन्द देनेवाला चन्द्रमा दिनोंदिन बढ़ता चला जाता है, वैसे ही अतिशय देदीप्यमान शरीर का धारक समस्त भूमण्डल को हर्षायमान करनेवाला वह कुमार भी दिनोंदिन बढ़ने लगा।

कुटुम्बीजन दूधपान आदि से बालक की सेवा करने लगे, आनन्द से खिलाने लगे, इसलिए उस बालक से उसे पिता-माता को और भी विशेष हर्ष होने लगा। कुछ दिन बाद अभयकुमार ने अपनी बालक अवस्था छोड़, कुमार अवस्था में पदार्पण किया और उस समय तेजस्वी कुमार अभय ने थोड़े ही काल में अपने बुद्धिबल से बाल की बात में समस्त शास्त्रों का पार पा लिया। वह असाधारण विद्वान हो गया। इस प्रकार कुमार श्रेणिक रानी नन्दश्री के साथ

भाँति-भाँति के भोग भोगने लगे तथा भोग विलासों में मस्त, वे दोनों दम्पति जाते हुए काल की भी परवाह नहीं करने लगे।

❀ ❀ ❀

इधर कुमार श्रेणिक तो सेठ इन्द्रदत्त के घर नन्दश्री के साथ नाना प्रकार के भोग भोगते हुए सुखपूर्वक रहने लगे, उधर महाराज उपश्रेणिक अतिशय मनोहर, अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम शोभा से शोभित राजगृह नगर में आनन्दपूर्वक अपना राज्य कर रहे थे। अचानक ही जब उनको यह पता लगा कि अब मेरी आयु में बहुत ही कम दिन बाकी है—मेरा मरण अब जल्दी होनेवाला है तो शीघ्र ही उन्होंने चक्रवर्ती के समान उत्कृष्ट बड़े-बड़े सामन्तों से सेवित, विशाल राज्य चिलाती पुत्र को दे दिया तथा राज्यकार्य से सर्वथा ममतारहित होकर पारमार्थिक कर्मों में वे चित्त लगाने लगे।

कुछ दिन के बाद आयुकर्म के समाप्त हो जाने पर महाराज उपश्रेणिक का शरीरान्त हो गया। उनके मर जाने से सारे नगर में हाहाकार मच गया, पुरवासी लोग शोक-सागर में गोता मारने लगे। रनवास की रानियाँ भी महाराज का मरण समाचार सुनकर करुणाजनक रोदन करने लगीं। जितने सौभाग्यचिह्न हार आदि के थे, सब उन्होंने तोड़कर फेंक दिये और महाराज के मरने से सारा जगत उन्हें अन्धकारमय सूझने लगा।

महाराज उपश्रेणिक के बाद रहा-सहा भी अधिकार राजा चिलाती को मिल गया। महाराज उपश्रेणिक के समान वह भी मगध देश का महाराजा कहा जाने लगा, किन्तु राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ राजा चिलाती ने सामन्त, मन्त्री, पुरवासी जनों से भले प्रकार सेवित होने पर भी राज्य में अनेक प्रकार के उपद्रव करने प्रारम्भ कर दिये। कभी तो वह बिना ही अपराध के धनिकों के धन जप्त करने लगा

और कभी प्रजा को अन्य प्रकार के भयंकर कष्ट पहुँचाने लगा। जिनके आधार पर राज्य चल रहा था, उन राजसेवकों की आजीविका भी उसने बन्द कर दी।

राज्य में इस प्रकार का भयंकर अन्याय देख पुरवासी और देशवासी मनुष्य त्रस्त होने लगे और खुले मैदान उनके मुख से ये ही शब्द सुनने में आने लगे कि राजा चिलाती बड़ा पापी है, अन्यायी है और राज्य पालन करने में सर्वथा असमर्थ है। राजा का इस प्रकार नीच बर्ताव देख राजमन्त्री भी दाँतों में ऊंगली दबाने लगे।

राज्य को संभालने के लिये उन्होंने अनेक उपाय सोचे किन्तु कोई भी उपाय उनको कार्यकारी नजर न पड़ा। अन्त में विचार करते-करते उन्हें कुमार श्रेणिक की याद आयी। याद आते ही शीघ्र उन्होंने यह सलाह की—राजा चिलाती पापी, दुष्ट एवं राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ है, यह इतने विशाल राज्य को चला नहीं सकता; इसलिए कुमार श्रेणिक को यहाँ बुलाना चाहिए और किसी रीति से उन्हें मगधदेश का राजा बनाना चाहिए।

समस्त पुरवासी एवं मन्त्री आदिक कुमार के गुणों से भलीभाँति परिचित थे, इसलिए यह उपाय सबको उत्तम लगा और तद्नुसार एक दूत जो कि राज्य में अति चतुर था, शीघ्र ही कुमार के पास भेज दिया और व्योरेबार एक पत्र भी उसे लिखकर दे दिया। जहाँ कुमार श्रेणिक रहते थे, दूत उसी देश की ओर कुछ दिन पर्यन्त मंजिल-दर-मंजिल तयकर कुमार के पास जा पहुँचा। कुमार को देखकर दूत ने विनय से नमस्कार किया और उनके हाथ में पत्र देकर जबानी भी यह कह दिया—हे कुमार! अब तुम्हें शीघ्र मेरे साथ राजगृह नगर चलना चाहिए।

दूत के मुख से ऐसे वचन सुनकर एवं पत्र वाँच उनके वचनों पर सर्वथा विश्वास कर, कुमार श्रेणिक अपने मन में प्रसन्न हुए। मारे हर्ष के उनका शरीर रोमांचित हो गया और पत्र हाथ में लेकर वे सीधे सेठ इन्द्रदत्त के समीप चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने सेठ इन्द्रदत्त को नमस्कार किया और यह समाचार सुनाया—हे माननीय! राजगृहपुर से एक दूत आया है, उसने यह पत्र मुझे दिया है, इस समय वहाँ जाने के लिये शीघ्र आज्ञा दें। बिना आपकी आज्ञा के मैं वहाँ जाना ठीक नहीं समझता।

अचानक कुमार के मुख से ऐसे वचन सुन सेठ इन्द्रदत्त आश्चर्यसागर में निमग्न हो गये। 'अब कुमार यहाँ से चले जायेंगे' यह जान उन्हें बहुत दु:ख हुआ किन्तु कुमार ने उन्हें अनेक प्रकार से आश्वासन दे दिया, इसलिए वे शांत हो गये और उन्हें जबरन कुमार को जाने के लिये आज्ञा देनी पड़ी।

सेठ इन्द्रदत्त से आज्ञा लेकर कुमार प्रियतमा नन्दश्री के पास गये। उसने भी उन्होंने इस प्रकार अपनी आत्म-कहानी कहनी प्रारम्भ कर दी—हे प्रिये! हे वल्लभे! हे मनोहरे! हे चन्द्रमुखी! हे गजगामिनी! मेरे परम्परा से आया हुआ राज्य है, अचानक मेरे पिता के शरीरांत हो जाने से मेरा भाई उस राज्य की रक्षा कर रहा है। किन्तु प्रजा उसके शासन से सन्तुष्ट नहीं है, इसलिए अब मुझे राजगृह जाना जरूरी है। हे सुन्दरी! जब तक मैं वहाँ न पहुचूँगा, राज्य की रक्षा भले प्रकार नहीं हो सकेगी। इस समय मैं तुझसे यह कहे जाता हूँ कि जब तक मैं तुझे न बुलाऊँ, कुमार अभय के साथ अपने पिता के घर ही रहना। राज्य की प्राप्ति होने पर तुझे मैं नियम से बुलाऊँगा, इसमें सन्देह नहीं।

अचानक ही कुमार के ऐसे वचन सुन रानी नन्दश्री की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। मारे दुःख के, कमल के समान फूला हुआ भी उसका मुख कुम्हला गया और कुमार को कुछ भी जवाब न देकर वह निश्चल काष्ट की पुतली के समान खड़ी रह गयी, किन्तु ऐसी दशा देख कुमार ने उसे बहुत कुछ समझा दिया और सन्तोष देनेवाले प्रिय वचन कहकर शान्त कर दिया।

इस प्रकार प्रियतमा नन्दश्री से मिलकर कुमार वहाँ से चल दिये और राजगृही जाने के लिये तैयार हो गये।

कुमार अब जा रहे हैं, सेठ इन्द्रदत्त को यह पता लगा तो उन्होंने कुमार को न मालूम पड़े, इस रीति से पाँच हजार बलवान योद्धा कुमार के साथ भेज दिये एवं पाँच हजार सुभटों के साथ कुमार श्रेणिक ने राजगृह नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। जिस समय वे मार्ग में जाने लगे, उस समय उत्तमोत्तम फलों के सूचक उन्हें अनेक शकुन हुए और मार्ग में अनेक वन-उपवनों को निहारते हुए कुमार श्रेणिक मगधदेश के निकट जा पहुँचे।

कुमार श्रेणिक मगधदेश में आ गये, यह समाचार सारे देश में फैल गया। समस्त सामन्त, मन्त्री एवं अन्यान्य देशवासी मनुष्य बड़े विनयभाव से कुमार श्रेणिक के पास आये और भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। कुछ समय वहाँ ठहरकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप कर कुमार फिर आगे चल दिये। मेरुपर्वत के समान लम्बे-चौड़े हाथी, अनेक बड़े-बड़े रथ और पयादे कुमार के आगमन के उत्सव में सारा देश बाजों की आवाज से गूँज उठा एवं कुछ दिन और चलकर कुमार राजगृह नगर के निकट जा दाखिल हुए।

इधर राजा चिलाती को यह पता लगा कि अब श्रेणिक यहाँ आ

गये हैं, उनके साथ विशाल सेना है, समस्त देशवासी और नगरवासी मनुष्य भी कुमार श्रेणिक के ही अनुयायी हो गये हैं, तो मारे भय के वह काँपने लगा। अब मैं लड़कर कुमार श्रेणिक से विजय नहीं पा सकता, यह भले प्रकार सोच-विचारकर वह अपनी कुछ सम्पत्ति लेकर किसी किले में जा छिपा।

उधर सूर्य के समान प्रतापी, बड़े-बड़े सामन्तों से सेवित, पुण्यात्मा, जिनके ऊपर क्षीरसमुद्र के समान सफेद चमर ढुल रहे हैं, जिनका यश चहुँओर बन्दीजन गान कर रहे हैं, कुमार श्रेणिक ने बड़े ठाटबाट से नगर में प्रवेश किया। नगर में कुमार के घुसते ही बाजों के गम्भीर शब्द होने लगे। बाजों की आवाज सुन जैसे समुद्र में तरंग बाहिर निकलती है, नगर की स्त्रियाँ महाराजा को देखने के लिये घरों से निकल भागीं। कोई स्त्री अपने स्वामी को चौके में ही बैठा छोड़, उसे बिना ही भोजन परोसे कुमार को देखने के लिये बाहर भागीं।

कोई स्त्री मठा बिलोड़ रही थी, कुमार के दर्शन की लालसा से उसने मठा बिलोड़ना छोड़ दिया। कोइ-कोई तो कुमार के देखने में इतनी लालायित हो गई कि शृंगार करते समय उसने ललाट का तिलक आँखों में लगा दिया और आँखों का काजल ललाट पर आँज लिया, एवं बिना देखे भाले ही बाहर भागीं, तथा किसी स्त्री ने सिर के भूषण को गले में पहनकर, गले के भूषण को सिर में पहनकर ही कुमार के देखने के लिये दौड़ना शुरु कर दिया और कोई स्त्री हार को कमर में पहिनकर और करधनी को गले में डालकर ही दौड़ी।

कोई स्त्री अपने काम में लग रही थी। जिस समय सखियों ने

उससे कुमार के देखने के लिये आग्रह किया तो वह एकदम भागीं, जल्दी में उसे चोली के उल्टे-सीधे का ज्ञान नहीं रहा। वह उल्टी चोली पहिनकर ही कुमार को देखने लगी तथा कोई स्त्री तो कुमार के देखने के लिये इतनी बेसुध हो गयी कि अपने बालक को रोता हुआ छोड़कर दूसरे बालक को ही गोद में लेकर चल दी। कोई-कोई स्त्री जो कि नितम्ब के भार से सर्वथा चलने के लिये असमर्थ थी, उसने दूसरी स्त्रियों के मुख से ही कुमार की तारीफ सुन अपने को धन्य समझा। कोई वृद्धा जो कि चलने के लिये सर्वथा असमर्थ थी, दूसरी स्त्रियों से यह कहने लगी—

ऐ बेटा! किसी रीति से मुझे भी कुमार के दर्शन करा दे, मैं तेरा यह उपकार कदापि नहीं भूलूँगी। कोई-कोई स्त्री तो कुमार को देख ऐसी मत्त हो गयी कि कुमार के दर्शन की फूल में दूसरी स्त्रियों पर गिराने लगी और जिस ओर कुमार की सवारी जा रही थी, बेसुध हो उसी ओर दौड़ने लगी तथा किसी-किसी स्त्री की ऐसी दशा हो गयी कि एक समय कुमार को देख घर आकर भी वह फिर कुमार के देखने के लिये भागी।

अनेक उत्तम स्त्रियाँ तो कुमार को देख ऐसा कहने लगी कि संसार में वह स्त्री धन्य है, जिसने इस कुमार को जना है और अपने स्तनों का दूध पिलाया है तथा कोई-कोई ऐसा कहने लगी—ऐ आली! यह बात सुनने में आई है कि इन कुमार का विवाह वेणुतट नगर के सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री नन्दश्री के साथ हो गया है। संसार में वह नन्दश्री धन्य है। कोई-कोई यह भी कहने लगी कि कुमार श्रेणिक के सम्बन्ध से रानी नन्दश्री के अभयकुमार नाम का उत्तम पुत्र भी उत्पन्न हो गया है—इत्यादि पुरवासी स्त्रियों के शब्द सुनते

हुए तथा पुरवासियों के मुख से जय-जय शब्दों को भी सुनते हुए तथा कुमार श्रेणिक, लीली-पीली ध्वजा एवं तोरणों से शोभित राजमन्दिर के पास जा पहुँचे।

राजमन्दिर में प्रवेश कर कुमार ने अपनी पूज्य माता आदि को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अन्य जो परिचित मनुष्य थे, उनसे भी यथायोग्य मिले-भैंटे। कुछ दिन बाद मन्त्रियों की अनुमतिपूर्वक कुमार का राज्याभिषेक किया गया। कुमार श्रेणिक अब महाराज श्रेणिक कहे जाने लगे और अनेक राजाओं से पूजित, अतिशय प्रतापी, समस्त शत्रुओं से रहित, महाराज श्रेणिक, मगध देश का नीतिपूर्वक राज्य करने लग गये।

इस प्रकार अपने पूर्वोपार्जित धर्म के माहात्म्य से राज्यविभूति को पाकर समस्त जनों से मान्य, अनेक उत्तमोत्तम गुणों से भूषित, नीतिपूर्वक राज्य चलानेवाला, अतिशय देदीप्यमान शरीर के धारक महाराज श्रेणिक अतिशय आनन्द को प्राप्त हुए।

जीवों का संसार में यदि परममित्र है तो धर्म है। देखो, कहाँ तो महाराज श्रेणिक को राजगृह नगर छोड़कर सेठ इन्द्रदत्त के यहाँ रहना पड़ा था और कहाँ फिर उसी मगध देश के राजा बन गये। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे किसी अवस्था में धर्म को न छोड़ें, क्योंकि संसार में मनुष्यों को धर्म से उत्तम बुद्धि की प्राप्ति होती है, धर्म से ही अविनाशी सुख मिलता है। देवेन्द्र आदि उत्तम पदों की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है और धर्म की कृपा से ही उत्तम कुल में जन्म मिलता है।

इस प्रकार भविष्यत् काल में होनेवाले भगवान श्री पद्मनाभ के जीव महाराज श्रेणिक को राज्य की प्राप्ति बतलानेवाला पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

छठवाँ सर्ग

कुमार अभय का राजगृह में आगमन

केवलज्ञान की कृपा से समस्त जीवों को यथार्थ उपदेश देनेवाले परम दयालु, भले प्रकार से पदार्थों के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले, अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी को नमस्कार है।

इसके अनन्तर समस्त शत्रुओं से रहित, प्रजा के प्रेमपात्र, अनेक उत्तमोत्तम गुणों से मण्डित, वे महाराज श्रेणिक भलेप्रकार नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। उनके राज्य करते समय न तो राज्य में किसी प्रकार की अनीति थी और न किसी प्रकार का भय ही था, किन्तु प्रजा अच्छी तरह सुखानुभव करती थी। पहले महाराज बौद्धमत के सच्चे भक्त हो चुके थे, इसलिए वे उस समय भी बुद्धदेव का बराबर ध्यान करते रहते थे और बुद्धदेव की कृपा से ही अपने को राजा हुआ समझते थे।

किसी समय महाराज राजसिंहासन पर विराजमान होकर अपना राज्य कार्य कर रहे थे। अचानक ही एक विद्याधर, जो अपने तेज से मसस्त भूमण्डल को प्रकाशमान करता था, सभा में आया और महाराज श्रेणिक को विनयपूर्वक नमस्कार कर यह कहने लगा—

हे देव! इसी जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में एक केरला नाम की प्रसिद्ध नगरी है। उस नगरी का स्वामी विद्याधरों का अधिपति राजा मृगांक है। राजा मृगांक की रानी का नाम मालतीलता है।जो कि समस्त रानियों में शिरोमणि, एवं रूपादि उत्तमोत्तम गुणों की खान है और महारानी मालतीलता से उत्पन्न अनेक शुभ लक्षणों से युक्त विलासवती नाम की उसके एक पुत्री है। किसी समय पुत्री

विलासवती को यौवनावस्थापन्न देख राजा मृगांक को उसके लिये योग्य वर की चिन्ता हुई। वे शीघ्र ही किसी दिगम्बर मुनि के पास गये और उनसे इस प्रकार विनयभाव से पूछा—

हे प्रभो! मुने! आप भूत, भविष्यत्, वर्तमान त्रिकालवर्ती पदार्थों के भले प्रकार जानकार हैं। संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो आपकी दृष्टि से बाह्य हो। कृपाकर मुझे यह बतावें कि पुत्री विलासवती का वर कौन होगा?

राजा मृगांक के ऐसे विनय भरे वचन सुन मुनिराज ने कहा— राजन्! इसी द्वीप में अतिशय उत्तम एक राजगृह नाम का नगर है। राजगृह नगर के स्वामी, नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करनेवाले, महाराज श्रेणिक हैं। नियम से उन्हीं के साथ यह पुत्री विवाही जाएगी।

मुनिराज के ऐसे पवित्र वचन सुन, एवं उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर, राजा मृगांक अपने घर लौट आये और हे महाराज श्रेणिक! तब से राजा मृगांक ने आपको देने के लिये ही उस पुत्री का दृढ़ संकल्प कर लिया। अनेक बार मनाई करने पर भी हंसद्वीप का स्वामी राजा रत्नचूल यद्यपि उस पुत्री के साथ जबरन विवाह करना चाहता है। राजा मृगांक से जबरन विलासवती को छीन लेने के लिये रत्नचूल ने अपनी सेना से चौतरफा नगरी को भी घेर लिया है, तथापि राजा मृगांक उसे पुत्री देना नहीं चाहते। मैंने ये बातें प्रत्यक्ष देखी हैं। मैं यह सब समाचार आपको सुनाने आया हूँ। अधिक समय तक मैं यहाँ ठहर भी नहीं सकता। अब आप जो उचित समझें, सो करें।

विद्याधर जम्बूकुमार के वचन सुनते ही महाराज चुपचाप न बैठ सके। उन्होंने केरला नगरी को जाने के लिये शीघ्र ही तैयारी

कर दी एवं सेनापति को बुला, उसे सेना तैयार करने के लिये आज्ञा भी दे दी।

जम्बूकुमार का उद्देश्य यह नहीं था कि महाराज श्रेणिक केरला नाम की नगरी चलें और न वह महाराज को लिवाने के लिये राजगृह आया ही था, किन्तु उसका उद्देश्य केवल महाराज की विवाह स्वीकारता का था। जिस समय उसने महाराज को सर्वथा चलने के लिये तैयार देखा तो वह इस रीति से विनयपूर्वक कहने लगा—हे महाराज! कहाँ तो आप और कहाँ केरला नगरी? आप भूमिगोचरी हैं, वहाँ आपका जाना कठिन है, आप यहीं रहें। मुझे जल्दी जाने की आज्ञा दें ऐसा कहकर वह शीघ्र ही आकाश मार्ग से चल दिया और बात की बात में केरला नगरी में जा पहुँचा।

इधर महाराज श्रेणिक ने भी केरला नगरी जाने के लिये प्रस्थान कर दिया और वे तो कुछ दिन मंजिल दर मंजिल कर विंध्याचल की अठवी में पहुँच कुरलाचल के पास ठहर गये। उधर विद्याधर जम्बूकुमार ने केरला नगरी में पहुँचकर रत्नचूल की सेना ज्यों की त्यों नगरी को घेरे हुए देखा और किसी कार्य के बहाने से रत्नचूल के पास जा उसने यह प्रतिपादन किया—

हे राजन् रत्नचूल! यह विलासवती तो मगधेश्वर महाराज श्रेणिक को दी जा चुकी है। आप न्यायवान होकर क्यों राजा मृगांक से विलासवती के लिये जोराबरी कर रहे हैं? आप सरीखे नरेशों का ऐसा बर्ताव शोभाजनक नहीं।

रत्नचूल का काल तो सिर पर मंडरा रहा था। भला वह नीति एवं अनीति पर विचार करने कब चला? उसने जम्बूकुमार के

वचनों पर रत्ती भर भी ध्यान नहीं दिया और उल्टा नाराज होकर जम्बूकुमार से लड़ने को तैयार हो गया। जम्बूकुमार भी किसी तरह कम न था, वह भी शीघ्र युद्धार्थ तैयार हो गया और कुछ समय पर्यन्त युद्ध कर जम्बूकुमार ने रत्नचूल को बाँध लिया, उसकी आठ हजार सेना को काट-पीटकर नष्ट कर दिया और उसे राजा मृगांक के चरणों में डाल जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, सारा कह सुनाया तथा यह भी कहा कि महाराज श्रेणिक भी केरला नगरी की ओर आ रहे हैं।

जम्बूकुमार का यह असाधारण कृत्य देख राजा मृगांक अति प्रसन्न हुए। उन्होंने जम्बूकुमार की बारम्बार प्रशंसा की एवं जम्बूकुमार की अनुमतिपूर्वक राजा रत्नचूल एवं पाँच सौ विमानों के साथ कन्या विलासवती को लेकर राजगृह की ओर प्रस्थान कर दिया।

महाराज श्रेणिक तो कुरलाचल की तलहटी में ही ठहरे थे। जिस समय राजा मृगांक के विमान कुरलाचल की तलहटी में पहुँचे तो जम्बूकुमार की दृष्टि राजा श्रेणिक पर पड़ गयी। महाराज को देख राजा मृगांक सबके साथ शीघ्र ही वहाँ उतर पड़े। उन सबने भक्तिभाव से महाराज श्रेणिक को नमस्कार किया और परस्पर कुशल पूछने लगे तथा कुशल पूछने के बाद शुभ मुहूर्त में कन्या विलासवती का महाराज श्रेणिक के साथ विवाह भी हो गया।

विवाह के बाद राजा मृगांक ने केरला नगरी की ओर लौटने के लिये आज्ञा माँगी एवं चलने के लिये तैयार भी हो गया। महाराज श्रेणिक ने उन्हें जाते देख उनके साथ बहुत कुछ हित जानाया और उन्हें सम्मानपूर्वक विदा कर दिया, तथा स्वयं भी विद्याधर जम्बूकुमार के साथ राजगृह आ गये। राजगृह आकर महाराज श्रेणिक ने विद्याधर

जम्बूकुमार का बड़ा भारी सम्मान किया और नवोढ़ा विलासवती के साथ अनेक भोग भोगते हुए वे सुखपूर्वक रहने लगे।

किसी समय महाराज आनन्द में बैठे हुए थे कि अकस्मात् उन्हें नन्दिग्राम के निवासी विप्र नन्दिनाथ का स्मरण हो आया। महाराज श्रेणिक का जो कुछ पराभव उसने किया था, वह सारा पराभव उन्हें साक्षात् सरीखा दिखने लगा। वे मन में ऐसा विचार करने लगे—

देखो, नन्दिनाथ की दुष्टता, नीचता एवं निर्दयता! राजगृह से निकलते समय जब मैं नन्दिग्राम में जा निकला था, उस समय विनय से माँगने पर भी उसने मुझे भोजन का सामान नहीं दिया था। यदि मैं चाहता तो उससे जबरन खाने-पीने के लिये सामान ले सकता था, किन्तु मैंने अपनी शिष्टता से वैसा नहीं किया था और दीन वचन ही बोलता रहा था।

मुझे जान पड़ता है कि जब उसने मेरे साथ ऐसा क्रूरता का बर्ताव किया है, तब वह दूसरों की आबरू उतारने में कब चूकता होगा? राज्य की ओर से जो उसे दानार्थ द्रव्य दिया जाता है, नियम से उसे वही गटक जाता है, किसी को पाई भर भी दान नहीं देता। अब राज्य की ओर से उसे सदावर्त देने का अधिकार दे रखा है, उसे छीन लेना चाहिए और नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को जो नन्दिग्राम दे रखा है, उसे वापिस ले लेना चाहिए।

मैं अब अपना बदला बिना लिये नहीं मानूँगा। नन्दिग्राम में एक भी ब्राह्मण को नहीं रहने दूंगा। क्षण एक ऐसा विचार कर शीघ्र ही महाराज श्रेणिक ने एक राज्यसेवक को बुलाया और उसे कह दिया—जाओ, अभी तुम नन्दिग्राम चले जाओ और वहाँ के ब्राह्मणों

से कह दो कि शीघ्र ही नन्दिग्राम खाली कर दें।

इधर महाराज ने तो नन्दिग्राम के विप्रों को निकालने के लिये आज्ञा दी, उधर मन्त्रियों के कान तक भी यह समाचार पहुँचा। वे दौड़ते-दौड़ते तत्काल ही महाराज के पास आये और विनय से कहने लगे—

राजन्! आप यह क्या अनुचित काम करना चाहते हैं? इससे बड़ी भारी हानि होगी, पीछे आपको पछताना पड़ेगा। आप भले प्रकार सोच-विचार कर काम करें।—मन्त्रियों के ऐसे वचन सुन महाराज के नेत्र और भी लाल हो गये। मारे क्रोध के उनके नेत्रों से रक्त की धारा सी बहने लगी और गुस्से में भरकर वे कहने लगे—

हे राजमन्त्रियों! सुनो, नन्दिग्राम के विप्रों ने मेरा बड़ा पराभव किया। जिस समय मैं राजगृह से निकल गया था, उस समय मैं नन्दिग्राम में जा पहुँचा था। नन्दिग्राम में पहुँचते ही भूख ने मुझे बुरी तरह सताया। मुझे और तो वहाँ भूख की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं सूझा, मैं सीधा नन्दिनाथ के पास गया और मैंने विनय से भोजन के लिये उससे कुछ सामान माँगा, किन्तु दुष्ट नन्दिनाथ ने मेरी एक भी प्रार्थना न सुनी और वह एकदम मुझ पर नाराज हो गया। दो-चार गालियाँ भी दे मारीं।

मुझे उस समय अधिक दुःख हुआ था। इसलिए अब मैं उनसे बिना बदला लिये न छोड़ूँगा। उन्हें नन्दिग्राम से निकालकर ही रहूँगा। इस प्रकार महाराज के वचन सुनकर और महाराज का क्रोध अनिवार्य है, यह भी समझकर मन्त्रियों ने विनय से कहा—

राजन्! आप इस समय भाग्य के उदय से उत्तम पद में विराजमान

हैं। आप सभी के स्वामी कहे जाते हैं, आपको कदापि अन्याय मार्ग में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। संसार में जो राजा न्यायपूर्वक राज्य का पालन करते हैं, उन्हीं कीर्ति, धन आदि की प्राप्ति होती है। उनके देश एवं नगर भी दिनों दिन उन्नत होते चले जा रहे हैं।

हे प्रजापालक! अन्याय से राज्य में पापियों की संख्या अधिक बढ़ जाती है, देश का नाश हो जाता है, समस्त लोक में प्रलय होना शुरु हो जाता है।

हे महाराज! जिस प्रकार किसान लोग खेत में स्थित धान्य की बाड़ आदि प्रयत्नों से रक्षा करते हैं, उसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि वह न्यायपूर्वक बड़े प्रयत्न से राज्य की रक्षा करें।

हे दीनबन्धो! संसार में राजा के न्यायवान होने से समस्त लोक न्यायवाला होता है।

यदि राजा ही अन्यायी होवे तो कभी भी उसके अनुयायी लोग न्यायवान नहीं हो सकते, वे अवश्य अन्याय-मार्ग में प्रवृत्त हो जाते हैं।

कृपानाथ! यदि आप नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को नन्दिग्राम से निकालना ही चाहते हैं तो उन्हें न्यायमार्ग से ही निकालें। न्यायमार्ग के बिना आश्रय किये आपको ब्राह्मणों का निकालना उचित नहीं।

मन्त्रियों के ऐसे नीतियुक्त वचन सुन महाराज श्रेणिक का क्रोध शान्त हो गया। कुछ समय पहले जो महाराज ब्राह्मणों को बिना विचारे ही निकालना चाहते थे, वह विचार उनके मस्तक से हट गया। अब उनके चित्त में ये संकल्प-विकल्प उठने लगे, यदि मैं उन ब्राह्मणों को निकाल दूँगा तो लोग मेरी निन्दा करेंगे, मेरा राज्य भी अनीति राज्य समझा जाएगा; इसलिए प्रथम ब्राह्मणों को

दोषी सिद्ध कर देना चाहिए, पश्चात् उन्हें निकालने में कोई दोष नहीं। तदनुसार महाराज ने ब्राह्मणों को दोषी बनाने के अनेक उपाय सोचे।

उन सबमें प्रथम उपाय यह किया कि एक बकरा मँगवाया और कई चतुर सेवकों को बुलाकर, उन्हें बकरा सौंपकर यह आज्ञा दी कि जाओ, इस बकरे को शीघ्र ही नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को दे आओ। उनसे यह कहना कि यह बकरा महाराज श्रेणिक ने भेजा है। इसे खूब खिलाया-पिलाया जाए किन्तु इस बात पर ध्यान रखें न तो यह लटने पावे और न आबाद ही होवे। यदि यह लट गया या आबाद हो गया तो तुम से नन्दिग्राम छीन लिया जाएगा और तुम्हें उससे पृथक् कर दिया जाएगा।

महाराज के ऐसे आश्चर्यकारी वचन सुन सेवकों ने कुछ भी तीन-पाँच न की। वे बकरे को लेकर शीघ्र ही नन्दिग्राम की ओर चल दिये। नन्दिग्राम में पहुँचकर बकरा ब्राह्मणों को सुपुर्द कर दिया और जो कुछ महाराज का सन्देश था, वह भी साफ-साफ कह सुनाया।

महाराज का यह विचित्र सन्देश सुन नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के होश उड़ गये। वे अपने मन में विचार करने लगे कि यह बलाय कहाँ से आ पड़ी। महाराज का तो हमसे कोई अपराध हुआ नहीं है, उन्होंने हमारे लिये ऐसा सन्देशा क्यों भेज दिया! हे ईश्वर! यह बात बड़ी कठिन आ अटकी। कम-ज्यादा खिलाने से या तो बकरा लट जायेगा या मोटा हो जायेगा। इसका एक-सा रहना असम्भव है। मालूम होता है अब हमारा अन्त आ गया है।

इधर ब्राह्मण तो ऐसा विचार करने लगे, उधर वेणुतट में सेठ

इन्द्रदत्त को यह पता लगा कि कुमार श्रेणिक अब मगधदेश के महाराज बन गये हैं, तो शीघ्र ही वे नन्दश्री और कुमार अभय को लेकर राजगृह की ओर चल दिये और नन्दिग्राम के पास आकर ठहर गये। सेठ इन्द्रदत्त आदि तो भोजनादि कार्य में प्रवृत्त हो गये और नवीन पदार्थों के देखने के अति प्रेमी कुमार अभय, नन्दिग्राम देखने के लिये चल दिये।

उन्हें जाते देख परिवार के मनुष्यों ने बहुत कुछ मनाई की, किन्तु कुमार के ध्यान में एक न आयी। वे शीघ्र ही नन्दिग्राम में दाखिल हो गये। मध्य नगर में पहुँचते ही दैव से उनकी मुलाकात नन्दिनाथ से हो गयी। उसे चिन्ता से व्याकुल एवं म्लान देख कुमार ने तुरन्त उससे पूछा—

हे विप्रों के सरदार! आपका मुख क्यों फीका हो रहा है? आप किस उधेड़बुन में लगे हुए है? इस नगर में सर्व मनुष्य चिन्ताग्रस्त ही प्रतीत होते हैं, यह क्या बात है? कुमार के ऐसे उत्तम वचन सुन, और वचनों से उसे बुद्धिमान भी जान, नन्दिनाथ ने विनम्र वचनों में उत्तर दिया—

महानुभाव! राजगृह के स्वामी महाराज श्रेणिक ने एक बकरा हमारे पास भेजा है। उन्होंने यह कड़ी आज्ञा भी दी है कि— नन्दिग्राम के निवासी विप्र इस बकरे को खूब खिलावें-पिलावें किंतु यह बकरा एक-सा ही रहे। न तो मोटा होने पावे और न लटने पावे। यदि यह बकरा लट गया अथवा पुष्ट हो गया तो नन्दिग्राम छीन लिया जाएगा। हे कुमार! महाराज की इस आज्ञा का पालन हमसे होना कठिन जान पड़ता है, इसलिए इस गाँव के निवासी हम सब ब्राह्मण चिन्ता से व्यग्र हो रहे हें।

नन्दिनाथ के ऐसे विनययुक्त वचन सुनने से कुमार अभय का हृदय करुणा से गद्गद् हो गया। उन्होंने इस काम को कुछ काम न समझ ब्राह्मणों को इस प्रकार समझा दिया कि—हे विप्रो! आप इस कार्य के लिये किसी बात की चिन्ता न करें। आप धैय रखें, आपके इस विघ्न के दूर करने के लिये मैं भी उपाय सोचता हूँ। ऐसा विश्वास देकर वे भी उस चिन्ता के दूर करने का स्वयं उपाय सोचने लगे। कुमार की बुद्धि तो अगम्य थी।

उक्त विघ्न के दूर करने के लिये उन्हें शीघ्र ही उपाय सूझ गया। उन्होंने शीघ्र ही ब्राह्मणों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—हे विप्रो! तुम एक काम करो, बीच गाँव में एक खम्भा गढ़वाओ और उससे कहीं से लाकर एक बाघ बाँध दो। जिस समय चराने से बकरा मोटा मालूम होता पड़े, धीरे से उसे बाघ के सामने लाकर खड़ा कर दो। विश्वास रखो इस रीति से वह बकरा न बढ़ेगा और न घटेगा। कुमार की युक्ति ब्राह्मणों के हृदय में जम गयी।

उन्होंने शीघ्र ही कुमार की आज्ञानुसार यह काम करना प्रारम्भ कर दिया। प्रथम तो वे दिन भर खूब बकरे को चरावें और पश्चात् शाम को उसे बाघ के सामने ले जाकर खड़ा कर दें। इस रीति से उन्होंने कई दिन तक किया तो बकरा वैसा ही बना रहा। इस प्रकार जैसा राजगृह नगर से आया था, वैसा ही ब्राह्मणों ने जाकर उसे महाराज की सेवा में हाजिर कर दिया।

विघ्न के टल जाने पर इधर ब्राह्मणों ने तो यह समझा कि कुमार की कृपा से हमारा विघ्न टल गया, हम बच गये। वे बारम्बार कुमार की प्रशंसा करने लगे। वे सभी कुमार अभय के पास जाकर उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

हे दिव्य पुरुष! हे पुण्यात्मन्! हे समस्त जीवों पर दया करनेवाले कुमार! यह हमारा भयंकर विघ्न आपकी कृपा से ही शान्त हुआ है, आपके सर्वोत्तम बुद्धि बल से ही इस समय हमारी रक्षा हुई है, आपके प्रसाद से ही इस समय आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। आपने हमें अपना समझकर जीवनदान दिया है। यदि महाराज की आज्ञा का पालन न होता तो न मालूम महाराज हमारी क्या दुर्दशा करते, हमें क्या दण्ड देते? हे कृपानाथ कुमार! हम आपके इस उपकार के बदले में क्या करें? हम तो सर्वथा असमर्थ हैं और आप समस्त लोक के विनाकारण बन्धु हैं।

हे कुमार! जैसी आपके चित्त में दया है, संसार में वैसी दया कहीं नहीं जान पड़ती। हे महोदय! आप संसार में अलौकिक सज्जन हैं, आप मेघ के समान हैं क्योंकि जिस प्रकार मेघ परोपकारी, स्नेह (जल) युक्त, आर्द्र, एवं उन्नत होते हैं, उसी प्रकार आप भी परोपकारी हैं। समस्त जनों पर प्रीति के करनेवाले हैं। आपका भी चित्त दया से भींगा हुआ है और आप जग में पवित्र हैं।

हे हमारे प्राणदाता कुमार! आपकी सेवा में हमारी यह सविनय निवेदन है कि जब तक राजा का कोप शान्त न हो, महाराज हमारे ऊपर सन्तुष्ट नहीं हों, आप इस नगर को ही सुशोभित करें। आप तब तक इस नगर से कदापि न जाएँ। यदि आप यहाँ से चले जाएँगे तो महाराज हमें कदापि यहाँ नहीं रहने देंगे।

इधर तो नन्दिनाथ एवं अन्य विप्रों की इस प्रार्थना ने कुमार अभय के चित्त पर प्रभाव जमा दिया, उन्हें जबरन प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी और ब्राह्मणों पर दया कर नन्दिग्राम में कुछ ठहरना भी निश्चित कर लिया। उधर जिस समय महाराज ने बकरे को ज्यों का त्यों देखा

तो वे गहरी चिन्ता में पड़ गये। अपने प्रयत्न की सफलता न देख उन्हें अति क्रोध आ गया।

वे सोचने लगे कि जब नन्दिग्राम के ब्राह्मण इतने बुद्धिमान हैं, तब उनको कैसे नन्दिग्राम से निकाला जाए? इस प्रकार क्षण भर ऐसा सोचकर शीघ्र ही उन्होंने फिर एक दूत बुलाया और उससे यह कहा—तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के निवासी ब्राह्मणों से कहो कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम निवासी ब्राह्मण शीघ्र एक बावड़ी राजगृह नगर पहुँचा दें, नहीं तो उनको कष्ट का सामना करना पड़ेगा।

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत चला और नन्दिग्राम में पहुँच कर शीघ्र ही उसने ब्राह्मणों से कहा कि हे विप्रो! महाराज ने नन्दिग्राम से एक बावड़ी राजगृह नगर मँगाई है। आप लोगों को यह कड़ी आज्ञा दी है कि आप उसे शीघ्र पहुँचा दें, नहीं तो तुम्हें नगर से जाना पड़ेगा।

दूत के मुख से महाराज की ऐसी कठिन आज्ञा सुन, नन्दिग्राम निवासी विप्र दाँतों में उंगली दबाने लगे। विचारने लगे कि अबके तो महाराज ने कठिन समस्या उपस्थित की। बावड़ी का जाना तो सर्वथा असंभव है। मालूम होता है महाराज का कोप अनिवार्य है। अबके हमें नन्दिग्राम में रहना कठिन जान पड़ता है। क्षण एक ऐसा विचार कर वे सब मिलकर कुमार अभय के पास गये और सारा समाचार उन्हें जाकर कह सुनाया।

ब्राह्मणों के मुख से बावड़ी का भेजना सुनकर, और नन्दिग्राम निवासी ब्राह्मणों को चिन्ता से ग्रस्त देखकर, कुमार अभय ने उत्तर दिया कि हे विप्रो! यह कौन बड़ी बात है? आप क्यों इस छोटी सी

बात के लिये चिन्ता करते हैं ? आप किसी बात से जरा भी न घबड़ायें। यह विघ्न शीघ्र दूर हुआ जाता है। आप एक काम करें।

आपके गाँव में जितने भी बैल एवं भैंसे हों, उन सबको इकट्ठा करो। सबके कंधों पर जूवा रखवा दो और नन्दिग्राम से राजगृह तक उनकी कतार लगा दो। जिस समय महाराज अपने राजमन्दिर में गाढ़ निद्रा में सोते हों, बेधड़क हल्ला करते हुए राजमन्दिर में घुस जाओ और खूब जोर से पुकार कर कहो कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावड़ी लाये हैं। जो उन्हें आज्ञा होय सो किया जाए। बस महाराज के उत्तर से ही आपका यह विघ्न हट जाएगा।

कुमार की यह युक्ति सुन ब्राह्मणों ने गाँव के समस्त बैल एवं भैंस एकत्रित किये। उनके कन्धों पर जूवा रख दिया और उन्हें नन्दिग्राम से राजमन्दिर तक जोत दिया। जिस समय महाराज गाढ़ निद्रा में बेसुध सो रहे थे, तब राजमन्दिर में बड़े जोरों से हल्ला करना प्रारम्भ कर दिया और महाराज के पास जाकर कहा कि महाराजाधिराज! नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावड़ी लाये हैं, उन्हें जो आज्ञा हो सो करें।

उस समय महाराज के ऊपर निद्रादेवी का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा हुआ था। निद्रा के नशे में उन्हें अपने तन-बदन का भी होशहवास नहीं था, इसलिए जिस समय उन्होंने ब्राह्मणों के वचन सुने, तो बेसुध में उनके मुख से धीरे से ये ही शब्द निकल गये कि—जहाँ से बावड़ी लाये हो, वहीं पर बावड़ी ले जाकर रख दो और राजमन्दिर से शीघ्र ही चले जाओ।

बस फिर क्या था, ब्राह्मण यह चाहते ही थे कि किसी रीति से महाराज के मुख से हमारे अनुकूल वचन निकलें। जिस समय

महाराज से उन्हें अनुकूल जवाब मिला तो मारे हर्ष के उनका शरीर रोमांचित हो गया। वे उछलते-कूदते तत्काल ही नन्दिग्राम को लौट गये और वहाँ पर पहुँचकर, विघ्न की शान्ति से अपना पुनर्जीवन समझ, वे सुखसागर में गोता मारने लगे तथा अभयकुमार के चातुर्य पर मुग्ध होकर उनके मुख से खुले मैदान ये ही शब्द निकलने लगे कि कुमार अभय की बुद्धि अनुपम और आश्चर्यकारी है। इनका हरेक विषय में पाण्डित्य सबसे बड़ा चढ़ा है। सौख्य आदि गुण भी इनके लोकोत्तर हैं इत्यादि।

इधर अपने भयंकर विघ्न की शान्ति हो जाने से विप्र तो नन्दिग्राम में सुखानुभव करने लगे, उधर राजगृह नगर में महाराज श्रेणिक की निद्रा की समाप्ति हो गयी। उठते ही उनके मुँह से यही प्रश्न निकला कि—नन्दिग्राम के ब्राह्मण जो बावड़ी लाये थे, वह बावड़ी कहाँ है ? शीघ्र ही मेरे सामने लाओ।

महाराज के वचन सुनते ही पहरेदार ने जवाब दिया—महाराजाधिराज ! नन्दिग्राम के ब्राह्मण रात को बावड़ी उठाकर लाये थे। जिस समय उन्होंने आपसे यह निवेदन किया था कि बावड़ी कहाँ रख दी जाए ? उस समय आपने यही जवाब दिया था कि "जहाँ से लाये हो, वहीं ले जाकर रख दो और शीघ्र राजमन्दिर से चले जाओ" इसलिए हे कृपानाथ ! वे बावड़ी को पीछे ही लौटा ले गये।

पहरेदार के ये वचन सुन मारे क्रोध के महाराज श्रेणिक का शरीर क्रोध से भभकने लगा। वे बारबार अपने मन में ऐसा विचार करने लगे—संसार में जैसी भयंकर चेष्टा निद्रा की है, वैसी भयंकर चेष्टा किसी की नहीं। यदि जीवों के सुख पर पानी फेरनेवाली है तो यह पिशाचिनी निद्रा ही है।

परमार्थियों ने जो यह कहा है कि जो मनुष्य हित के आकांक्षी हैं, अपनी आत्मा का हित चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे इस निद्रा को अवश्य जीतें, सो बहुत ही उत्तम कहा है क्योंकि जिस समय यह पिशाचिनी निद्रा जीवों के अन्तरंग में प्रविष्ट हो जाती है, उस समय बेचारे प्राणी इसके वश हो अनेक शुभ-अशुभ कर्म संचय कर डालते हैं और अशुभ कर्मों की कृपा से उन्हें नरकादि घोर दु:खों का सामना करना पड़ता है।

वास्तव में यह निद्रा क्षुधा के समान है, क्योंकि जिस प्रकार क्षुधा का जीतना कठिन है, उसी प्रकार इस निद्रा का जीतना भी अति कठिन है। क्षुधा से पीड़ित मनुष्य को जिस प्रकार यह विचार नहीं रहता कि कौन कर्म अच्छा है, व कौन बुरा है ? संसार में कौन वस्तु मुझे ग्रहण करनेयोग्य है व कौन त्यागनेयोग्य है ? उसी प्रकार निद्रा पीड़ित मनुष्य को भी अच्छे-बुरे एवं हेय-उपादेय का विचार नहीं रहता और जैसा क्षुधा पीड़ित मनुष्य पाप-पुण्य की कुछ भी परवाह नहीं करता, वैसे ही निद्रा पीड़ित मनुष्य को भी पाप-पुण्य की कुछ भी परवाह नहीं रहती। यह निद्रा एक प्रकार का भयंकर मरण है, क्योंकि मरते समय कफ के रुक जाने पर जैसा कण्ठ में घड़-घड़ शब्द होने लग जाता है, निद्रा के समय भी उसी प्रकार घड़-घड़ शब्द होता है।

मरण काल में संसारी जीव जैसी खाट आदि पर सोता है, उसी प्रकार निद्राकाल में भी बेहोशी से खाट आदि पर सोता है। मरण काल में भी जैसा मनुष्य के अंग पर पसीना झलक आता है, वैसा निद्रा के समय भी अंग पर पसीना आ जाता है एवं मरण समय में जिस प्रकार जीव जरा भी नहीं चलता किन्तु काष्ठ की पुतली के

समान बेहोश पड़ा रहता है, वही दशा निद्राकाल में होती है।

इसलिए यह निद्रा अति खराब है, इस तरह क्षण भर ऐसा विचार कर देदीप्यमान शरीर से शोभित महाराज श्रेणिक ने फिर से सेवकों को बुलाया और उनसे कहा कि जाओ और शीघ्र ही नन्दिग्राम के विप्रों से कहो कि एक हाथी का वजन कर शीघ्र ही मेरे पास भेज दें।

महाराज की आज्ञा पाते ही सेवक चला और नन्दिग्राम में जाकर उसने ब्राह्मणों से, जो कुछ महाराज की आज्ञा थी, सब कह सुनाई, साथ ही यह भी कह सुनाया कि महाराज की इस आज्ञा का पालन जल्दी हो, नहीं तो आपको जबरन नन्दिग्राम खाली करना पड़ेगा।

सेवक के मुख से महाराज की आज्ञा सुनते ही नन्दिग्राम निवासी विप्रों के मुख फीके पड़ गये। मारे भय के उनका गोत्र कम्पन लग गया। अपने मन में सोचने लगे कि बावड़ी का विघ्न टल जाने से हमने तो यह सोचा था कि हमारे दुःखों की शान्ति हो गयी; अब यह बलाय फिर कहाँ से आ टूटी? तथा कुछ देर ऐसा विचारकर वे बुद्धिशाली कुमार अभय के पास गये और उनसे इस रीति से विनयपूर्वक कहा—

माननीय कुमार! अबके महाराज ने बड़ी कठिन अटकाई है। इस बार उन्होंने हाथी का वजन माँगा है। भला हाथी का वजन कैसे किस रीति से हो सकता है? मालूम होता है महाराज अब हमें छोड़ेंगे नहीं।

ब्राह्मणों के ऐसे दीनतापूर्वक वचन सुन कुमार ने उत्तर दिया कि—आप इस जरा सी बात के लिये क्यों इतने घबराते हैं। मैं अभी इसका प्रतिकार करता हूँ। ब्राह्मणों को इस प्रकार आश्वासन दे वे

शीघ्र ही किसी तालाब के किनारे गये। तालाब के पास जाकर उन्होंने एक नौका मँगाई और ब्राह्मणों द्वारा एक हाथी मँगाकर उस नाव में हाथी खड़ा कर दिया। हाथी के वजन से जितना नाव का हिस्सा डूब गया उस हिस्से पर कुमार ने एक लकीर खींच दी एवं हाथी को नाव से बाहर कर उसमें उतने ही पत्थर भरवा दिये। जिस समय पत्थर और हाथी का वजन बराबर हो गया तो कुमार ने उन पत्थरों को भी नाव से निकलवा लिया तथा उन पत्थरों की बराबर दूसरे बड़े-बड़े पत्थर कर महाराज श्रेणिक को सेवा में भिजवा दिये और नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की ओर से यह निवेदन कर दिया कि—कृपानाथ! आपने जो हाथी का वजन माँगा था, सो यह लीजिये।

जिस समय महाराज श्रेणिक ने हाथी के वजन के पत्थर देखे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने मन में विचारने लगे कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण अधिक बुद्धिमान हैं। उनका चातुर्य एवं पाण्डित्य ऊँचे दर्जे पर चढ़ा हुआ है। ये किसी रीति से जीते नहीं जा सकते तथा क्षणेक अपने मन में ऐसा भले प्रकार विचार कर महाराज ने फिर सेवकों को बुलाया और एक हाथ प्रमाण की एक निखोल खैर की लकड़ी उन्हें दे यह कहा—जाओ, इस लकड़ी को नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को दे आओ। उनसे कहना कि महाराज ने यह लकड़ी भेजी है। कौन-सा तो इसका नीचा भाग है और कौन-सा इसका ऊपर का भाग है? यह परीक्षा कर शीघ्र ही महाराज के पास भेज दो, नहीं तो तुम्हें नन्दिग्राम से निकाल दिया जाएगा।

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत राजगृह नगर से चला और नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को लकड़ी देकर उसने कहा—राजगृह के

स्वामी महाराज श्रेणिक ने यह लकड़ी भेजी है। इसका कौन सा तो अगला भाग है और कौन सा पिछला भाग है ? शीघ्र ही परीक्षा कर भेज दो। यदि नहीं बता सको तो नन्दिग्राम छोड़कर चले जाओ।

दूत के मुख से जब महाराज का यह सन्देशा सुनने में आया तो नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के मस्तक घूमने लगे। वे सोचने लगे यह बलाय तो सबसे कठिन आकर टूटी। इस लकड़ी में यह बताना बुद्धि के बाह्य है कि कौन सा भाग इसका पिछला है और कौन सा अगला है ! महाराज के पास इसका उत्तर जाना कठिन है। अब हम किसी कदर नन्दिग्राम में नहीं रह सकते। इस तरह क्षणेक ऐसे संकल्प-विकल्प कर अति व्याकुल हो वे सभी कुमार के पास गये। महाराज का सारा सन्देशा कुमार को कह सुनाया और वह खैर की लकड़ी भी उनके सामने रख दी।

ब्राह्मणों को म्लानचित्त देख और उस खैर की लकड़ी को निहार कुमार ने उत्तर दिया—आप महाराज की इस आज्ञा से जरा न डरें। मैं अभी इसका प्रतिकार करता हूँ। सब ब्राह्मणों को इस प्रकार दिलासा देकर कुमार किसी तालाब के किनारे गये। तालाब में कुमार ने लकड़ी डाल दी। जिस समय वह लकड़ी अपने मूल भाग को आगे कर बहने लगी, शीघ्र ही उन्होंने उसका पीछे-आगे का भाग समझ लिया और भले प्रकार परीक्षा कर किसी ब्राह्मण के हाथ उसे महाराज श्रेणिक की सेवा में भेज दिया। लकड़ी को ले ब्राह्मण राजगृह नगर गया तथा कुमार की आज्ञानुसार उसने लकड़ी का नीचा-ऊँचा भाग महाराज की सेवा में विनयपूर्वक जा बताया।

जिस समय महाराज ने लकड़ी को देखा तो मारे क्रोध से उनका तन-बदन जल गया। वे सोचने लगे—मैं ब्राह्मणों पर दोष आरोपण

करने के लिये कठिन से कठिन उपाय कर चुका। अभी तक ब्राह्मण किसी प्रकार दोषी सिद्ध नहीं हुए हैं। नन्दिग्राम के ब्राह्मण बड़े चालाक मालूम पड़ते हैं।

अब इनको दोषी बनाने के लिये कोई दूसरा उपाय सोचना चाहिए। क्षणेक ऐसा विचार कर उन्होंने फिर किसी सेवक को बुलाया और उसके हाथ में कुछ तिल देकर यह आज्ञा दी कि अभी तुम नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के ब्राह्मणों को तिल देकर यह बात कहो कि महाराज ने ये तिल भेजे हैं, जितने ये तिल है, इनकी बराबर शीघ्र ही तेल राजगृह पहुँचा दो, नहीं तो तुम्हारे हक में अच्छा न होगा।

महाराज की आज्ञानुसार दूत नन्दिग्राम की ओर चल दिया और तिल ब्राह्मणों को दे दिये तथा यह भी कह दिया कि जितने ये तिल हैं, महाराज ने उतना ही तेल मँगाया है। तेल शीघ्र भेजो, नहीं तो नन्दिग्राम छोड़ना पड़ेगा।

दूत के मुख से ऐसे वचन सुन ब्राह्मण बड़े घबड़ाये। वे सीधे कुमार अभय के पास गये और विनयपूर्वक यह कहा—महोदय कुमार! महाराज ने ये थोड़े से तिल भेजे हैं और इनकी बराबर ही तेल माँगा है। क्या करें ? यह बात अति कठिन है। तिलों के बराबर तेल कैसे भेजा जा सकता है ? मालूम होता है अब महाराज छोड़ेंगे नहीं।

ब्राह्मणों को इस प्रकार हताश देख कुमार ने फिर उन्हें समझा दिया तथा एक दर्पण मंगाया और उस दर्पण पर तिलों को पूरकर ब्राह्मणों को आज्ञा दी कि जाओ इनका तेल निकलवा लाओ। जिस समय कुमार की आज्ञानुसार ब्राह्मण तेल पेल कर ले आये तो उस

तेल को कुमार ने तिलों के बराबर ही दर्पण पर पूर दिया और महाराज श्रेणिक की सेवा में किसी मनुष्य द्वारा भिजवा दिया।

तिलों के बराबर तेल देख महाराज चकित रह गये। फिर उनके हृदय-समुद्र में विचार तरंगें उछलने लगीं। वे बारम्बार नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के बुद्धिबल की प्रशंसा करने लगे। अब महाराज को क्रोध के साथ-साथ नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की बुद्धि परीक्षा का कौतूहल सा हो गया। उन्होंने फिर किसी सेवक को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और ब्राह्मणों से कहो कि महाराज ने भोजन के योग्य दूध मँगाया है। उनसे यह कह देना कि वह दूध गाय, भैंस आदि चौपाओं का न हो और न किसी दुपाओं का हो तथा नारियल आदि पदार्थों का भी न हो किन्तु इनसे अतिरिक्त हो, मिष्ट हो, उत्तम हो और बहुत सा हो।

महाराज की आज्ञानुसार दूत फिर नन्दिग्राम को गया। महाराज ने जैसा दूध लाने के लिये आज्ञा दी थी, वही आज्ञा उसने नन्दिग्राम के विप्रों के सामने जाकर कह सुनाई और यह भी सुना दिया कि महाराज का क्रोध तुम्हारे ऊपर बढ़ता ही चला जाता है। महाराज आप लोगों पर बहुत नाराज हैं। दूध शीघ्र भेजों, नहीं तो तुम्हें नन्दिग्राम में नहीं रहने देंगे।

दूत के मुख से यह सन्देशा सुन ब्राह्मणों के मस्तक चक्कर खाने लगे। वे विचारने लगे कि दूध तो गाय, भैंस, बकरी आदि का ही होता है। इसके अतिरिक्त किसी का दूध आज तक हमने सुना ही नहीं है। महाराज ने तो किसी अन्य ही चीज़ का दूध मँगाया है, सो उन्हें क्या सूझी है ? क्या वे अब हमारा सर्वथा नाश ही करना चाहते हैं ? तथा क्षणेक ऐसा विचार कर वे अति व्याकुल हो दौड़ते-

दौड़ते कुमार अभय के पास गये और महाराज का सब सन्देशा कुमार के सामने कह सुनाया तथा कुमार से यह भी निवेदन किया— हे महानुभाव कुमार! अबके महाराज की आज्ञा बड़ी कठिन है। क्योंकि दूध तो गाय, भैंस, बकरी आदि का ही हो सकता। इनसे अतिरिक्त का दूध हो ही नहीं सकता। यदि हो भी तो वह दूध नहीं कहा जा सकता। महाराज ने अब यह दूध नहीं माँगा है, हम लोगों के प्राण माँगे हैं।

ब्राह्मणों के वचन सुन कुमार ने उत्तर दिया—आप क्यों घबड़ाते हैं ? गाय, भैंस, बकरी आदि से अतिरिक्त का भी दूध होता है। मैं अभी उसे महाराज की सेवा में भिजवाता हूँ। आप जरा धैर्य रखें। ऐसा कहकर कुमार ने शीघ्र ही कच्चे धान्यों की बालें मँगवायीं और उनसे गौ के समान ही उत्तम दूध निकलवाकर कई घड़े भरकर तैयार कराये एवं वे घड़े महाराज श्रेणिक की सेवा में राजगृह नगर भेज दिये।

दूध के भरे हुए घड़ों को देख महाराज आश्चर्य-समुद्र में गोता लगाने लगे। नन्दिग्राम के विप्रों के बुद्धिबल की ओर ध्यान दे उन्हें दाँतों तले ऊंगली दबानी पड़ी। वे बारबार यह कहने लगे कि नन्दिग्राम के ब्राह्मणों का बुद्धिबल है कि कोई बलाय है ? मैं जिस चीज़ को परीक्षार्थ उनके पास भेजता हूँ, फौरन वे उसका जवाब मेरे पास भेज देते हैं। मालूम होता है, उनका बुद्धिबल इतना बढ़ा-चढ़ा है कि उन्हें सोचने तक की भी जरूरत नहीं पड़ती।

अस्तु, अब मैं उन्हें अपने सामने बुलाकर उनकी परीक्षा करता हूँ। देखें वे कैसे बुद्धिमान हैं ? तथा क्षणेक ऐसा अपने मन में दृढ़ निश्चय कर महाराज ने शीघ्र ही एक सेवक को बुलाया और उससे

यह कहा—तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के विप्रों से कहो—महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण एक ही मुर्गे को मेरे सामने आकर लड़ावें। यदि वे ऐसा न करें तो नन्दिग्राम खाली कर चले जायें।

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत फिर चल दिया और नन्दिग्राम में पहुँच उसने ब्राह्मणों से जाकर यह कहा कि—आप लोगों के लिये महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण राजगृह आवे और हमारे सामने एक ही मुर्गे को लड़ावें। यदि यह बात उनको नामंजूर हो तो वे शीघ्र ही नन्दिग्राम को खाली कर चले जाएँ।

दूत के वचन सुन ब्राह्मण घबड़ाकर कुमार अभय के पास गये और महाराज का सारा सन्देश उनके सामने निवेदन कर दिया तथा यह भी कहा—महनीय कुमार! अबके महाराज ने हमें अपने सामने बुलाया है। अबके हमारे ऊपर अति भयंकर विघ्न मालूम पड़ता है।

ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुन कुमार ने उत्तर दिया—आप खुशी से राजगृह नगर जाएँ। आप किसी बात से घबड़ायें नहीं, वहाँ जाकर एक काम करें। मुर्गे को अपने सामने खड़ा कर दर्पण उसके सामने रख दें। जिस समय वह मुर्गा दर्पण में अपनी तस्वीर देखेगा, अपना वैरी दूसरा मुर्गा समझ, वह फौरन लड़ने लग जाएगा और आपका काम सिद्ध हो जाएगा।

कुमार के मुख से यह युक्ति सुनकर मारे हर्ष के ब्राह्मणों का शरीर रोमांचित हो गया। एक मुर्गा लेकर वे शीघ्र ही राजगृह नगर की ओर चल दिये। राजमन्दिर में पहुँचकर उन्होंने भक्तिपूर्वक महाराज को नमस्कार किया तथा उनके सामने उन्होंने मुर्गा छोड़

दिया और उसके आगे एक दर्पण रख दिया। जिस समय असली मुर्गे ने दर्पण में अपनी तस्वीर देखी तो उसने उसे अपना वैरी असली मुर्गा समझा और वह चोंच मारकर उसके साथ अति आतुर हो युद्ध करने लग गया।

अकेले ही मुर्गे को युद्ध करते हुए देख महाराज चकित रह गये। उन्होंने शीघ्र ही मुर्गे की लड़ाई समाप्त करा दी तथा ब्राह्मणों को जाने के लिये आज्ञा दे दी। जिस समय ब्राह्मण चले गये, तब महाराज के मन में फिर सोच उठा। वे विचारने लगे—ब्राह्मण बड़े बुद्धिमान हैं। उनको अब किस रीति से दोषी बनाया जाए? कुछ समझ में नहीं आता तथा क्षणएक ऐसा विचार कर उन्होंने फिर किसी सेवक को बुलाया और उससे कहा कि शीघ्र नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के ब्राह्मणों से कहो—महाराज ने एक बालू की रस्सी मगाई है। शीघ्र तैयार कर भेजो, नहीं तो अच्छा न होगा।

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत नन्दिग्राम की ओर चल दिया तथा नन्दिग्राम में पहुँचकर उसने ब्राह्मणों के सामने महाराज श्रेणिक का सारा सन्देशा कह सुनाया।

दूत द्वारा महाराज की आज्ञा सुन ब्राह्मणों के तो बिल्कुल छक्के छूट गये। वे भागते-भागते कुमार अभय के पास पहुँचे तथा कुमार अभय के सामने सारा सन्देशा निवेदन कर उन्होंने कहा—पूज्य कुमार! अबके महाराज ने यह क्या आज्ञा दी है? इसका हमें अर्थ ही नहीं मालूम हुआ। हमने तो आज तक न बालू की रस्सी सुनी और न देखी।

ब्राह्मणों द्वारा महाराज की आज्ञा सुन कुमार ने उत्तर दिया—आप किसी बात से न घबड़ायें। इसका उपाय यही है कि

आप लोग अभी राजगृह नगर जाएँ और महाराज के सामने यह निवेदन करें—

श्री राजाधिराज! आपके भण्डार में कोई दूसरी बालू की रस्सी हो तो कृपाकर हमें देवें, जिससे हम वैसी ही रस्सी आपकी सेवा में लाकर हाजिर कर दें। यदि महाराज इन्कार कर दें कि हमारे यहाँ वैसी रस्सी नहीं है, तो उनसे आप विनयपूर्वक अपने अपराध की क्षमा माँग लीजिये और यह प्रार्थना कर दीजिये—हे महाराज! ऐसी अलभ्य वस्तु की हमें आज्ञा न दिया करें। हम आपकी दीन प्रजा हैं।

कुमार के मुख से यह युक्ति सुन ब्राह्मणों को अति हर्ष हुआ। वे मारे आनन्द के उछलते-कूदते शीघ्र ही राजगृह नगर जा पहुँचे। राजमन्दिर में प्रवेश कर उन्होंने महाराज को नमस्कार किया और विनयपूर्वक यह निवेदन किया—

श्री महाराज! आपने हमें बालू की रस्सी के लिये आज्ञा दी है। हमें नहीं मालूम होता हम कैसी रस्सी आपकी सेवा में लाकर हाजिर करें। कृपया हमें कोई दूसरी बालू की रस्स मिले तो हम वैसी ही आपकी सेवा में हाजिर कर दें, अपराध क्षमा हो।

विप्रों की बात सुन महाराज ने उत्तर दिया—हे विप्रो! मेरे यहाँ कोई भी बालू की रस्सी नहीं। बस फिर क्या था! महाराज के मुख से शब्द निकलते ही ब्राह्मणों ने एक स्वर हो इस प्रकार निवेदन किया—

हे कृपानाथ! जब आपके भण्डार में भी रस्सी नहीं है तो हम कहाँ से बालू की रस्सी बनाकर ला सकते हैं? प्रभो! कृपया हम पर ऐसी अलभ्य वस्तु के लिये आज्ञा न भेजा करें। आपकी ऐसी कठोर आज्ञा हमारा घोर अहित करनेवाली है। हम आपके ताबेदार

हैं, आप हमारे स्वामी हैं, इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर विप्र राजमन्दिर से चले गये। किन्तु विप्रों के विनय करने पर भी महाराज के कोप की शान्ति न हुई। विप्रों के चले जाने पर उन्हें फिर नन्दिग्राम के अपमान का स्मरण आया, उनके शरीर में फिर ज्वाला धधकने लगी।

वे विचारने लगे कि ब्राह्मण किसी प्रकार दोषी नहीं बन पाये हैं। नन्दिग्राम के ब्राह्मण बड़े चालाक मालूम पड़ते हैं। अस्तु, मैं अब उनके पास ऐसी आज्ञा भेजता हूँ, जिसका वे पालन ही न कर सकेंगे तथा क्षणएक ऐसा विचारकर महाराज ने शीघ्र ही एक दूत बुलाया और उसे यह आज्ञा दी कि तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहाँ के ब्राह्मणों से कहो कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण एक कूष्मांड (पेठा) मेरे पास लावें। वह कूष्मांड घड़ा में भीतर हो, और घड़ा की बराबर हो। कमती-बढ़ती न हो, यदि वे इस आज्ञा का पालन न करें तो नन्दिग्राम को छोड़ दें।

इधर महाराज की आज्ञा पाकर दूत तो नन्दिग्राम की ओर रवाना हुआ। उधर जब ब्राह्मणों को बालू की रस्सी महाराज के यहाँ से न मिली तो अपना विघ्न टल जाने से वे खूब आनन्द से नन्दिग्राम में रहने लगे, और बारबार कुमार अभय की बुद्धि की तारीफ करने लगे। किन्तु जिस समय दूत फिर से नन्दिग्राम पहुँचा और ज्यों ही उसने ब्राह्मणों के सामने महाराज की आज्ञा कहनी प्रारम्भ की, सुनते ही ब्राह्मण घबड़ा गये। महाराज की आज्ञा के भय से उनका शरीर थरथर काँपने लगा।

वे अपने मन में विचारने लगे—हे ईश्वर! यह बलाय फिर कहाँ से आ टूटी। हम तो अभी महाराज से अपना अपराध क्षमा

कराकर आये हैं। क्या हमारे इतने विनयभाव से भी महाराज का हृदय दया से न पसीजा ? अब हम अपने बचने का क्या और कैसा उपाय करें ? तथा क्षणएक ऐसा विचार कर वे कुमार के सामने इस प्रकार रोदनपूर्वक चिल्लाने लगे।

हे वीरों के सिरताज कुमार! अबके महाराज ने हमारे ऊपर अति कठिन आज्ञा भेजी है। हे कृपानाथ! इस भयंकर विघ्न से हमारी शीघ्र रक्षा करो। हम ब्राह्मणों के इस भयंकर दु:ख का जल्दी निपटारा करो। हे दीनबंधों! इस भयंकर कष्ट से आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। आप ही हमारे दु:खपर्वत के नाश करने में अखण्ड वज्र हैं।

महनीय कुमार! लोक में जिस प्रकार समुद्र की गम्भीरता, मेरुपर्वत का अचलपना, देवजीत की विद्वत्ता, सूर्य का प्रतापीपना, इन्द्र का स्वामीपना, चन्द्रमा की मनोहरता, राजा रामचन्द्र की न्याय परायणता, कामदेव की सुन्दरता आदि बातें प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार आपकी सुजनता और विद्वत्ता प्रसिद्ध है। स्वामिन्! हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये। हमें धैर्य बँधाइये। इस समय हम घोर चिन्ता से व्यथित हो रहे हैं। जीवननाथ! हम सब लोगों का जीवन आपके ही आधार है। त्रिलोक में आपके समान हमारा कोई बन्धु नहीं।

ब्राह्मणों को इस प्रकार करुणापूर्वक रुदन करते हुए देख कुमार अभय का चित्त करुणा से गद्‌गद् हो गया। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक ब्राह्मणों से कहा! विप्रो! आप क्यों इस न-कुछ बात के लिये इतना घबड़ाते हैं ? मैं अभी इसका उपाय करता हूँ। जब तक मैं यहाँ पर हूँ, तब तक आप किसी प्रकार से राजा की आज्ञा का भंग न करें। विप्रों को इस प्रकार समझकर कुमार अभय ने एक

घड़ा मँगाया और उसमें बेल सहित कुष्मांडफल को रख दिया। अनेक प्रयत्न करने पर कई दिन बाद कुष्मांड घड़े के बराबर बढ़ गया और कुमार ने घड़े सहित ज्यों का त्यों उसे महाराज की सेवा में भिजवा दिया एवं वे आनन्द से रहने लगे।

महाराज ने जैसा कूष्मांड माँगा था, वैसा ही उनके पास पहुँच गया। अबके कूष्मांड देखकर तो महाराज के सोच का पारावार न रहा। वे बारम्बार सोचने लगे—हें! यह बात क्या है? क्या नन्दिग्राम के ब्राह्मण ही इतने बुद्धिमान हैं या इनके पास कोई और ही मनुष्य बुद्धिमान रहता है? नन्दिग्राम के ब्राह्मणों का तो इतना पाण्डित्य नहीं हो सकता क्योंकि जब से इनको राज्य की ओर से स्थिर आजीविका मिली है, तब से ये लोग निपट अज्ञानी हो गये हैं। इनकी समझ में साधारण से साधारण तो बात आती ही नहीं, फिर इनके द्वारा मेरी बातों का जवाब देना तो बहुत ही कठिन बात है।

जो-जो काम मैंने नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के पास भेजे हैं, उन सबका जवाब मुझे बुद्धिपूर्वक ही मिला है, इसलिए यही निश्चय होता है कि नन्दिग्राम में अवश्य कोई असाधारण बुद्धि का धारक ब्राह्मणों से अन्य ही मनुष्य है। जिस पाण्डित्य से मेरी बातों का जवाब दिया गया है, न मालूम वह पाण्डित्य इन्द्रदेव का है या चन्द्रदेव का है! अथवा सूर्यदेव या यक्षराज का? नन्दिग्राम के ब्राह्मणों का तो किसी प्रकार वैसा पाण्डित्य नहीं हो सकता। अस्तु, यदि नन्दिग्राम के ब्राह्मण ही इतने बुद्धिमान हैं तो अभी मैं उनकी बुद्धि की फिर परीक्षा किये लेता हूँ; इस प्रकार क्षण एक अपने मन में पक्का निश्चय कर महाराज ने शीघ्र ही कुछ शूरवीर योद्धाओं

को बुलाया और उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम लोग अभी नन्दिग्राम जाओ और नन्दिग्राम में जो अधिक बुद्धिमान हो, उसे शीघ्र ही तलाशकर आकर कहो।

महाराज की आज्ञा पाते ही योद्धाओं ने शीघ्र ही नन्दिग्राम की ओर गमन कर दिया तथा नन्दिग्राम के मनोहर वन में वे अपनी भूख की शान्ति के लिये ठहर गये।

वह वन अति मनोहर वन था। उसमें जगह-जगह अनार, नारंगी, सन्तरा, जमनी, कंकेली, केला, लोंग आदि उत्तमोत्तम फल वृक्षों पर फलते थे। नींबू आदि सुगन्धित फलों की सुगन्धि से सदा वह वन व्याप्त रहता था। उसके ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर कोयल आदि पक्षीगण अपने मनोहर शब्दों से पथिक के मन को हरण करते थे और केतकी वृक्षों पर भ्रमर गुंजार करते थे। इसलिए हमेशा नन्दिग्राम के बालक उस वन में क्रीड़ार्थ आया-जाया करते थे।

रोज की तरह उस दिन भी बालक क्रीड़ार्थ वन में आये। दैवयोग से उस दिन विप्रों के बालकों के साथ कुमार अभय भी थे। वे सबके सब हँसते-खेलते किसी जामुन के वृक्ष पर चढ़ गये और आनन्द से जामुन फलों को खाने लगे। बालकों के इस प्रकार जमनी के पेड़ पर चढ़े राजसेवकों ने देखा तथा वे सब 'यह समझ कि हम इन बालकों से कुछ फल लेकर अपनी भूख शान्त करेंगे' शीघ्र ही उस वृक्ष की ओर झुक पड़े।

इधर कुमार अभय ने जब राजसेवकों को अपनी ओर आते हुए देखा तो वे तो अन्य बालकों से यह कहने लगे कि देखो भाई! ये राजसेवक अपनी ओर आ रहे है। तुममें से कोई भी इनके साथ बातचीत न करें। जो कुछ जवाब-सवाल करूँगा, वह मैं ही इनके

साथ करूँगा और उधर राजसेवक जमनी के वृक्ष के नीचे शीघ्र पहुँचे और बालकों से कुछ फलों के लिये उन्होंने प्रार्थना भी की।

राजसेवकों की फलों के लिये प्रार्थना सुन कुमार अभय ने सोचा—यदि इनको यों ही फल दे दिये जाएँगे तो कुछ मजा न आवेगा, इनको छकाकर फल देना ठीक होगा। इसलिए प्रार्थना के बदले में उन्होंने यही जवाब दिया—

राजसेवको! तुमने फल माँगे, वह ठीक है। जितने फलों की तुम्हें इच्छा हो, उतने ही फल दे सकता हूँ किन्तु यह कहो तुम ठण्डे फल लेना चाहते हो या गरम? क्योंकि मेरे पास फल दोनों तरह के हैं।

कुमार के ऐसे विचित्र वचन सुन समस्त राजसेवक एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। उन्होंने विचारा कि क्या केवल गरम और केवल ठण्डे भी फल होते हैं?

हमें तो आजतक यह बात सुनने में नहीं आयी कि फल गरम भी होते हैं। जितने फल हमने खाये हैं, सब ठण्डे ही खाये हैं और ठण्डे ही सुने हैं। एक वृक्ष पर गरम और ठण्डे दो प्रकार के पल हों, यह सर्वथा विरुद्ध है। इसलिए कुमार जो दो प्रकार के फल कह रहे हैं, सो इनका कथन सर्वथा अयुक्त जान पड़ता है इस प्रकार एक क्षण ऐसा दृढ़ निश्चय कर, और कुमार को अब उत्तर देना अवश्य है, यह समझ उन्होंने कहा—

महोदय कुमार! हमें आपके वचन अति प्रिय मालूम पड़ते हैं। कृपाकर लाइये हमें ठण्डे ही फल दीजिये। राजसेवकों के ये वचन सुन कुमार ने कुछ फल तोड़े और उन्हें आपस में घिसकर बालू में दूर पटक दिया और कह दिया—देखो फल वे पड़े हैं। उठा लो।

कुमार की आज्ञा पाते ही जिधर फल पड़े थे, राजसेवक उसी ओर दौड़े। ज्यों ही उन्होंने बालू से फल उठाकर फूंकना चाह त्यों ही कुमार ने कहा—देखो! फल होशियारी से फूंकना, ये फल गरम हैं, यदि बिना विचारे फूंका तो तुम्हारी सब दाढ़ी-मूंछ जल जाएंगी।

कुमार के ऐसे वचन सुनते ही राजसेवक अपने में बड़े लज्जित हुए। वे बारबार टकटकी लगाकर कुमार की ओर देखने लगे। कुमार की इस चतुरता को देखकर राजसेवकों ने निश्चय कर लिया कि हो न हो, यही सबमें चतुर जान पड़ता है। महाराज की बातों का उत्तर भी इसी ने दिया होगा तथा कुमार की रूप सम्पत्ति उन्होंने देख यह भी निश्चय कर लिया कि यह कोई अवश्य राजकुमार है। यह ब्राह्मण बालक नहीं हो सकता क्योंकि जितने बालक यहाँ पर हैं, सबमें तेजस्वी प्रतापी एवं राजलक्षणों से मण्डित यही जान पड़ता है। उपस्थित बालकों में इतना तेज किसी के चेहरे पर नहीं, जितना इस बालक के चेहरे पर दिखाई देता है एवं किसी से यह भी निश्चय कर कि कुमार महाराज श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार है, राजसेवकों ने नन्दिग्राम जाने का विचार यहीं समाप्त कर दिया। वे लज्जित एवं आनन्दित हो राजगृह की ओर ही लौट पड़े और महाराज को नमस्कार कर कुमार अभय की जो-जो चेष्टा उन्होंने देखी थी, सब कह सुनायी।

सेवकों द्वारा कुमार अभय का समस्त वृत्तान्त सुन, उन्हें बुद्धिमान एवं रूपवान भी निश्चयकर, महाराज श्रेणिक को अति प्रसन्नता हुई। मारे आनन्द के उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे। मुख कमल के समान विकसित हो गया तथा वे विचार करने लगे कि—मेरा अनुमान कदापि असत्य नहीं हो सकता। मुझे दृढ़ विश्वास था।

नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की बुद्धि ऐसी विशाल नहीं हो सकती। जरूर उनके पास कोई न कोई चतुर मनुष्य होना चाहिए। भला सिवाय कुमार अभय के इतनी बुद्धि की तीक्ष्णता किसमें हो सकती है ? एक क्षण ऐसा विचार कर उन्होंने कुमार अभय को बुलाने के लिये कुछ राजसेवकों को बुलाया और उनको आज्ञा दी कि तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और कुमार अभय से कहो कि महाराज ने आपको बुलाया है तथा यह भी कहना कि आपके लिये महाराज ने यह भी आज्ञा दी है कि—

कुमार न तो मार्ग से आवे और न उन्मार्ग से आवे, न दिन में आवे, न रात में आवे, भूखे भी न आवे, अफरे पेट भी न आवे, न किसी सवारी से आवे और न पैदल आवे किन्तु राजगृह नगर शीघ्र ही आवे।

महाराज की आज्ञा पाते ही सेवक शीघ्र ही नन्दिग्राम की ओर चल दिये, एवं कुमार के पास पहुँच उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर महाराज का जो कुछ सन्देशा था, सब कुमार को कह सुनाया!

अबके महाराज ने कुमार अभय के ऊपर भी कठिन सन्देशा अटकाया है और उन्हें राजगृह नगर बुलाया है, यह समाचार सारे नन्दिग्राम में फैल गया। समाचार सुनते ही समस्त ब्राह्मण हाहाकार करने लगे, भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्पों ने उनके चित्त में अपना स्थान बना लिया। क्षण-क्षण अब उनके मन में यह चिन्ता घूमने लगी कि अब हम किसी रीति से बच नहीं सकते। अब तक जो हमारे जीवन की रक्षा हुई है, सो इसी कुमार की असीम कृपा से हुई है। यदि यह कुमार न होता तो अब तक सबका हमारा विध्वंस हो गया होता। अबके राजा ने कुमार को बुलाया, यह बड़ा अनर्थ किया।

हे ईश्वर! हमने किस भव में ऐसा प्रबल पाप किया था, जिसका फल हम दु:ख ही दु:ख भोग रहे हैं। ईश्वर! अब तो हमारी रक्षा कर! इस प्रकार चिल्लाते हुए वे समस्त ब्राह्मण, कुमार अभय की सेवा में गये और उच्च स्वर से उनके सामने रोने लगे। विप्रों की ऐसी दु:खित अवस्था देख कुमार ने कहा—

ब्राह्मणों! आप क्यों इतना व्यर्थ खेद करते हो ? राजा ने जिस आज्ञा से मुझे बुलाया है, मैं वैसे ही जाऊँगा। मैं आप लोगों का पूरा-पूरा ख्याल रखूँगा, किसी तरह की आप चिन्ता न करें, इस प्रकार विप्रों को इस प्रकार धैर्य बँधाकर कुमार ने शीघ्र ही एक रथ मंगवाया और उसके मध्य में एक छींका बँधवाकर तैयार करवा दिया।

जिस समय दिन समाप्त हो गया। दिन का अन्त, रात का प्रारम्भ सन्ध्याकाल प्रगट हो गया, कुमार ने राजगृह की ओर रथ हकवा दिया। चलते समय रथ का एक (पहिया) मार्ग में चलाया गया और दूसरा उन्मार्ग में। कुमार ने चलते समय (हरिमंथक) चना का भोजन किया एवं छींके पर सवार हो कुमार अनेक विप्रों के साथ आनन्दपूर्वक राजगृह नगर आ पहुँचे।

महाराज श्रेणिक के पुत्र कुमार अभय राजगृह आ गये, यह समाचार सारे नगर में फैल गया। समस्त पुरवासी लोग कुमार के दर्शनार्थ राजमार्ग पर एकत्रित हो गये। नगर की स्त्रियाँ कुमार को टकटकी लगाकर देखने लगीं। कुमार के आगमन उत्सव में सारा नगर बाजों से गूँजने लग गया। बन्दीगण कुमार की विरदावली बखानने लगे और पुरवासी लोग कुमार को देख उनकी विविध प्रकार से प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार राजमार्ग से जाते हुए, पुरवासीजनों से भलीभाँति

स्तुत, कुमार अभय राजमन्दिर के पास जा पहुँचे। रथ से उतर कुमार ने अपना नाना इन्द्रदत्त के साथ राजसभा में प्रवेश किया और सभा में महाराज को सिंहासन पर विराजमान देख अति विनय से नमस्कार किया, महाराज के चरण छूए एवं प्रेमपूर्वक वचनालाप करने लगे। कुमार के साथ नन्दिग्राम के विप्र भी थे। कुमार ने महाराजा से उनका अपराध क्षमा कराया, उन्हें अभयदान दिलाकर सन्तुष्ट किया एवं उन्हें आनन्दपूर्वक नन्दिग्राम में रहने के लिये आज्ञा दे दी।

कुमार के इस विनयवर्ताव से एवं लोकोत्तर चातुर्य से महाराज श्रेणिक को अति प्रसन्नता हुई। कुमार की बिना तारीफ किये उनसे न रहा गया। वे इस प्रकार कुमार की प्रशंसा करने लगे—हे कुमार! जैसा ऊँचे दर्जे का पाण्डित्य आप में मौजूद है, वैसा पाण्डित्य कहीं पर नहीं। महाभाग! बकरा, बावड़ी, हाथी, काष्ट, तेल, दूध, बालू की रस्सी, कूष्मांड, रात-दिन आदि रहित गमन इत्यादि प्रश्नों के जवाब का सामर्थ्य आपकी बुद्धि में ही था। भला ऐसी विशाल बुद्धि अन्य मनुष्य में कहाँ से हो सकती है? इत्यादि अनेक प्रकार से कुमार अभय की तारीफ कर महाराज ने उनके साथ अधिक स्नेह बताया।

दोनों पिता, पुत्र अनेक उत्तमोत्तम पुरुषों की कथा कहने लगे। आपस में वार्तालाप करते हुए, एक स्थान में स्थित, दोनों महानुभावों ने सूर्य-चन्द्रमा की उपमा को धारण किया। महाराज श्रेणिक ने सेठ इन्द्रदत्त का भी अति सम्मान किया एवं मधुरभाषी, सोच-विचार कर कार्य करनेवाले कुमार और महाराज आनन्दपूर्वक राजगृह नगर में सुखानुभव करने लगे।

धर्म का माहात्म्य अचिन्तनीय है क्योंकि इसकी कृपा से संसार

में जीवों को उत्तमोत्तम बुद्धि की प्राप्ति होती है, उत्तम संगति मिलती है। तेजस्वीपना, सम्मान, गम्भीरपना आदि उत्तमोत्तम गुणों की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है।

महाराज श्रेणिक एवं कुमार अभय ने पूर्वभव में कोई अपूर्व धर्म संचय किया था, इसलिए उन्हें इस जन्म में गम्भीरता, शूरता, उदारता, बुद्धिमत्ता, तेजस्वीपना, सम्मान, रूपवानपना आदि उत्तमोत्तम गुणों की प्राप्ति हुई। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे प्रत्येक अवस्था में इस परम प्रभावी धर्म का अवश्य आराधन करें।

इस प्रकार भविष्यकाल में होनेवाले श्री पद्मनाथ तीर्थंकर के भवान्तर के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में कुमार अभय का राजगृह में आगमन का वर्णन करनेवाला छठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

सातवाँ सर्ग

अभयकुमार की उत्तम बुद्धि का वर्णन

ज्ञानरूपी भूषण के धारक, तीनों लोक के मस्तक पर विराजमान श्री सिद्धभगवान को उनके गुणों की प्राप्त्यर्थ, मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

अनन्तर इसके महाराज श्रेणिक ने रानी नन्दश्री को नन्दिग्राम से बुला महादेवी का पद प्रदान किया—उसे पटरानी बनाया तथा कुमार अभय को युवराज पद दिया। कुमार अभय का बुद्धिबल और तेजस्वीपना देख समस्त सामन्तों की सम्मतिपूर्वक महाराज ने उन्हें सेनापति का पद भी दे दिया एवं बुद्धदेव के गुणों में दत्तचित्त महाराज श्रेणिक ने किसी बौद्ध संन्यासी को गुरु बनाया और उसकी आज्ञानुसार वे आनन्दपूर्वक चतुरार्यमय तत्त्व की पूजन करने लगा तथा अपने राज्य को निष्टकंटक राज्य बना, कुमार अभय के साथ लोकोत्तर सुख का अनुभव करने लगे।

कुमार अभय अतिशय बुद्धिमान थे। बुद्धिपूर्वक राज्य कार्य करने से उनका चातुर्य और यश समस्त संसार में फैल गया। कुमार की न्याय परायणता देख समस्त प्रजा मुक्तकंठ से उनकी तारीफ करने लगी एवं कुमार की नीति-निपुणता से राज्य में किसी प्रकार की अनीति नजर न आने लगी। मगधदेश की प्रजा आनंदपूर्वक रहने लगी।

❁ ❁ ❁

मगधदेश में महान सम्पत्ति का धारक कोई सुभद्रदत्त नाम का सेठ निवास करता था। उसकी दो स्त्रियां थीं। सुभद्रदत्त की बड़ी

स्त्री का नाम वसुदत्ता था और उसकी दूसरी स्त्री जो अतिशय रूपवती थी, वसुमित्रा था। उन दोनों में वसुदत्ता के कोई सन्तान न थी, केवल छोटी स्त्री वसुमित्रा को एक बालक था।

कदाचित् घर में विपुल धन रहने पर भी सेठ सुभद्रदत्त को धन कमाने की चिन्ता हुई। वे शीघ्र ही अपनी दोनों स्त्री और पुत्र के साथ विदेश को निकल पड़े। अनेक देशों में घूमते-घूमते वे राजगृह नगर आये और वहाँ पर सुखपूर्वक धन का उपार्जन करने लगे और आनन्दपूर्वक रहने लगे।

दुर्दैव की महिमा अपार है, संसार में जो घोर से घोर दु:ख का सामना करना पड़ता है, इसी की कृपा है। इस निर्दयी दुर्दैव को किसी पर दया नहीं। सेठ सुभद्रदत्त आनन्दपूर्वक निवास करते थे, अचानक ही उन्हें काल ने आ दबाया। सुभद्रदत्त को जबरन पुत्र स्त्रियों से स्नेह छोड़ना पड़ा। सुभद्रदत्त के मरने के बाद उनकी स्त्रियों को अपार दु:ख हुआ किन्तु क्या किया जाए? दुर्दैव के सामने किसी की भी तीन-पाँच नहीं चलती।

जब तक सेठ सुभद्रदत्त जीये, तब तक तो वसुदत्ता एवं वसुमित्रा में गाढ़ प्रेम था। सुभद्रदत्त के सामने यह विचार स्वप्न में भी नहीं आता था कि कभी इन दोनों में झगड़ा होगा और सेठजी के मरण के उपरान्त ये उनकी बुरी तरह मिट्टी पलीत करेंगी। पुत्र के ऊपर भी उन दोनों का बराबर प्रेम था।

पुत्र की खास माँ वसुमित्रा जिस प्रकार पुत्र पर अधिक प्रेम रखती, उससे अधिक वसुदत्ता का था। यहाँ तक कि समान रीति से पुत्र के लालन-पालन करने से किसी को यह पता भी नहीं लगता

था कि पुत्र वसुदत्ता का है या वसुमित्रा का? बालक को भी कुछ पता नहीं लगता था।

वह दोनों को ही अपनी माँ मानता था किन्तु ज्यों ही सेठ सुभद्रदत्त का शरीरांत हुआ, वसुदत्ता और वसुमित्रा में झगड़ा होना प्रारम्भ हो गया। कभी उन दोनों की लड़ाई धन के लिये होने लगी तो कभी पुत्र के लिये। वसुदत्ता तो यह कहती थी यह पुत्र मेरा है और उसकी बात को काटकर वसुमित्रा यह कहती थी, यह पुत्र मेरा है।

गाँव के सेठ साहूकारों ने भी यह बात सुनी। वे सेठ सुभद्रदत्त की आबरू का ख्याल कर उनके घर आये। सेठ साहूकारों ने बहुत कुछ उन स्त्रियों को समझाया। उन्हें सेठ सुभद्रदत्त की प्रतिष्ठा का भी स्मरण दिलाया किन्तु उन मूर्खा स्त्रियों के ध्यान पर एक बात न चढ़ी। धन सम्बन्धी झगड़ा छोड़ वे पुत्र के लिये अधिक झगड़ा करने लगीं। पुत्र का झगड़ा देख सेठ साहूकारों की नाक में दम आ गया। वे जरा भी इस बात का फैसला न कर सके कि यह पुत्र वास्तव में किसका था? तथा इस रीति से उन दोनों स्त्रियों में दिनोंदिन द्वेष वृद्धिगत होता चला गया।

कदाचित् उन स्त्रियों के मन में न्याय सभा में जाकर न्याय कराने की इच्छा हुई। उन्हें इस प्रकार दरबार में जाते देख फिर गाँव के बड़े-बड़े मनुष्य सेठ सुभद्रदत्त के घर आये। उन्होंने फिर स्त्रियों को इस रीति से समझाया—देखो, तुम बड़े घराने की स्त्रियाँ हों, तुम्हारा कुल उत्तम है, तुम्हें इस न कुछ बात के लिये दरबार में जाना नहीं चाहिए।

यदि तुम दरबार में बिना विचारे चली जाओगी तो समस्त लोक

तुम्हारी निन्दा करेगा, तुम्हें निर्लज्ज कहेगा, एवं तुम्हें पीछे कुछ पछताना पड़ेगा, किन्तु उन मूर्खा स्त्रियों ने एक न मानी। निर्लज्ज हो वे सीधी दरबार में चल दीं और महाराज के सामने जो कुछ उन्हें कहना था, साफ-साफ कह सुनाया।

स्त्रियों की यह विचित्र बात सुन महाराज श्रेणिक चकित रह गये। उन्होंने वास्तव में यह पुत्र किसका है, इस बात के जानने के लिये अनेक उपाय सोचे किन्तु कोई उपाय सफल न जान पड़ा। उन्होंने स्त्रियों को बहुत कुछ समझाया, लड़ाई करने के लिये भी रोका, किन्तु उन स्त्रियों ने एक न मानी। महाराज ने जब स्त्रियों का विवाद विशेष देखा, समझाने पर भी जब वे न समझी, तब उन्होंने शीघ्र ही युवराज कुमार अभय को बुलाया और जो हकीकत उन स्त्रियों की थी, सारी कह सुनाई।

महाराज के मुख से स्त्रियों का यह विचित्र विवाद सुन कुमार को भी दाँतों तले उंगली दबानी पड़ी, किन्तु उपाय से अति कठिन भी काम अति सरल हो जाता है, यह समझ उन्होंने उपाय करना प्रारम्भ कर दिया।

कुमार ने उन दोनों स्त्रियों को अपने पास बुलाया। प्रिय वचन कह, उन्हें अधिक समझाने लगे, किन्तु वह पुत्र वास्तव में किसका था, स्त्रियों ने पता न लगने दिया। किसी समय कुमार ने एक-एक कर उन्हें एकान्त में भी बुलाकर पूछा किन्तु वे दोनों स्त्रियाँ पुत्र को अपना-अपना ही बतलाती रहीं। विवाद शान्ति के लिये कुमार ने और भी अनेक उपाय किये किन्तु फल कुछ भी न निकला। अन्त में उनको गुस्सा आ गया, उन्होंने बालक शीघ्र ही जमीन पर रखवा

लिया और अपने हाथ में एक तलवार ले, उसे बालक के पेट पर रख कुमार ने स्त्रियों से कहा—स्त्रियों! आप घबड़ायें नहीं, मैं अभी इस बालक के दो टुकड़े कर आपका फैसला किये देता हूँ। आप एक-एक टुकड़ा लेकर अपने-अपने घर चली जाएँ।

मातृस्नेह से बढ़कर दुनिया में स्नेह नहीं है। चाहे पुत्र कुपुत्र हो जाए, माता कभी कुमाता नहीं होती। कुपुत्र भले ही उनके लिये किसी काम का न हो, माता कभी भी उसका अनिष्ट चिन्तन नहीं करती। सदा माता का विचार यही रहता है कि चाहे मेरा पुत्र कुछ भी करे किन्तु मेरी आँखों के सामने प्रतिसमय बना रहे। इसलिए जिस समय सेठानी वसुमित्रा ने कुमार अभय के वचन सुने, मारे भय के उसका शरीर थर्राने लगा। पुत्र के टुकड़े सुन, उसके नेत्रों से अविरल अश्रुओं की धारा बहने लगी। उसने शीघ्र ही विनयपूर्वक कुमार से कहा—

महाभाग कुमार! इस दीन बालक के आप टुकड़े न करें, आप यह बालक वसुदत्ता को दे दें। यह बालक मेरा नहीं, वसुदत्ता का ही है। वसुदत्ता का इसमें अधिक स्नेह है। बालक की खास माता है। वसुमित्रा के ऐसे वचन सुन कुमार ने एकदम जान लिया कि इस बालक की माँ वसुमित्रा ही है तथा समस्त मनुष्यों के सामने यह बात प्रगट कर कुमार ने सेठानी वसुमित्रा को बालक दे दिया और वसुदत्ता को राज्य से निकाल डोड़ी किया। इस प्रकार अपने बुद्धिबल से नीतिपूर्वक राज्य करनेवाले कुमार अभय ने महाराज श्रेणिक का राज्य धर्मराज्य बना दिया और कुमार आनन्दपूर्वक रहने लगे।

❀ ❀ ❀

इसी अवसर में अतिशय सच्चरित्र कोई बलभद्र नाम का गृहस्थ अयोध्या में निवास करता था। उसकी स्त्री भद्रा, जो कि अतिशय रूपवती, चन्द्रमुखी, तन्वंगी, कठिनस्तनि, पिकवैनी अति मनोहरा थी, भद्रा थी। उसी नगर में अतिशय धनवान एक वसन्त नाम का क्षत्रिय भी रहता था। उसकी स्त्री का नाम माधवी था किन्तु वह कुरूपा अधिक थी। कदाचित् भद्रा अपने घर की छत पर खड़ी थी।

दैवयोग से वसन्त की दृष्टि भद्रा पर पड़ी। भद्रा की खूबसूरती देख वसन्त पागल-सा हो गया। सारी होशियारी उसको किनारा कर गयी, कामदेव के तीक्ष्ण बाण वसन्त के शरीर को भेदन करने लग गये। उसका दिनोंदिन कामजनित सन्ताप बढ़ता ही चला गया। दाह की शान्ति के लिये उसने चन्दनरस, चन्द्रकिरण, कमल कपूर, उत्तम शीतल जल आदि अनेक पदार्थों का सेवन किया किन्तु उसके दाह की शान्ति किसी कदर कम न हुई, किन्तु जैसे अग्नि पर घृत डालने से उसकी ज्वाला और भी अधिक बढ़ती जाती है, उसी प्रकार शीतलवस्त्र, फूलमाला, मलयचन्दन आदि से उस उल्लू वसन्त का मन्मथ सन्ताप दिनोंदिन बढ़ता ही चला गया। भद्रा के बिना उसे समस्त संसार शून्य ही शून्य प्रतीत होने लगा। सोते, उठते-बैठते उसके मुख से भद्रा शब्द ही निकलने लगा। भद्रा की चिन्ता में वसन्त की सारी भूख-प्यास एक ओर किनारा कर गयी।

कदाचित् अवसर पाकर वसन्त ने एक चतुर दूती बुलाई और अपनी सारी आत्म कहानी उसे कह सुनायी एवं शीघ्र ही उसे अपना सन्देशा कह भद्रा के पास भेज दिया। वसन्तु की आज्ञानुसार दूती शीघ्र ही भद्रा के पास गयी। भद्रा को देख दूती ने उसके साथ

प्रबल हितैषिता दिखायी एवं मधुर शब्दों में उसे इस प्रकार समझाने लगी—

भद्रे! संसार में तू रमणीरत्न है, तेरे समान रूपवती स्त्री दूसरी नहीं, किन्तु खेद है कि जैसी तू रूपवती, गुणवती, चतुरा है, वैसा ही तेरा पति कुरूपवान, निर्गुण एवं मूर्ख किसान है। प्यारी बहिन! अति कुरूप बलभद्र के साथ, मैं तेरा संयोग अच्छा नहीं समझती।

मुझे विश्वास है कि बलभद्र सरीखे कुरूप पुरुष से तुझे कदापि सन्तोष नहीं होता होगा। तुम सरीखी सुन्दर किसी दूसरी स्त्री का यदि इतना बदसूरत पति होता तो वह कदापि उसके साथ नहीं रहती, उसे सर्वथा छोड़कर चली जाती। न मालूम तू क्यों इसके साथ अनेक क्लेश भोगती हुई रहती है। दूती की ऐसी मीठी बोली ने भद्रा के चित्त पर पक्का असर डाल दिया। भोली भद्रा, दूती की बातों में आ गयी, वह दूती से कहने लगी—

बहिन! मैं क्या करूँ? स्वामी तो मुझे ऐसा ही मिला है। मेरे भाग्य में तो यही पति था, मुझे रूपवान पति मिलता कहाँ से? —ऐसा वह भद्रा का मुख भी कुछ म्लान हो गया।

भद्रा की ऐसी दशा देख दूती अति प्रसन्न हुई किन्तु अपनी प्रसन्नता प्रगट न कर, वह भद्रा को इस प्रकार समझाने लगी—

भद्रे बहिन! तू क्यों इतना व्यर्थ विषाद करती है। इसी नगरी में एक वसन्त नाम का क्षत्रिय पुरुष निवास करता है। वसन्त अति रूपवान, गुणवान एवं धनवान है। वह तेरे ऊपर मोहित भी है, तू उसके साथ आनन्द से भोगों को भोग। तुझ सरीखी रूपवती के लिये संसार में कोई चीज़ दुर्लभ नहीं।

दूती के ऐसे वचन सुन भद्रा के मुँह में तो पानी आ गया। उस मूर्खा ने यह तो समझा नहीं कि इस दुष्ट बर्ताव से क्या हानियाँ होंगी। वह शीघ्र ही वसन्त के घर जाने के लिये राजी हो गयी और अवसर पा किसी दिन वसन्त के घर चली भी गयी और उसके साथ भोग विलास करने शुरु कर दिये।

व्यसन का चस्का बुरा होता है। भद्रा को व्यसन का चस्का बुरा पड़ गया। वह अपने भोले पति को बातों में लगा प्रतिदिन वसन्त के घर जाने लगी। बसन्त पर अभिमान कर उसने अपने पति का अपमान करना भी प्रारम्भ कर दिया। अनेक प्रकार की कलह करना भी उसने घर में शुरु कर दी और अपने सामने किसी को वह बड़ा भी नहीं समझने लगी।

भद्रा का पति बलभद्र किसान था। कदाचित् भद्रा को कार्यवश खेत पर जाना पड़ा। दैव से मार्ग में भद्रा की भेंट मुनि गुणसागर से हो गयी। मुनि गुणसार को अति रूपवान, सूर्य के समान तेजस्वी, युवा, एवं अनेक गुणों के भण्डार देख भद्रा काम से व्याकुल हो गयी। काम के गाढ़ नशे में आकर उसको यह भी न सूझा कि यह कौन महात्मा है ? वह शीघ्र ही काम से व्याकुल हो मुनिराज के सामने बैठ गयी और कामजन्य विकारों को प्रकट करती हुई इस प्रकार कहने लगी—

साधो! यह तो आपका उत्तम रूप ? और यह अवस्था एवं सौन्दर्य ? आपको इस अवस्था में किसने दीक्षा की शिक्षा दे दीं ? इस समय आप क्यों यह शरीर सुखानेवाला तप कर रहे हैं ? इस समय तप करने से सिवाय शरीर सूखने के दूसरा कोई फायदा नहीं हो सकता। इस समय तो आपको इन्द्रिय सम्बन्धी भोग भोगने

चाहिए। जिस मनुष्य ने संसार में जन्म धारण कर भोगविलास नहीं किया, उसने कुछ भी नहीं किया।

मुने! यदि आप मोक्ष को जाने के लिये तप ही करना चाहते हैं तो कृपाकर वृद्ध अवस्था में करना। इस समय आपकी युवा उम्र है, आपका मुख चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एवं मनोहर है, आपका रूप भी अधिक उत्तम है, इसलिए आपकी सेवा में यही मेरी सविनय प्रार्थना है कि आप किसी रमणी के साथ उत्तमोत्तम भोग भोगें और आनन्दपूर्वक किसी नगर में निवास करें।

मुनिराज गुणसागर तो अवधिज्ञान के धारक थे। भला वे ऐसी निकृष्ट भद्रा सरीखी स्त्रियों की बातों में कब आने वाले थे? जिस समय मुनिराज ने भद्रा के वचन सुने-शीघ्र ही उन्होंने भद्रा के मन के भाव को पहिचान लिया एवं वे उसे आसन्न भव्या समझ, इस प्रकार उपदेश देने लगे—

बाले! तू व्यर्थ राग के उत्पन्न करनेवाले कामजन्य विकारों को मत कर। क्या इस प्रकार के दुष्ट विकारों से तू अपना परम पावन शीलव्रत नष्ट करना चाहती है? क्या तू इस बात को नहीं जानती कि शील नष्ट करने से किन-किन पापों की उत्पत्ति होती है? शील के न धारण करने से किन-किन घोर दु:खों का सामना करना पड़ता है? भद्रे! जो जीव अपने शीलरूपी भूषण की रक्षा नहीं करते, वे अनेक पापों का उपार्जन करते हैं, उन्हें नरक आदि दुर्गतियों में जाना पड़ता है एवं वहाँ पर कठिन से कठिन दु:ख भोगने पड़ते हैं तथा भद्रे! शील के न धारण करने से संसार में भयंकर वेदनाओं का सामना करना पड़ता है। कुशीली जीव अज्ञानी जीव कहे जाते हैं। उनके कुल नष्ट हो जाते हैं। चारों ओर उनकी अपकीर्ति फैल जाती

है और अपकीर्ति फैलने पर शोक सन्ताप आदि व्यथाएँ भी उन्हें सहनी पड़ती हैं।

इस समय यदि तू संसार में सुख चाहती है और तुझे रमणीरत्न बनने की अभिलाषा है तो तू शीघ्र ही इस खोटे कुशील का परित्याग कर दे, उत्तम शीलव्रत में ही अपनी बुद्धि स्थिर कर, अपने चंचल चित्त को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग में ला एवं अपने पवित्र पतिव्रत धर्म का पालन कर। बाले! जो स्त्रियाँ संसार में भले प्रकार अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा करती हैं, उनके लिये अति कठिन बात भी सर्वथा सरल हो जाती है। अधिक क्या कहा जाए, पतिव्रत धर्म पालन करनेवाली स्त्रियों का संसार भी सर्वथा छूट जाता है। उन्हें किसी प्रकार की मुसीबत का सामना नहीं करना पड़ता।

महामुनि गुणसागर के उपदेश का भद्रा के चित्त पर पूरा प्रभाव पड़ गया। कुछ समय पहले जो भद्रा का चित्त कुशील में फँसा हुआ था, वह शीलव्रत की ओर लहराने लगा। मुनिराज के वचन सुनने से भद्रा का चित्त मारे आनन्द के व्याप्त हो गया। शरीर में रोमांच खड़े हो गये, एवं गदगद कण्ठ से उसने मुनिराज से निवेदन किया।

प्रभो! मेरे चित्त की वृत्ति कुशील की ओर झुकी हुई है, यह बात आपको कैसे मालूम हो गयी? किसी ने आपसे कहा भी नहीं! कृपा कर इस दासी पर अनुग्रह कर शीघ्र बताइये।

भद्रा के ऐसे वचन सुन, मुनिराज ने उत्तर दिया—भद्रे! तेरे चारित्र के विषय में मुझसे किसी ने भी कुछ नहीं कहा किन्तु मेरी आत्मा के अन्दर ऐसा उत्तम ज्ञान विराजमान है, जिस ज्ञान के बल से मैंने तेरे मन का अभिप्राय समझ लिया है। ज्ञान की शक्ति अपूर्व है, इस बात में तुझे जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिए।

मुनिराज के ज्ञान की अपूर्व महिमा सुन भद्रा को अति आनन्द हुआ। मुनिराज की आज्ञानुसार जिस शील से देवेन्द्र, नरेन्द्र आदि उत्तमोत्तम पद प्राप्त होते हैं, वह शीलव्रत शीघ्र ही उसने धारण कर लिया और समस्त मुनियों में उत्तम, जीवों को कल्याण मार्ग का उपदेश देनेवाले, मुनिराज गुणसागर को नमस्कार कर वह शीघ्र ही अपने घर आ गयी।

उत्तम उपदेश का फल भी उत्तम ही होता है। वसन्त की बातों में फँसकर जो भद्रा ने वसन्त को अपना लिया था और अपने पति का अनादर करना प्रारम्भ कर दिया था, भद्रा की वह प्रकृति अब न रहीं। पाप से भयभीत हो भद्रा ने वसन्त का अब सर्वथा सम्बन्ध तोड़ दिया। उस दिन से वसन्त उसकी दृष्टि में काला भुजंग सरीखा झलकने लगा।

अब वह अपने पति की तन-मन से सेवा करने लगी। अपने स्वामी के साथ स्नेहपूर्वक बर्ताव करने लगी। भद्रा का जैनधर्म पर भी अगाध प्रेम हो गया। अपने सुख का महान कारण जैन धर्म ही उसे जान पड़ने लगा तथा जैन धर्म पर उसकी यहाँ तक गाढ़ भक्ति हो गयी कि उसने अपने पति को भी जैनी बना लिया एवं वे दोनों दम्पति आनन्दपूर्वक अयोध्यानगरी में रहने लगे।

भद्रा ने जिस दिन से शीलव्रत को धारण कर लिया, उस दिन से वह वसन्त के घर झाँकी तक नहीं। इस रीति से जब कई दिन बीत गये, वसन्त को बिना भद्रा के बड़ा दुःख हुआ। वह विचारने लगा—भद्रा! अब मेरे घर क्यों नहीं आती? जो वह कहती थी, सो ही मैं करता था। मैंने कोई उसका अपराध भी तो नहीं किया। एक क्षण ऐसा विचार कर उसने भद्रा के समीप एक दूती भेजी।

दूती के द्वारा वसन्त ने बहुत कुछ भद्रा को लोभ दिखाये। अनेक प्रकार के अनुनय भी किये, किन्तु भद्रा ने दूती की बात तक भी न सुनी। मौका पाकर वसन्त भी भद्रा के पास आया किन्तु भद्रा ने वसन्त को भी यह जवाब दे दिया कि मैं अब शीलव्रत धारण कर चुकी, अपने स्वामी को छोड़कर मैं परपुरुष की प्रतिज्ञा ले चुकी। अब मैं कदापि तेरे साथ विषयभोग नहीं कर सकती। भद्रा की यह बात सुन जब वसन्त उसे धमकी देने लगा और उसके साथ व्यभिचारार्थ कड़ाई करने लगा, तब भद्रा ने साफ शब्दों में यह जवाब दे दिया—रे वसन्त! तू पापी नीच नराधम व्रतहीन है। मेरे चाहे प्राण भी चले जाएँ। मैं अब तेरा मुँह तक न देखूँगी। अब तू मेरे लिये अभिलाषा छोड़, अपनी स्त्री में सन्तोष कर।

भद्रा को इस प्रकार अपने व्रत में दृढ़ देख वसन्त की कुछ भी पेश न चली। वह पागल सरीखा हो गया। वह मूर्ख विचारने लगा—भद्रा को यह व्रत किसने दिया? अब मैं भद्रा को अपनी आज्ञाकारिणी कैसे बनाऊँ? क्या इसे हठ से दासी बनाऊँ? या किसी मन्त्र से बनाऊँ? क्या करूँ?

पापी वसन्त ऐसा अधम विचार कर ही रहा था कि अचानक ही एक महाभीम नाम का मन्त्रवादी अयोध्या में आ पहुँचा। सारे नगर में मन्त्रवाद का हल्ला हो गया। वसन्त के कान तक भी यह बात पहुँची। मन्त्रवादी का आगमन सुन वसन्त शीघ्र ही उसके पास आया और भोजन आदि से वसन्त ने उसकी यथेष्ठ सेवा की।

जब कई दिन इसी प्रकार सेवा करते बीत गये और मन्त्रवादी को जब अपने ऊपर वसन्त ने प्रसन्न देखा तो उसने अपना सारा हाल

मन्त्रवादी को कह सुनाया और विनय से बहुरूपिणी विद्या के लिये याचना भी की।

वसन्त की मन्त्र के लिये प्रार्थना सुन एवं उसकी सेवा से सन्तुष्ट होकर मन्त्रवादी महाभीम ने उसे विधिपूर्वक मन्त्र दे दिया तथा मन्त्र लेकर वसन्त किसी वन में चला गया और उसे सिद्ध करने लगा। दैवयोग से अनेक दिन बाद मन्त्र सिद्ध हो गया। अब मन्त्रबल से वह छोटे-बड़े शरीर धारण करने लगा, एवं अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करनी भी उसने प्रारम्भ कर दीं।

कदाचित् उसके सिर पर फिर भद्रा का भूत सवार हो गया। किसी दिन वह अचानक ही मुर्गा का रूप धारण कर बलभद्र के घर के पास चिल्लाने लगा। मुर्गा की आवाज से यह समझ कि सबेरा हो गया, अपने पशुओं को लेकर बलभद्र तो अपने खेत की ओर रवाना हो गया और उस पापी वसन्त ने मुर्गा का रूप बदल शीघ्र ही बलभद्र का रूप धारण किया और धृष्टता पूर्वक बलभद्र के घर में घुस गया।

सुशीला भद्रा की दृष्टि नकली बलभद्र पर पड़ी, चाल-ढाल से उसे चट मालूम हो गया कि यह मेरा पति बलभद्र नहीं है। पश्चात् उसने गाली देना भी शुरु कर दी, किन्तु उस नकली बलभद्र ने कुछ भी परवाह न की। यह निर्लज्ज किवाड़ बन्द कर जबरन उसके घर में घुस पड़ा। नकली बलभद्र का इस प्रकार धृष्टतापूर्वक बर्ताव देख भद्रा चिल्लाने लगी।

नकली बलभद्र एवं भद्रा का झगड़ा भी बड़े जोर-शोर से होने लगा। झगड़े की आवाज सुन पास-पड़ोसी सब भद्रा के घर आकर

इकट्ठे हो गये। असली बलभद्र के कान तक भी यह बात पहुँची। वह भी दौड़ता–दौड़ता शीघ्र अपने घर आया और अपने समान दूसरा बलभद्र देख आपस में झगड़ा करने लगे।

दोनों बलभद्रों की चाल, ढाल, रूप, रंग देख पास–पड़ोसी मनुष्यों के होश उड़ गये। सबके सब दाँतों तले उंगली दबाने लगे, तथा अनेक उपाय करने पर भी उनको जरा भी इस बात का पता न लगा कि इन दोनों में असली बलभद्र कौन है ?

जब पुरवासी मनुष्यों से असली बलभद्र का फैसला न हो सका तो वे दोनों बलभद्रों को लेकर राजगृह में कुमार अभय की शरण में आये और उनके सामने सब समाचार निवेदन कर दोनों बलभद्रों को खड़ा कर दिया।

दोनों बलभद्रों की शक्ल, रूप, रंग एक–सा देख कुमार अभय भी चकराने लगे। असली बलभद्र के जानने के लिये उन्होंने अनेक उपाय किये, किन्तु जरा भी उन्हें असली बलभद्र का पता न लगा। अन्त में सोचते–सोचते उनके ध्यान में एक विचार आया। दोनों बलभद्रों को बुला उन्हें शीघ्र ही एक कोठे में बन्द करके भद्रा को सभा में बुलाकर एवं एक तुम्बी अपने सामने रखकर दोनों बलभद्रों से कहा—

सुनो भाई दोनों बलभद्रों ! तुम दोनों में से कोठे के छिद्र से न निकलकर जो इस तुम्बी के छिद्र से निकलेगा वही असली बलभद्र समझा जाएगा और उसे ही भद्रा मिलेगी।

कुमार की यह बात सुन असली बलभद्र को तो बड़ा दुःख हुआ। विश्वास हो गया कि भद्रा अब मुझे नहीं मिल सकती,

क्योंकि मैं तूम्बी के छेद से निकल नहीं सकता, किन्तु जो नकली बलभद्र था, कुमार के वचन से मारे हर्ष के उसका शरीर रोमांचित हो गया। उसने चट तूम्बी के छिद्र से निकल आनन्दपूर्वक भद्रा का हाथ पकड़ लिया।

नकली बलभद्र की यह दशा देख सभाभवन में बड़े जोर-शोर से हल्ला हो गया। सबके मुख से यही शब्द निकलने लगे कि यही नकली बलभद्र है। असली बलभद्र तो कोठरी के भीतर बैठा है, एवं अपनी विचित्र बुद्धि से कुमार अभय ने नकली बलभद्र को मार-पीटकर नगर से बाहर भगा दिया और असली बलभद्र को कोठे से बाहर निकालकर उसे भद्रा देकर अयोध्या जाने की आज्ञा दी।

इस प्रकार पक्षपातरहित न्याय करने से कुमार अभय की चारों ओर कीर्ति फैल गयी। उनकी न्याय-परायणता देख समस्त प्रजा मुक्तकण्ठ से तारीफ करने लगी एवं कुमार अभय आनन्द से राजगृह में रहने लगे।

किसी समय महाराज श्रेणिक की अँगूठी किसी कुएँ में गिर गयी। कुएँ में अंगूठी गिरी देख महाराज ने शीघ्र ही कुमार अभय को बुलाया और यह आज्ञा दी—

प्रिय कुमार! अंगूठी सूखे कुएँ में गिर गयी है, बिना किसी बाँस आदि की सहायता के शीघ्र अंगूठी निकाल कर लाओ।

महाराज की आज्ञा पाते ही कुमार शीघ्र ही कुएँ के पास गये। कहीं से गोबर मँगाकर कुमार ने कुएँ में गोबर डलवा दिया। जिस समय गोबर सूख गया, तब कुएँ को मुँह तक पानी से भरवा दिया। ज्यों ही बहता-बहता गोबर कुएँ के मुँह तक आया, गोबर में लिपटी

अंगूठी भी कुएँ के मुँह पर आ गयी, तथा उस अंगूठी को लेकर महाराज की सेवा में ला हाजिर की। कुमार का यह विचित्र चातुर्य देख महाराज अति प्रसन्न हुए।

कुमार का अद्‌भुत चातुर्य देख सब लोग कुमार के चातुर्य की प्रशंसा करने लगे। अनेक गुणों से शोभित कुमार अभय को चतुर जान महाराज श्रेणिक भी कुमार का पूरा-पूरा सम्मान करने लगे और उनको बात-बात में कुमार अभय की तारीफ करनी पड़ी। इस प्रकार अनेक प्रकार के नवीन-नवीन काम करने का कौतुहली, महाराज श्रेणिक आदि उत्तमोत्तम पुरुषों द्वारा मान्य, नीतिमार्ग पर चलनेवाला, समस्त दोषों से रहित, बृहस्पति के समान प्रजा को शिक्षा देनेवाला, अतिशय आनन्दयुक्त, अपने बुद्धिबल से अति कठिन कार्य को भी तुरन्त करनेवाला, सूर्य के समान तेजस्वी राज-लक्षणों से विराजमान युवराज अभयकुमार सबको आनन्द देने लगे।

संसार में जीवों को यदि सुख प्रदान करनेवाली है तो यह उत्तम बुद्धि ही है, क्योंकि इसी की कृपा से मनुष्य सबों का शिरोमणि बन जाता है। उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य का राजा भी पूरा-पूरा सम्मान और आदर करते हैं। बड़े-बड़े सज्जन पुरुष उसकी विनयभाव से सेवा करने लग जाते हैं तथा उत्तम बुद्धि की कृपा से अच्छे-अच्छे नीति आदि गुण भी उस मनुष्य में अपना स्थान बना लेते हैं।

इस प्रकार भविष्यत् काल में होनेवाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के भवान्तर के जीव महाराज श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार की उत्तम बुद्धि का वर्णन करनेवाला सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

आठवाँ सर्ग

महाराजा श्रेणिक का चेलना के साथ विवाह-वर्णन

अपने पवित्र ज्ञान से समस्त जीवों का अज्ञानान्धकार मिटानेवाले, निर्मल ज्ञान के दाता, मुनियों में उत्तम मुनि श्री उपाध्याय परमेष्ठी को अंग-उपांग सहित समस्त ध्यान की सिद्धि के लिये मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

उस समय अयोध्यापुरी में कोई भरत नाम का पुरुष निवास करता था, भरत चित्रकला में अति निपुण था। कदाचित् उसके मन में यह अभिलाषा हुई कि यद्यपि मैं अच्छी तरह चित्रकला जानता हूँ, किन्तु ऐसा कोई उपाय होना चाहिए कि लेखनी हाथ में लेते ही आपसे आप पट पर चित्र खिंच जावे, मुझे विशेष परिश्रम करना न पड़े। उस समय उसे और तो कोई तरकीब न सूझी, अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये उसने पद्मावती देवी की आराधना करनी शुरु कर दी। दैवयोग से कुछ दिन बाद देवी भरत पर प्रसन्न हो गई और उसने प्रत्यक्ष ही भरत से कहा—

भक्त भरत! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, जिस वर की तुझे इच्छा हो, माँग, मैं देने के लिये तैयार हूँ। देवी के ऐसे वचन सुन भरत अति प्रसन्न हुआ, और विनयभाव से उसने इस प्रकार देवी से निवेदन किया—

माता! यदि तू मुझ पर प्रसन्न है और मुझे वर देना चाहती है तो मुझे यही वर दे कि जिस समय मैं लेखनी हाथ में लेकर बैठूँ, उस समय स्वत: ही मनोहर चित्र पट पर अंकित हो जाए, मुझे किसी प्रकार का परिश्रम न उठाना पड़े।

देवी ने भरत का निवेदन स्वीकार किया, तथा भरत को इस प्रकार अभिलाषित वर दे, देवी तो अन्तर्लीन हो गयी और भरत अपने वर की परीक्षार्थ किसी एकान्त स्थान में बैठ गया। ज्यों ही उसने पट सामने रख लेखनी हाथ में ली, त्यों ही बिना परिश्रम के आपसे आप पट पर चित्र खिंच गया। चित्र को अनायास पट पर अंकित देख भरत को अति प्रसन्नता हुई।

अपने वर को सिद्ध समझ वह अयोध्या से निकल पड़ा एवं अनेक देश, पुर, ग्रामों में अपने चित्रकौशल को दिखाता हुआ, कठिन चित्रों को अनायास खींचता हुआ, अपने चित्रकर्म चातुर्य से बड़े-बड़े राजाओं को भी मोहित करता हुआ वह भरत आनन्दपूर्वक समस्त पृथ्वी मण्डल पर घूमने लगा।

अनेक पुर एवं ग्रामों से शोभित, वन-उपवनों से मण्डित भाँति-भाँति के धान्यों से विराजित एक सिन्धुदेश है। सिन्धुदेश में अनुपम राजधानी विलासपुरी है। विलासपुरी के स्वामी नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करनेवाले अनेक विद्वानों से मण्डित महाराज चेटक थे। महाराज चेटक की पटरानी का नाम सुभद्रा था जो कि मृगनयनी चन्द्रमुखी, कृशांगी और कठिन एवं उन्नत स्तनों को धारण करनेवाली थी। राजा चेटक की पटरानी सुभद्रा से उत्पन्न (1) मनोहरा, (2) मृगावती, (3) वसुप्रभा, (4) प्रभावती, (5) ज्येष्ठा, (6) चेलना व (7) चन्दना—ये सात कन्यायें थीं। ये सातों ही कन्या अति मनोहर थीं, भले प्रकार जैनधर्म की भक्त थीं, स्त्रियों के प्रधान-प्रधान गुणों से मण्डित एवं उत्तम थीं। सातों कन्याओं के रूप सौन्दर्य देख राजा चेटक एवं महाराणी सुभद्रा अति प्रसन्न रहते थे। कन्यायें भी भाँति-भाँति के कलाकौशलों से पिता-माता

को सदा सन्तुष्ट करती रहती थीं।

कदाचित् भ्रमण करता-करता चित्रकार भरत इसी विशाल नगरी में जा पहुँचा। उसने सातों कन्याओं का शीघ्र ही चित्र अंकित किया एवं उसे महाराज चेटक की सभा में जा हाजिर किया और महाराज के पूछे जाने पर उसने अपना परिचय भी दे दिया।

अति चतुरता से पट पर अंकित कन्याओं का चित्र देख राजा चेटक अति प्रसन्न हुए। भरत की चित्रविषयक कारीगरी देख महाराज बार-बार भरत की प्रशंसा करने लगे और उचित परितोषिक दे राजा चेटक ने भरत को पूर्णतया सम्मानित भी किया।

किसी समय महाराज की प्रसन्नता के लिये भरत ने उन सातों कन्याओं का चित्र राज द्वार में अंकित कर दिया और उसे भाँति-भाँति के रंगों से रंगीन कर अति मनोहर बना दिया। चित्र की सुघड़ाई देख समस्त नगरनिवासी उस चित्र को देखने आने लगे और उन सात कन्याओं का वैसा ही चित्र नगरनिवासियों ने अपने-अपने द्वारों पर भी खींच लिया एवं कन्याओं के चित्र से अपने को धन्य समझने लगे।

संसार में जो लोग सात माता कहकर पुकारते हैं और उनकी भक्तिभाव से पूजा करते हैं, सो अन्य कोई सात माता नहीं, इन्हीं कन्याओं को बिना समझे सात माता मान रखा है। यह सात माता का मिथ्यात्व उसी समय से जारी हुआ है। संसार में अब भी कई स्थानों पर यह मिथ्यात्व प्रचलित है।

सातों कन्याओं में राजा चेटक की चार कन्याएँ विवाहिता थीं। प्रथम कन्या का विवाह नाथवंशीय कुण्डलपुर के स्वामी महाराजा

सिद्धार्थ के साथ हुआ था। द्वितीय कन्या मृगावती नाथवंशीय वत्सदेश में कौशांबीपुरी के स्वामी महाराज नाथ के साथ विवाही गयी थी तथा तृतीय कन्या जो कि वसुप्रभा थी, उसका विवाह राजा चेटक ने सूर्यवंशीय दर्शाण देश में हेरकच्छपुर के स्वामी राजा दशरथ को दी थी एवं चतुर्थ कन्या प्रभावती का विवाह कच्छदेश में रोरुकपुर के स्वामी महाराज महातुर के साथ हो गया था। बाकी अभी तीन कन्याएँ कुमारी ही थीं।

कदाचित् ज्येष्ठा को आदि ले तीनों कन्याएँ चित्रकार भरत के पास गई और उन सबमें बड़ी कुमारी ज्येष्ठा ने हंसी-हंसी में चित्रकार से कहा—भरत! हम जब तुझे उत्तम चित्रकार समझें कि कुमारी चेतना का जैसा रूप है, वैसा ही इसका चित्र खींचकर तू हमें दिखावे।

कुमारी चेलना का वस्त्ररहित चित्र खींचना भरत के लिये कौन बड़ी बात थी? ज्यों ही उसने ज्येष्ठा के वचन सुने, चट अपने सामने पट रखकर हाथ में लेखनी ले ली और पद्मावती देवी के प्रसाद से जैसा कुमारी चेलना का रूप था तथा जो-जो उसके गुप्त अंगों में तिल आदि चिह्न थे, वे ज्यों के त्यों चित्र में आ गये तथा चौखटा वगैरह से उस चित्र को अति मनोहर बनाकर, शीघ्र ही उसने ज्येष्ठा को दे दिया।

कुमारी चेलना के चित्र को लेकर प्रथम तो ज्येष्ठा अति प्रसन्न हुई किन्तु ज्यों ही उसकी दृष्टि गुप्तस्थानों रहे हुए तिल आदि चिह्नों पर पड़ी, वह एकदम आश्चर्यसागर में डूब गयी। अब बारबार उसके मन में ये संकल्प-विकल्प उठने लगे कि बाह्य अंगों के

चिह्नों की तो बात दूसरी है, इस चित्रकार को गुह्य अंगों के चिह्नों का कैसे पता लग गया ? न मालूम यह चित्रकार कैसा है ?

इधर ज्येष्ठा तो ऐसा विचार कर रही थी, उधर किसी जासूस को भी इस बात का पता लग गया। वह शीघ्र ही भागता-भागता महाराज के पास गया और चित्रकार की सारी बातें महाराज चेटक से जाकर कहीं।

जासूस के मुख से यह वृत्तान्त सुन राजा चेटक अति कुपित हो गये। कुछ समय पहिले जो राजा चेटक चित्रकार भरत को उत्तम समझते थे, वही बेचारा चित्रकार जासूस के वचनों से उन्हें काला भुजंग सरीखा जान पड़ने लगा।

वे विचारने लगे—बड़े खेद की बात है कि इस नालायक चित्रकार ने कुमारी चेलना का गुप्त स्थान में स्थित चिह्न कैसे जान लिया ? मैं नहीं जान सकता, यह क्या बात हो गयी अथवा ठीक ही है—स्त्रियों का चरित्र सर्वथा विचित्र है। बड़े-बड़े देव भी इसका पता नहीं लगा सते। अखण्ड ज्ञान के धारक योगी भी स्त्रियों के चरित्र के पते लगाने में हैरान हैं, तब न कुछ ज्ञान के धारक हम कैसे उनके चरित्र की सीमा पा सकते हैं ? हाय ! मालूम होता है इस दुष्ट चित्रकार ने भोलीभाली कन्या चेलना के साथ कोई अनुचित काम कर डाला। कुल को कलंकित करनेवाले इस दुष्ट भरत को अब शीघ्र ही सिन्धु देश से निकाल देना चाहिए। अब क्षणभर भी इसे विशालापुरी में रहने देना ठीक नहीं।

इधर महाराज तो चित्रकार के विषय में यह विचार करने लगे, उधर चित्रकार को कहीं से यह पता लग गया कि महाराज चेटक मुझ पर कुपित हो गये हैं, मेरा पूरा-पूरा अपमान करना चाहते हैं,

वह शीघ्र ही मारे भय के अपना झोली–डण्डा ले वहाँ से धर भागा और कुछ दिन मंजिल दर मंजिल तय कर राजगृह नगर आ गया।

राजगृह नगर में आकर उसने फिर से चेलना का चित्रपट बनाया और बड़े विनय से महाराज श्रेणिक की सभा में जाकर उसे भेंट कर दिया।

महाराज उस समय मगधदेश के अनेक बड़े–बड़े पुरुषों के साथ सिंहासन पर विराजमान थे। उनके चारों ओर कामिनी चमर ढोल रही थीं, बन्दीजन उनका यशोगान कर रहे थे। ज्यों ही महाराज की दृष्टि चेलना के चित्र पर पड़ी, एकदम महाराज चकित रह गये। चेलना की सुव्यक्त तस्वीर देख उनके मन में अनेक प्रकार के संकल्प–विकल्प उठने लगे। वे विचारने लगे—

इस चेलना का केशवेश ऐसा जान पड़ता है, मानों कामी पुरुषों के लिये यह अद्‌भुत जाल है अथवा यों कहिये चूड़ामणियुक्त यह केशवेश नहीं है किन्तु उत्तम रत्नयुक्त, समस्त जीवों को भय करनेवाला यह काला नाग है एवं जैसा चन्द्रमा युक्त आकाश शोभित होता है, उसी प्रकार गांगेय तिलकयुक्त चेलना का यह ललाट है और यह जो भ्रूमंग से इसके ललाट पर ओंकार बन गया है, वह ओंकार नहीं है, जगद्विजयी कामदेव का बाण है तथा गायन जिस प्रकार मृग को परवश बना देता है; उसी प्रकार इसका कटाक्षविक्षेप कामीजनों को परवश करनेवाला है।

अहा! इस चेलना के कानों में जो ये दो मनोहर कुण्डल हैं, सो कुण्डल नहीं किन्तु इसी सेवार्थ दो सूर्य चन्द्र हैं। मृगनयनी इस चेलना के ये कमल के समान फूले हुए नेत्र ऐसे जान पड़ते हैं, मानो कामीजनों को वश करनेवाले मन्त्र हैं। इस मृगाक्षी चेलना

का मुख तो सर्वथा आकाश ही जान पड़ता है क्योंकि आकाश में जैसी बादल की लालई, चन्द्र आदि की किरणें एवं मेघ की ध्वनि रहती है, वैसी ही इसके मुख में पान की तो ललाई है। दाँतों की किरण चन्द्रकिरण हैं और इसकी मधुर ध्वनि मेघध्वनि मालूम पड़ती है।

इसकी यह तीन रेखाओं से शोभित, सोने की रंग की मनोहर ग्रीवा है। मालूम होता है कोयल ने जो-जो कृष्णत्व धारण किया है और पुर छोड़ वन में बसी है, सो इस चेलना के कण्ठ के शब्द श्रवण से ही ऐसा किया है। इस चेलना के दो स्तन ऐसे जान पड़ते हैं मानो वृक्षस्थल रूपी वन में दो अति मनोहर पर्वत ही हैं। मालूम होता है नहीं तो रोमावलीरूप तालाब में कामदेव रूपी हस्ती गोता लगाये बैठा है नहीं तो रोमावलीरूपी भ्रमर पंक्ति कहाँ से आयी?

इसके कमल के समान कोमल कर अति मनोहर दीख पड़ते हैं। कटिभाग भी इसका अधिक पतला है। ये इसके कोमल चरणों में स्थित नुपुर इसके चरणों की विचित्र ही शोभा बना रहे हैं! नहीं मालूम होता ऐसी अतिशय शोभायुक्त यह चेलना क्या कोई किन्नरी हैं या विद्याधरी है? किंवा रोहिणी है? अथवा कमल निवासिनी कमला है? वा यह इन्द्राणी अथवा कोई मनोहर देवी है अथवा इतनी अधिक रूपवती यह नागकन्या वा कामदेव की प्रिया रति है? अथवा ऐसी तेजस्विनी यह सूर्य की स्त्री है। इस प्रकार कुछ समय अपने मन में भले प्रकार विचार कर चेलना के रूप पर मोहित होकर, महाराज ने शीघ्र ही भरत चित्रकार को अपने पास बुलाया और उससे पूछा—

कहो भाई! यह अति सुन्दरी चेलना किस राजा की तो पुत्री

है ? किस देश एवं पुर का पालक वह राजा है। क्या उसका नाम है ? यह कन्या हमें मिल सकती है या नहीं ? यदि मिल सकती है तो किस उपाय से मिल सकती है ? ये सब बातें स्पष्ट रीति से शीघ्र मुझे कहो।

महाराज श्रेणिक के ऐसे लालसा भरे वचन सुन भरत ने उत्तर दिया—

कृपानाथ! यह कन्या राजा चेटक की है, जो सिन्धु देश में विशालापुरी का पालन करनेवाला है। यह कन्या आपको मिल तो सकती है किन्तु राजा चेटक का प्रण है कि वह सिवाय जैनी के अपनी कन्या दूसरे राजा को नहीं देता। चेटक जैन धर्म का परम भक्त है, इसलिए यदि आप इस कन्या को लेना चाहते हैं तो आप उसके अनुकूल ही उपाय करें।

भरत के ऐसे वचन सुन महाराज, विचार-सागर में गोता मारने लगे। वे सोचने लगे—यदि राजा चेटक का यह प्रण है कि जैन राजा के अतिरिक्त दूसरे को कन्या न देना तो यह कन्या हमें मिलना कठिन है, क्योंकि हम जैन नहीं।

यदि युद्धमार्ग से इसके साथ जबरन विवाह किया जाए, सो भी सर्वथा अनुचित एवं नीति विरुद्ध है और विवाह इसके साथ करना जरूरी है, क्योंकि ऐसी सुन्दरी स्त्री दूसरी जगह मिलनेवाली नहीं किन्तु किस उपाय से कन्या मिलेगी, यह कुछ ध्यान में नहीं आता। ऐसा अपने मन में विचार करते-करते महाराज बेहोश हो गये। चेलना बिना समस्त जगत उन्हें अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। यहाँ तक चेलना की प्राप्ति का कोई उपाय न समझ उन्होंने अपना मस्तक तक भी धुन डाला!

महाराज को इस प्रकार चिन्ता-सागर में मग्न एवं दु:खित सुन कुमार अभय उनके पास आये। महाराज की विचित्र दशा देख कुमार अभय भी चकित रह गये। कुछ समय बाद उन्होंने महाराज से नम्रतापूर्वक निवेदन किया—

पूज्य पिता! मैं आपका चित्त चिन्ता से अधिक व्यथित देख रहा हूँ। मुझे चिन्ता का कारण कोई भी नजर नहीं आता। पूज्यपाद! प्रजा की ओर से आपको चिन्ता हो नहीं सकती, क्योंकि प्रजा आपके अधीन और भले प्रकार आज्ञा पालन करनेवाली है। कोषबल एवं सैन्यबल भी आपको चिन्तित नहीं बना सकता क्योंकि न आपके खजाना कम है और न सेना ही। किसी शत्रु के लिये भी चिन्ता करना, आपको अनुचित है क्योंकि आपका कोई भी शत्रु नजर नहीं आता, शत्रु भी मित्र हो रहे हैं।

पूज्यवर! आपकी स्त्रियाँ भी एक से एक उत्तम हैं। पुत्र आपकी आज्ञा के भले प्रकार पालक और दास हैं। इसलिए स्त्री-पुत्रों की ओर से भी आपका चित्त चिन्तित नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त और कोई चिन्ता का कारण प्रतीत नहीं होता, फिर आप क्यों ऐसे दु:खित हो रहे हैं। कृपाकर शीघ्र ही अपनी चिन्ता का कारण मुझे कहें। मैं भी यथासाध्य उसके दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

कुमार अभय के ऐसे विनय भरे वचन सुन प्रथम तो महाराज ने कुछ भी जवाब न दिया। वे सर्वथा चुपकी साध गये, किन्तु जब उन्होंने कुमार का आग्रह विशेष देखा तब वे कहने —

प्यारे पुत्र! चित्रकार भरत ने मुझे चेलना का यह चित्र दिया है। जिस समय से मैंने चेलना की तस्वीर देखी है, मेरा चित्त अति चंचल हो गया है। इसके बिना यह विशाल राज्य भी मुझे जीर्णतृण

–सरीखा जान पड़ रहा है। इसके पिता की यह कड़ी प्रतिज्ञा है कि सिवाय जैन राजा के दूसरे को कन्या न देना, इसलिए इसकी प्राप्ति मुझे अति कठिन जान पड़ती है। अब इस कन्या की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए, बिना इसके, मेरा सुखी होना कठिन है।

पिता के ऐसे वचन सुन कुमार ने कहा—माननीय पिता! इस जरा सी बात के लिये आप इतने अधीर न हों। मैं अभी इसके लिये उपाय करता हूँ, यह कौन बड़ी बात है! महाराज को इस प्रकार आश्वासन दे कुमार ने शीघ्र ही पुर के बड़े–बड़े जैनी सेठ बुलाये और उनसे अपने साथ चलने के लिये कहा। कुमार की आज्ञानुसार वे सब कुमार के साथ चलने के लिये राजी भी हो गये।

जब कुमार ने यह देखा कि सब सेठ मेरे साथ चलने के लिये तैयार हैं, उन्होंने शीघ्र ही महाराज श्रेणिक से जाने के लिये आज्ञा माँगी तथा हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि जवाहरात और अन्य–अन्य उपयोगी पदार्थ लेकर, एवं समस्त सेठों के मुखिया सेठ बनकर कुमार अभय ने शीघ्र ही सिन्धुदेश की ओर प्रयाण कर दिया।

मायाचारी संसार में विचित्र पदार्थ हैं। जिस मनुष्य पर इसकी कृपा हो जाती है, उसके लिये संसार में बड़ा से बड़ा अहित करना भी सुलभ हो जाता है। मायाचारी निर्भय हो एकदम अनर्थ कर बैठता है। कुमार ने ज्यों ही राजगृह नगर छोड़ा, माया के वे भी बड़े भारी सेवक हो गये। मार्ग में जिस नगर को वे बड़ा नगर देखें, फौरन वहाँ पर ठहर जावें और अन्य सेठों के साथ कुमार भले प्रकार भगवान की पूजा करें एवं त्रिकाल सामायिक और पंच परमेष्ठी स्तोत्र का पाठ भी करें। क्या मजाल थी जो कोई जरा भी भेद जान जाए!

इस प्रकार समस्त पृथ्वी मण्डल पर अपने जैनत्व को प्रसिद्ध

करते हुए कुमार कुछ दिन बाद विशालानगरी में जा पहुँचे और वहाँ के किसी बाग में ठहर कर खूब जोर शोर से जिनेन्द्र भगवान के पूजा महात्म्य को प्रकट करने लगे।

कुछ समय बाग में आरामकर कुमार ने उत्तमोत्तम रत्नों को चुना और कुछ जैन सेठों को लेकर वे शीघ्र ही राजा चेटक की सभा में गये। महाराज चेटक की सभा में प्रवेश कर कुमार ने राजा को विनयभाव से नमस्कार किया तथा उनके सामने भेंट रखकर, उनके साथ मधुर-मधुर वचनालाप कर अपने को जैनी प्रकट करते हुए कुमार ने प्रार्थना की—

राजाधिराज! हम लोग जौहरी बच्चे हैं। अनेक देशों में भ्रमण करते-करते यहाँ आ पहुँचे हैं। हमारी इच्छा है कि हम इस मनोहर नगर में कुछ दिन ठहरें। हमारे पास मकान का कोई प्रबन्ध नहीं, कृपा कर आप इस राजमन्दिर के पास हमें किसी मकान में ठहरने के लिये आज्ञा दें।

कुमार का ऐसा अद्भुत वचनालाप एवं विनय व्यवहार देख राजा चेटक अति प्रसन्न हुए। उन्होंने बिना सोचे समझे ही कुमार को राजमन्दिर के पास रहने की आज्ञा दे दी और कुमार आदि का हृदय से ज्यादा सम्मान किया।

अब क्या था! राजा की आज्ञा पाते ही कुमार ने शीघ्र ही अपना सामान राजमन्दिर के समीप किसी महल में मँगा लिया एवं उस मकान में मनोहर चैत्यालय बनाकर आनन्दपूर्वक बड़े समारोह से जिन भगवान की पूजा करनी आरम्भ कर दी। कभी तो कुमार बड़े-बड़े मनोहर स्तोत्रों में भगवान की स्तुति करने लगे और कभी उन सेठों के साथ जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते ऐसा

आनन्द आ गया कि वे बनावटी तौर से भगवान के सामने नृत्य भी करने लगे और कभी उत्तमोत्तम शब्द करनेवाले बाजे बजाना भी उन्होंने प्रारम्भ कर दिये एवं कभी कुमार त्रेसठशलाका पुरुषों के चरित्र वर्णन करनेवाले पुराण वांचने लगे। जिस समय ये समस्त, भगवान की पूजा-स्तुति आदि कार्य करते थे, बराबर उनकी आवाज रनवास में जाती थी, राजमन्दिर की स्त्रियाँ साफ रीति से इनके स्तोत्र आदि को सुनती थीं और मन ही मन इनकी भक्ति की अधिक तारीफ करती थीं।

किसी समय महाराज चेटक की ज्येष्ठा आदि पुत्रियों के मन में इस बात की इच्छा हुई कि चलो इनको जाकर देखें। ये बड़े भक्त जान पड़ते हैं। प्रतिदिन भावभक्ति से भगवान की पूजा करते हैं। ऐसा दृढ़ निश्चय कर वे अपनी सखियों के साथ किसी दिन कुमार अभय द्वारा बनाये हुए चैत्याल्य में गयीं और वहाँ पर चँदवा चाँदनी झालर, घण्टा आदि-आदि पदार्थों से शोभित चैत्यालय देख अति प्रसन्न हुईं तथा कुमार आदि को भगवान की भक्ति में तत्पर देख कहने लगीं—

आप लोग श्री जिनदेव की भक्तिभाव से पूजन एवं स्तुति करते हैं, इसलिए आप धन्य हैं। इस पृथ्वीतल पर आप लोगों के समान न तो कोई भक्त दीख पड़ता और न ज्ञानवान एवं स्वरूपवान भी दीख पड़ता है। कृपा कर आप कहैं—कौन तो आपका देश है ? कौन उस देश का राजा है ? वह किस धर्म का पालन करनेवाला है ? क्या उसकी वय है ? कैसी उसकी सौभाग्य विभूति है ? एवं कौन-कौन गुण उत्तमतया मौजूद हैं। राजकन्याओं के मुख से ऐसे वचन सुन कुमार अभय ने मधुर वचन में उत्तर दिया—

राजकन्याओं! यदि आपको हमारा सविस्तार हाल जानने की इच्छा है तो आप ध्यानपूर्वक सुनें, मैं कहता हूँ। अनेक प्रकार के ग्राम पुर एवं बाग-बगीचों से शोभित, ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिरों से व्याप्त, असंख्यात मुनि एवं यतियों का अनुपम विहार स्थान, देश तो हमारा मगधदेश है।

मगधदेश में एक राजगृह नगर है, जो राजगृह नगर बड़े-बड़े सुवर्णमय कलशों से शोभित; अपनी ऊँचाई से आकाश को स्पर्श करनेवाले, सूर्य के समान देदीप्यमान अनेक धनिकों के मन्दिर एवं जिनमन्दिर से व्याप्त है। और जहाँ की भूमि भाँति-भाँति के फलों से मनुष्यों के चित्त सदा आनन्दित करती रहती है। उस राजगृह नगर के हम रहनेवाले हैं। राजगृह नगर के स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजा पालन करनेवाले हैं, वे महाराज श्रेणिक हैं।

राजा श्रेणिक जैनधर्म के परम भक्त हैं, अभी उनकी अवस्था छोटी है एवं अनेक गुणों के भण्डार हैं।

राजकन्याओं! हम लोग व्यापारी हैं, छोटी सी उम्र में हम चारों ओर भूमण्डल घूम चुके। हर एक कला में नैपुण्य रखते हैं। हमने अनेक राजाओं को देखा किन्तु जैसी जिनेन्द्र की भक्ति, रूप, गुण, तेज, महाराज श्रेणिक में विद्यमान है, वैसा कहीं पर नहीं क्योंकि ऐसा तो उनका प्रताप है कि जितने भी उनके शत्रु थे, सब अपने मनोहर-मनोहर नगरों को छोड़कर वन में रहने लगे।

कोषदल भी जैसा महाराज श्रेणिक का है, शायद ही किसी का होगा। हाथी, घोड़े, पयादे आदि भी उनके समान किसी के भी नहीं। अब हम कहाँ तक कहें। धर्मात्मा गुणी प्रतापी जो कुछ हैं, सो महाराज श्रेणिक हैं।

कुमार के मुख से महाराज श्रेणिक को ऐसा उत्तम वर्णन सुन ज्येष्ठा आदि समस्त कन्यायें अति प्रसन्न हुईं। अब महाराज श्रेणिक के साथ विवाह करने के लिये प्रत्येक का जी ललचाने लगा। कुमार की तारीफ से कन्याओं को महाराज श्रेणिक के गुणों से परतन्त्र बना दिया। अब वे चुपचाप न रह सकीं। उन्होंने शीघ्र ही विनयपूर्वक कुमार से कहा—

प्रिय वणिक सरदार! ऐसे उत्तम वर की हमें किस रीति से प्राप्ति हो? न जाने हमारे भाग्य से इस जन्म में हमारा कौन वर होगा?

श्रेष्ठिवर्ग! यदि किसी रीति से आप वहाँ हमें ले चलें तो मगधेश हमारे पति हो सकते हैं, दूसरी रीति से उनका पति होना असम्भव है, क्योंकि कहाँ तो, महाराज श्रेणिक, और हम कहाँ? कृपा कर आप कोई ऐसी युक्ति सोचिये जिसमें मगधेश ही हमारे स्वामी हों। याद रखिये, जब तक महाराज श्रेणिक हमें न मिलेंगे, तब तक न तो हम संसार में सुखी रह सकेंगीं और न हमें निद्रा ही आवेगी। विशेष कहाँ तक कहा जाए? महाराज श्रेणिक के वियोग में अब हमें संसार दुःखमय ही प्रतीत होने लगेगा।

कन्याओं के ऐसे लालसा भरे वचन सुन कुमार अति प्रसन्न हुए। अपने कार्य की सिद्धि जान मारे हर्ष के उनका शरीर रोमांचित हो गया। कन्याओं को आश्वासन दे शीघ्र ही उन्हें वहाँ से चम्पत किया और अपने महल से राजमन्दिर तक कुमार ने शीघ्र ही एक सुरंग तैयार कराने की आज्ञा दे दी।

कुछ दिन बाद सुरंग तैयार हो गयी। कुमार ने सुरंग के भीतर अपने महल से राजमहल तक एक रस्सी बँधवा दी और गुप्त रीति से कन्याओं के पास भी यह समाचार भेज दिया।

कुमार की यह युक्ति देख कन्यायें अति प्रसन्न हुईं। किसी समय अवसर पाकर उन तीनों कन्याओं ने सुरंग से जाने का पूरा-पूरा इरादा कर लिया और वे सुरंग के पास आ गईं किन्तु ज्यों ही तीनों सुरंग में घुसीं, सुरंग में अन्धेरा देख ज्येष्ठा और चन्दना तो एकदम घबड़ा गयीं। उन्होंने सोचा—हमें इस मार्ग से जाना योग्य नहीं। क्योंकि प्रथम तो इसमें गाढ़ अन्धकार है, इसलिए जाना कठिन है, द्वितीय यदि हमारे पिता सुनेंगे तो हम पर अधिक नाराज होंगे, इसलिए ज्येष्ठा तो अपनी मुद्रिका का बहाना कर वहाँ से लौट आयी और चन्दना हार का बहाना कर घर लौटी। अकेली बेचारी चेलना रह गयी, उसको कुमार ने शीघ्र ही खींच लिया और उसे रथ में बैठाकर तत्काल राजगृहनगर की ओर प्रयाण कर दिया।

विशलानगरी से जब रथ कुछ दूर निकल आया, कुमारी चेलना को अपने माता-पिता की याद आयी। वह उनकी याद कर रुदन करने लगी किन्तु कुमार अभय ने उसे समझा दिया, जिससे उसका रुदन शान्त हो गया एवं वे समस्त महानुभाव कुछ दिन बाद आनन्दपूर्वक मगधदेश में आ पहुँचे।

किसी दूत के मुख से महाराज को यह पता लगा कि कुमार आ रहे हैं, उनके साथ कुमारी चेलना भी है, शीघ्र ही बड़ी विभूति से वे कुमार के सामने आये। कुमार के मुख से उन्होंने सारा वृत्तान्त सुना, कुमार को छाती से लगा महाराज अति प्रसन्न हुए।

कुमार के साथ जो अन्यान्य सज्जन थे, उनके साथ भी महाराज ने अधिक हित दर्शाया। जिस समय मृगनयनी चन्द्रवदनी कुमारी चेलना पर महाराज की दृष्टि गयी तो उस समय तो महाराज के हर्ष का पारावार न रहा। दरिद्री पुरुष जैसे निधि को देख एक विचित्र

आनन्दानुभव करने लगता है, चेलना को देख महाराज की भी उस समय वैसी ही दशा हो गयी।

इस प्रकार कुछ समय वार्तालाप कर सभी ने राजगृहनगर में प्रवेश किया। महाराज की आज्ञानुसार कुमारी चेलना सेठ इन्द्रदत्त के घर उतारी गयीं। किसी दिन शुभ मुहूर्त एवं लग्न में महाराज का विवाह हो गया। विवाह के समय समस्त दिशाओं को बधिर करनेवाले बाजे बजने लगे। बन्दीजन महाराज की उत्तमोत्तम पद्यों में स्तुति करने लगे।

महाराज के विवाह से नगर-निवासियों को अति प्रसन्नता हुई। चेलना के विवाह से महाराज ने भी अपने जन्म को सफल समझा। विवाह के बाद महाराज ने बड़े गाजे-बाजे के साथ रानी चेलना को पटरानी का पद दिया एवं राजमन्दिर में किसी उत्तम मकान में रानी चेलना को ठहराकर प्रीतिपूर्वक महाराज उसके साथ भोग भोगने लगे।

कभी तो महाराज को चेलना के मुख से कथा कौतूहल सुन परम सन्तोष होने लगा। कभी महाराज को रानी चेलना की हंसिनी के समान गति एवं चन्द्र के समान मुख देख अति प्रसन्नता हुई। कभी महाराज चेलना के हास्योत्पन्न सुख से सुखी होने लगे। कभी कभी महाराज को रतिजन्य सुख सुखी करने लगा और कभी चेलना के प्रति अंग की सुघड़ाई महाराज को सुखी करने लगी।

जिस समय राजा-रानी पास में बैठते थे, उस समय इनमें और इन्द्र-इन्द्राणी में कुछ भी भेद देखने में नहीं आता था। ये आनन्दपूर्वक इन्द्र-इन्द्राणी के समान ही भोग विलास करते थे।

रानी चेलना एवं राजा श्रेणिक के शरीर ही भिन्न थे, किन्तु मन

उनका एक ही था, लोग ऐसे आपसी घनिष्ट प्रेम देख दोनों को सुख की जोड़ी कहते थे और बराबर दोनों के पुण्यफल की प्रशंसा करते थे।

भाग्य की महिमा अनुपम है। देखो, कहाँ राजा चेटक की पुत्री चेलना और कहाँ जिनधर्म रहित महाराज श्रेणिक? कहाँ तो सिन्धुदेश में विशालापुरी और कहाँ राजगृह नगर? तथा कहाँ तो कुमार अभय द्वारा चेलना का हरण और कहाँ महाराज श्रेणिक के साथ संयोग?

इसलिए मनुष्य को अपने भाग्य का भी अवश्य भरोसा रखना चाहिए क्योंकि भाग्य में पूर्णतया फल एवं अफल देने की शक्ति मौजूद है। जीवों को शुभ भाग्य के उदय से परमोत्तम सुख मिलते हैं और दुर्भाग्य के उदय से उन्हें दुःखों का सामना करना पड़ता है – नरकादि गतियों में जाना पड़ता है।

इस प्रकार भविष्यत् काल में होनेवाले तीर्थंकर पद्मनाभ के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में चेलना के साथ विवाह वर्णन करनेवाला आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

नववाँ सर्ग

राजा श्रेणिक को मुनिराज का समागम

कृतकृत्य—समस्त कर्मों से रहित होने के कारण परम पूजनीक, सम्यग्दर्शनादि तीनों रत्नत्रय से भूषित श्री सिद्ध भगवान हमारी रक्षा करें।

इसके अनन्तर रानी चेलना आनन्दपूर्वक महाराज श्रेणिक के साथ भोग भोग रही थी। अचानक ही जब उसने यह देखा कि महाराज श्रेणिक का घर परम पवित्र जैनधर्म से रहित है। महाराज के घर में हिंसा को पुष्ट करनेवाले, तीन मूढ़ता सहित, ज्ञान, पूजा आदि आठ अभिमान युक्त, एवं उभय लोक में दु:ख देनेवाले बौद्धधर्म का अधिकतर प्रचार है, तो उसे अति दु:ख हुआ। वह सोचने लगी—

हाय! पुत्र अभयकुमार ने बुरा किया। मेरे नगर में छल से जैनधर्म का वैभव दिखा मुझ भोलीभाली को ठग लिया। क्योंकि जिस घर में श्री जिनधर्म की भले प्रकार प्रवृत्ति है, उनके गुणों का पूर्णतया सत्कार है, वास्तव में वही घर उत्तम घर है, किन्तु जहाँ जिनधर्म की प्रवृत्ति नहीं है, वह घर कदापि उत्तम नहीं हो सकता। वह मानिन्द पक्षियों के घोंसले के समान हैं।

यदि मैं महाराज श्रेणिक के इस अलौकिक वैभव को देखकर अपने मन को शान्त करूँ तो भी ठीक नहीं, क्योंकि परभव में मुझे इससे घोरतर दु:खों की ही आशा है। अथवा मैं अपने मन को इस रीति से बहलाऊँ कि महाराज श्रेणिक के घर में मुझे अनन्यलभ्य भोग भोगने में आ रहे हैं, तो यह भी अनुचित है, क्योंकि ये भोग

मुझे भयंकर भुजंग के समान परिणाम में दु:ख ही देंगे। भोगों का फल नरक तिर्यंच आदि गतियों की प्राप्ति है। उनमें मुझे अवश्य ही जाना पड़ेगा एवं वहाँ पर घोरतर वेदनाओं का सामना करना पड़ेगा। संसार में धर्म होवे और धन न होवे तो धर्म के सामने धन का न होना तो अच्छा किन्तु बिना धर्म के अतिशय मनोहर, सांसारिक सुख का केन्द्र, चक्रवर्तीपना भी अच्छा नहीं।

संसार में मनुष्य विधवापने को बुरा कहते हैं किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। विधवापना सर्वथा बुरा नहीं। क्योंकि पति यदि सन्मार्गगामी हो और वह मर जाए, तब तो विधवापना बुरा है किन्तु पति जीता हो और वह मिथ्यामार्गी हो तो उस हालत में विधवापना सर्वथा बुरा नहीं है। **संसार में बांझ रहना अच्छा, भयंकर वन का निवास भी उत्तम, अग्नि में जलकर और विष खाकर मर जाना भी अच्छा तथा अजगर के मुख में प्रवेश और पर्वत से गिरकर मर जाना भी अच्छा, एवं समुद्र में डूबकर मर जाने में भी कोई दोष नहीं, किन्तु जिनधर्मरहित जीवन अच्छा नहीं।**

पति चाहें अन्य उत्तमोत्तम गुणों का भण्डार हो, यदि वह जिनधर्मी न हो तो किसी काम का नहीं। क्योंकि कुमार्गगामी पति के सहवास से, उसके साथ भोग भोगने से दोनों जन्म में अनेक प्रकार के दु:ख ही भोगने पड़ते हैं। हाय! बड़ा कष्ट है। मैंने पूर्वभव में ऐसा कौन-सा घोर पाप किया था, जिससे इस भव में मुझे जैन धर्म से विमुख होना पड़ा। हाय! अब मेरा एक प्रकार से जैन धर्म से सम्बन्ध छूट-सा ही गया। हे दुर्दैव! तूने मुझसे कब-कब के बदले लिये।

पुत्र अभयकुमार! क्या मुझे भोली बातों में फँसाकर ऐसे घोर

संकट में डालना आपको योग्य था ? अथवा कवियों ने जो स्त्रियों को अबला कहकर पुकारा है, सो सर्वथा ठीक है। वे बेचारी वास्तव में अबला ही हैं। बिना समझे-बूझे ही दूसरों की बात पर झट विश्वास कर बैठती हैं और बाद में पछताती हैं।

दीनबन्धो ! जो मनुष्य प्रियवचन बोलकर दूसरे भोले जीवों को ठग लेते हैं, संसार में कैसे उनका भला होगा ? फुसलाकर दूसरों को ठगनेवाले संसार में महापातकी गिने जाते हैं। ऐसा चिरकाल पर्यन्त विचारकर रानी चेलना ने मौन धारण कर लिया एवं एकान्त स्थान में बैठ करुणाजनक रुदन करने लगी। रानी चेलना की ऐसी दशा देख समस्त दासियाँ घबड़ा गयीं।

चेलना की चिन्ता दूर करने के लिये उन्होंने अनेक उपाय किये किन्तु कोई भी उपाय सफल न दीख पड़ा। यहाँ तक कि रानी चेलना ने सखियों के साथ बोलना भी बन्द कर दिया। वह बार-बार अपने जीवन की निन्दा करने लगी। जिनेन्द्र भगवान की मानसिक पूजा और उनके स्तवन में उसने अपना मन लगाया एवं इस दु:ख से जब-जब उसने अपने माता-पिता की याद आयी तो वह रोने भी लगी।

रानी चेलना की चिन्ता का समाचार महाराज श्रेणिक के कान तक पहुँचा, अति व्याकुल हो वे शीघ्र ही चेलना के पास आये। चेलना का मौन धारण देख उन्हें अति दु:ख हुआ। रानी चेलना के सामने वे विनयभाव से इसप्रकार कहने लगे—

प्रिये ! आज तुम्हारी यह अचानक दशा क्यों कर हो गयी ? जब-जब मैं तुम्हारे मन्दिर में आता था, मैं तुमको सदा प्रसन्न ही देखता था। मैंने आजतक कभी तुम्हारे चित्त पर ग्लानि न देखी

और उस समय तुम मेरा पूरा-पूरा सम्मान भी करती थी, आज तुमने मेरा सम्मान भी विसार दिया। आजतक मैंने तुम्हारा कोई कहना भी नहीं टाला।

जिस समय मैं तुम्हारा किसी काम के लिये आग्रह देखता था, फौरन करता था, तथापि यदि मुझसे तुम्हारी अवज्ञा हुई हो तो क्षमा करो, अब तुम्हारी अवज्ञा न की जाएगी। अब मैं तुम्हारा कहना मानूँगा। यदि राजमन्दिर में किसी ने तुम्हारा अपराध किया है, तुम्हारी आज्ञा नहीं मानी है, तो भी मुझे कहो; मैं अभी उसे दण्ड देने के लिये तैयार हूँ।

शुभे! मुझसे थोड़ी-सी तो बातचीत करो। मैं तुम्हारी ऐसी दशा देखने के लिये सर्वथा असमर्थ हूँ। तुम्हारी इस अवस्था ने मुझे अर्धमृतक बना दिया है। तुम्हें मैं अपने आधे प्राण समझता हूँ। तू मेरे जीवनरूपी घर के लिये विशाल स्तम्भ है। शुभानने! तेरी दु:खमय अवस्था मुझे भी दु:खमय ही प्रतीत हो रही है। पूर्णचन्द्रानने! तू शीघ्र अपने दु:ख का कारण कह। शीघ्र ही अपनी मनोमलिनता दूर कर! और जल्दी प्रसन्न हो।

महाराज श्रेणिक के ऐसे मनोहर वचन सुनकर भी प्रथम तो रानी चेलना ने कुछ भी जवाब न दिया, किन्तु जब उसने महाराज का प्रेम एवं आग्रह अधिक देखा, तब वह कहने लगी—

जीवननाथ! इस समय जो आप मुझे चिन्तायुक्त देख रहे हैं, इस चिन्ता का कारण न तो आप हैं और न कोई दूसरा मनुष्य है। इस समय मुझे चिन्ता किसी दूसरे ही कारण से हो रही है तथा वह कारण मेरा जैनधर्म का छूट जाना है।

कृपानाथ! जब से मैं इस राजमन्दिर में आयी हूँ, एक भी दिन

मैंने इसमें निर्ग्रन्थ मुनि को नहीं देखा! राजमन्दिर में उत्तम धर्म की ओर किसी की दृष्टि नहीं है। मिथ्याधर्म का अधिकतर प्रचार है। सब लोग बौद्धधर्म को ही अपना हितकारी धर्म मान रहे हैं, किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। क्योंकि यह धर्म नहीं, कुधर्म है। जीवों को कदापि इसमें सुख नहीं मिल सकता।

रानी चेलना के ऐसे वचन सुन महाराज अति प्रसन्न हुए। उन्होंने इस प्रकार गम्भीर वचनों में रानी के प्रश्न का उत्तर दिया—

प्रिये! तुम यह क्या ख्याल कर रही हो? मेरे राजमन्दिर में सद्धर्म का ही प्रचार है। दुनिया में यदि धर्म है तो यही है। यदि जीवों को सुख मिल सकता है तो इसी धर्म की कृपा से मिल सकता है। देख! मेरे सच्चे देव तो भगवान बुद्ध हैं। भगवान बुद्ध समस्त ज्ञान विज्ञानों के पारगामी हैं! उनसे बढ़कर दुनिया में कोई देव उपास्य और पूज्य नहीं।

जो उत्तम पुरुष हैं, अपनी आत्मा के हित के आकांक्षी हैं, उन्हें भगवान बुद्ध की ही पूजा, भक्ति एवं स्तुति करनी चाहिए क्योंकि हे प्रिये! भगवान बुद्ध की ही कृपा से जीवों को सुख मिलते हैं और इन्हीं की कृपा से स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति होती है।

महाराज के मुख से इस प्रकार बौद्धधर्म की प्रशंसा सुन रानी चेलना ने उत्तर दिया—

प्राणनाथ! आप जो बौद्धधर्म की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, सो बौद्धधर्म उसके नहीं है। उससे जीवों का जरा भी हित नहीं हो सकता। दुनिया में सर्वोत्तम धर्म जैनधर्म ही है। जैनधर्म छोटे-बड़े सब प्रकार के जीवों पर दया के उपदेश से पूर्ण है। इसका वर्णन केवली भगवान के केवलज्ञान में हुआ है। जो भव्य जीव इस

परम पवित्र धर्म की भक्तिपूर्वक आराधना करता है, नियम से उसे आराधना के अनुसार फल मिलता है। हे कृपानाथ! इस जैनधर्म में क्षुधा, तृषा आदि अठारह दोषों से रहित, समस्त प्रकार के परिग्रहों से विनिर्मुक्त, केवलज्ञानी एवं जीवों को यथार्थ उपदेशदाता तो आप्त कहा गया है और भले प्रकार परीक्षित जीव, अजीव, आस्रव आदि सात तत्त्व कहे हैं।

प्रमाण नय, निक्षेप आदि संयुक्त इन सप्त तत्त्वों का वर्णन भी केवली भगवान की दिव्यध्वनि में हुआ है। ये सातों तत्त्व कथंचित् नित्यत्व और कथंचित् अनित्यत्व इत्यादि अनेक धर्मस्वरूप हैं। यदि एकान्त रीति से ये सर्व तत्त्व सर्वथा नित्य और अनित्य ही माने जाएँ तो इनके स्वरूप का भले प्रकार परिज्ञान नहीं हो सकता।

और हे स्वामिन्! जो साधु निर्ग्रन्थ, उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि उत्तमोत्तम गुणों के धारी, मिथ्या अन्धकार को हटानेवाले, राग, द्वेष, मोह आदि शत्रुओं के विजयी, बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के तप से विभूषित भले प्रकार परीषहों को सहन करनेवाले एवं नग्न दिगम्बर हैं, वे इस जैनागम में गुरु माने गये हैं तथा हे प्रभो! जिससे किसी प्रकार के जीवों के प्राणों को त्रास न हो, ऐसा इस जैनसिद्धान्त में अहिंसा परम धर्म माना गया है। इसी धर्म की कृपा से जीवों का कल्याण हो सकता है।

दयासिन्धो! यह थोड़ा-सा जैनधर्म का स्वरूप मैंने आपके सामने निवेदन किया है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन सिवाय भगवान केवली के दूसरा कोई नहीं कर सकता। अब आप ही कहें कि ऐसे परम पवित्र धर्म का किस रीति से परित्याग किया जा सकता है? मेरा विश्वास है कि जो जीव इस जैनधर्म से विमुख एवं घृणा

करनेवाले हैं, वे कदापि भाग्यशाली नहीं कहे जा सकते।

रानी चेलना के मुख से इस प्रकार जैनधर्म का स्वरूप श्रवण कर महाराज निरुत्तर हो गये। उन्होंने और कुछ न कहकर महारानी से यही कहा—प्रिये! जो तुम्हें श्रेयस्कर ज्ञात हो, वही काम करो किन्तु अपने चित्त में किसी प्रकार की ग्लानि न लाओ। मैं यह नहीं चाहता कि तुम किसी प्रकार से दुःखित रहो।

महाराज के मुख से ऐसा अनुकूल उत्तर पा रानी चेलना अति प्रसन्न हुई। अब रानी चेलना निर्भय हो जैनधर्म का आराधन करने लगी। कभी तो रानी चेलना ने भक्तिभाव से भगवान की पूजन करनी प्रारम्भ कर दी और कभी वह अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्वों में उपवास और रात्रिजागरण भी करने लगी। तथा नृत्य और उत्तमोत्तम गद्यपद्यमय गायनों से भी उसने भगवान की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

वह जैन शास्त्रों का प्रतिदिन स्वाध्याय करने लगी। रानी चेलना को इस प्रकार धर्म पर आरूढ़ देख समस्त रनवास उसके धर्मात्मापने की प्रशंसा करने लगा। यहाँ तक कि कुछ ही दिनों में रानी चेलना ने समस्त राजमन्दिर को जैनधर्ममय कर दिया।

कदाचित् बौद्ध साधुओं को यह पता लगा कि रानी चेलना जैनधर्म की परम भक्त है, राजमन्दिर को उसने जैनधर्म का परम भक्त बना दिया और नगर एवं देश में वह जैनधर्म के प्रचारार्थ शक्तिभर प्रयत्न कर रही है, तो वे शीघ्र ही दौड़ते-दौड़ते राजा श्रेणिक के पास आये और क्रोध में आकर महाराज श्रेणिक से इस प्रकार कहने लगे—

राजन्! हमने सुना है कि रानी चेलना जैनधर्म की परम भक्त

है। वह बौद्धधर्म को एक घृणित धर्म मानती है, बौद्धधर्म को धरातल में पहुँचाने के लिये वह पूरा-पूरा प्रयत्न भी कर रही है। यदि यह बात सत्य है तो आप शीघ्र ही इसके प्रतिकारार्थ कोई उपाय सोचें, नहीं तो बड़े भारी अनर्थ की सम्भावना है।

बौद्ध गुरुओं के ऐसे वचन सुन महाराज ने और तो कुछ भी जवाब न दिया, केवल यही कहा—पूज्यवरों! रानी को मैं बहुत कुछ समझा चुका, उसके ध्यान में एक भी बात नहीं आती। कृपाकर आप ही उसके पास जाएँ और उसे समझावें। यदि आप इस बात में विलम्ब करेंगे तो याद रखिये बौद्धधर्म की अब खैर नहीं। अवश्य रानी बौद्धधर्म को जड़ से उखाड़ने के लिये पूरा-पूरा प्रयत्न कर रही है।

महाराज के ऐसे वचनों ने बौद्ध गुरुओं के चित्त पर कुछ शान्ति का प्रभाव डाल दिया। उन्हें इस बात से किंचित् हो गयी कि चलो, राजा तो बौद्धधर्म का भक्त है। उन्होंने शीघ्र ही राजा से कहा—

राजन्! आप खेद न करें। हम अभी रानी को जाकर समझाते हैं। हमारे लिये यह बात कौन कठिन है? क्योंकि हम पिटकत्रय आदि अनेक ग्रन्थों के भले प्रकार ज्ञाता हैं, हमारी जिह्वा सदा अनेक शास्त्रों का रंगस्थल बनी रहती है और भी अनेक विद्याओं के हम पारगामी हैं। ऐसा कहकर वे शीघ्र ही रानी चेलना के पास आये और इस प्रकार उपदेश देने लगे—

चेलने! हमने सुना है कि तुम जैनधर्म को परम पवित्र धर्म समझती है और बौद्धधर्म से घृणा करती है, सो यह तुम्हारा विचार सर्वथा अयोग्य है। तुम यह निश्चय समझो कि संसार में जीवों का हित करनेवाला है तो बौद्धधर्म ही है; जैनधर्म से कदापि जीवों का

कल्याण नहीं हो सकता। देखो! ये जितने दिगम्बर मत के अनुयायी साधु हैं, वे पशु के समान हैं, क्योंकि पशु जिस प्रकार नग्न रहता है, उसी प्रकार ये भी नग्न फिरते रहते हैं। आहार के न मिलने से पशु जैसा उपवास करता है, इसी प्रकार ये भी आहार के अभाव में उपवास करते हैं तथा पशु के समान ये अविचारित और ज्ञान-विज्ञान रहित भी हैं।

और हे रानी! दिगम्बर साधु जैसे इस भव में दीन दरिद्री रहते हैं, परजन्म में भी इनकी यही दशा रहती है, परजन्म में भी इन्हें किसी प्रकार के वस्त्र, भोजनों की प्राप्ति नहीं होती। वर्तमान में जो दिगम्बर मुनि क्षुधा, तृषा आदि से व्याकुल दिखते हैं, परजन्म में भी नियम से ऐसे ही व्याकुल रहेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हे रानी! क्षेत्र में बीज बोने पर जैसा तद्नुरूप फल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार समस्त संसारी जीवों की दशा है। वे जैसा कर्म करते हैं, नियम से उन्हें भी वैसा ही फल मिलता है। याद रखो, यदि तुम इन भिक्षुक दरिद्र दिगम्बर मुनियों की सेवा सुश्रूषा करोगी तो तुम्हें भी इन्हीं के समान परभव में दरिद्र एवं भिक्षुक होना पड़ेगा।

इसलिए अनेक प्रकार के भोग भोगनेवाले, वस्त्र आदि पदार्थों में सुखी, बौद्ध साधुओं की ही तुम भक्तिपूर्वक सेवा करो। इन्हें ही अपना हितैषी मानो, जिससे परभव में भी तुम्हें अनेक प्रकार के भोग भोगने में आवें। हे पतिव्रते! अब तुम्हें चाहिए कि तुम शीघ्र ही अपने चित्त से जैन मुनियों की भक्ति निकाल दो। बुद्धिमान लोग कल्याण मार्गगामी होते हैं। सच्चा कल्याणकारी मार्ग भगवान बुद्ध का ही है।

बौद्ध गुरुओं का ऐसा उपदेश सुन रानी चेलना से न रहा गया, इसलिए बड़ी गम्भीरता एवं सभ्यता से उसने शीघ्र ही पूछा—

बौद्ध गुरुओं! आपका उपदेश मैंने सुना किन्तु मुझे इस बात का सन्देह रह गया कि आप यह बात कैसे जानते हैं कि दिगम्बर मुनियों की सेवा से परभव में क्लेश भोगने पड़ते हैं, दीन दरिद्र होना पड़ता है और बुद्ध गुरुओं की सेवा से यह एक भी बात नहीं होती? बौद्ध गुरुओं की सेवा से मनुष्य परभव में सुखी रहते हैं? —इत्यादि कृपा कर मुझे शीघ्र कहें।

रानी के इन वचनों को सुन बौद्ध गुरुओं ने कहा—चेलने! तुम्हें इस बात में सन्देह नहीं करना चाहिए। हम सर्वज्ञ हैं। परभव की बात बताना हमारे सामने कोई बड़ी बात नहीं। हम विश्वभर की बातें बता सकते हैं।

बौद्ध गुरुओं के ऐसे वचन सुन रानी चेलना ने कहा—

बौद्ध गुरुओं! यदि आप अखण्ड ज्ञान के धारक सर्वज्ञ हैं तो मैं कल आपको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर आपके मत को ग्रहण करूँगी। आप इस विषय में जरा भी सन्देह न करें।

रानी के मुख से ये वचन सुन बौद्ध गुरुओं को परम सन्तोष हो गया। हर्षित चित्त हो वे शीघ्र ही महाराज के पास आये और सारा समाचार महाराज को कह सुनाया। बौद्ध गुरुओं के मुख से रानी का इस प्रकार विचार सुन महाराज भी अति प्रसन्न हुए। उन्हें भी पूरा विश्वास हो गया कि अब रानी जरूर बौद्ध बन जाएगी। इस प्रकार रानी की भाँति-भाँति से प्रशंसा करते हुए महाराज शीघ्र ही उसके पास गये और उसके मुख पर भी इस प्रकार की प्रशंसा करने लगे—

प्रिये ! आज तुम धन्य हो कि गुरुओं के उपदेश से तुमने बौद्ध धर्म धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली। शुभे ! तुम ध्यान रखो, बौद्धधर्म से बढ़कर दुनिया में कोई भी धर्म हितकारी नहीं है। आज तेरा जन्म सफल हुआ। अब तुम्हें जिस बात की अभिलाषा हो, शीघ्र कहो, मैं अभी उसे पूर्ण करने के लिये तैयार हूँ। इस प्रकार कहते-कहते महाराज ने रानी चेलना को उत्तमोत्तम पदार्थ बनाने की शीघ्र ही आज्ञा दे दी।

महाराज की आज्ञा पाते ही रानी चेलना ने शीघ्र ही भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। लाड्डू, खाजे आदि उत्तमोत्तम पदार्थ तत्काल तैयार हो गये। जिस समय महाराज ने देखा कि भोजन तैयार है तो शीघ्र ही उन्होंने बड़े विनय से गुरुओं को बुलावा भेज दिया और राजमन्दिर में उनके बैठने के स्थान का शीघ्र प्रबन्ध भी करा दिया।

गुरुगण इस बात की चिन्ता में बैठे ही थे कि कब निमन्त्रण आवे और कब हम राजमन्दिर में भोजनार्थ चलें। ज्योंहि निमन्त्रण समाचार पहुँचा कि शीघ्र ही सभी ने अपने वस्त्र पहिने और राजमन्दिर की ओर चल दिये।

जिस समय राजमन्दिर में प्रवेश करते रानी चेलना ने उन्हें देखा तो उनका बड़ा भारी सम्मान किया व उनके गुणों की प्रशंसा की एवं जब वे बौद्ध गुरु अपने-अपने स्थानों पर बैठ गये, तब रानी चेलना ने नम्रता से उनका पाद प्रक्षालन करवाया तथा उनके सामने उत्तमोत्तम सुवर्णमय थाल रखकर भाँति-भाँति के लाड्डू, खीर, श्रीखण्ड, राजाओं के खानेयोग्य भात, मूँग के लड्डू इत्यादि स्वादिष्ट पदार्थों को परोस दिया और भोजन के लिये प्रार्थना भी कर दी।

रानी की प्रार्थना सुनते ही गुरुओं ने भोजन करना प्रारम्भ कर

दिया। कभी तो वे खीर खाने लगे और कभी उन्होंने लड्डुओं पर हाथ जमाया। भोजन को उत्तम एवं स्वादिष्ट समझकर वे मन ही मन अति प्रसन्न होने लगे और बारबार रानी की प्रशंसा करने लगे।

जिस समय रानी ने बौद्ध गुरुओं को भोजन में अति मग्न देखा तो शीघ्र ही उसने अपनी प्रिय दासी को बुलाया और यह आज्ञा दी कि तू अभी राजमन्दिर में दरवाजे पर जा और गुरुओं के बायें पैरों के जूते लाकर शीघ्र उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर मुझे दे।

रानी की आज्ञा पाते ही दूती चल दी। उसने वहाँ से जूता लाकर और उनके महीन टुकड़े कर शीघ्र ही रानी को दे दिये तथा रानी ने उन्हें शीघ्र ही किसी निकृष्ट छांछ में डाल दिया एवं उनमें खूब मसाला मिलाकर शीघ्र ही थोड़ा-थोड़ा गुरुओं के सामने परोस दिया।

जिस समय मधुर भोजनों से उनकी तबियत अकुला गयी, तब उन्होंने यह समझा कि कोई अद्‌भुत चटपटी चीज है, शीघ्र ही उन छाछमिश्रित टुकड़ों को खा गये एवं भोजन के अन्त में रानी द्वारा दिये ताम्बूल, इलायची आदि चीजों को खाकर और सबके सब रानी के पास आकर इस प्रकार उसे उपदेश देने लगे—

सुन्दरी! देख, तुम्हारी प्रार्थना से हम सभी ने राजमन्दिर में आकर भोजन किया है। अब तुम शीघ्र ही बौद्धधर्म को धारण कर अपनी आत्मा बौद्ध धर्म की कृपा से पवित्र बनाओ। अब तुझे जैनधर्म से सर्वथा सम्बन्ध छोड़ देना चाहिए।

बौद्ध गुरुओं का ऐसा उपदेश सुन रानी ने विनय से उत्तर दिया —श्रीगुरुओं! आप अपने स्थानों पर जाकर विराजें, मैं आपके यहाँ आऊँगी और वहीं पर बौद्धधर्म धारण करूँगी। इस विषय में आप जरा भी सन्देह न करें।

रानी चेलना के ऐसे विनयवचन सुन वे सब गुरु अति प्रसन्न हुए और अपने मठों की ओर गमन हेतु तत्पर हुए।

जिस समय वे दरवाजे पर आये और ज्यों ही उन्होंने अपने बाँये पैर के जूतों को न देखा, वे एकदम घबड़ा गये। आपस में एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे एवं कुछ समय इधर-उधर अन्वेषण कर वे शीघ्र ही रानी के पास आये और रानी से जूतों की बावत कहा। रानी को डपटने भी लगे कि तुम्हें गुरुओं के साथ हँसी नहीं करनी चाहिए।

बौद्ध गुरुओं का यह चरित्र देख रानी हँसने लगी। उसने शीघ्र ही उत्तर दिया—गुरुओ! आप तो इस बात की डींग मारते थे कि हम सर्वज्ञ हैं, अब आपका वह सर्वज्ञपना कहाँ जाता रहा? आप ही अपने ज्ञान से जाने कि आपके जूते कहाँ हैं?

रानी के ऐसे वचन सुन बौद्धगुरु बड़े छके। उनके चेहरों से प्रसन्नता तो कोसों दूर किनारा कर गयी। अब रानी के सामने उनसे दूसरा तो कोई बहाना न बन सका किन्तु लाचारी से यही जवाब देना पड़ा—

सुन्दरी! हम लोगों में ऐसा ज्ञान नहीं कि हम इस बात को जान लें कि हमारे जूते कहाँ हैं। कृपा कर आप ही हमारे जूते बता दीजिये।

बौद्ध गुरुओं के ऐसे वचन सुन रानी चेलना का शरीर क्रोध से भभक उठा। कुछ समय पहिले जो वह अपने पवित्र धर्म की निन्दा सुन चुकी थी, उस निन्दा ने उसे और भी क्रोधित बना दिया। बौद्ध गुरुओं को बिना जवाब दिये उससे नहीं रहा गया। वह कहने लगी—

बौद्धगुरुओं! जब तुम जिनधर्म का स्वरूप नहीं जानते तो तुम्हें उसकी निन्दा करना सर्वथा अनुचित था। बिना समझे बोलनेवाले मनुष्य पागल कहे जाते हैं। तुम लोग कदापि गुरु-पद के योग्य नहीं हो, किन्तु भोले-भाले प्राणियों के वंचक, असत्यवादी, मायाचारी एवं पापी हो।

रानी के मुख से ऐसे कटुक वचन सुनकर भी बौद्ध गुरुओं के मुख से कुछ भी जवाब न निकला। वे बारबार उनसे यही प्रार्थना करने लगे—कृपया आप हमारे जूते दे दें कि जिससे हम आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थान पर चले जाएँ। इस प्रकार बौद्ध धर्म गुरुओं की जब प्रार्थना विशेष देखी तो रानी ने जवाब दिया—

बौद्ध गुरुओं! आपकी चीज आपके ही पास है और इस समय भी वह आपके ही पास है। आप विश्वास रखें, आपकी चीज़ किसी दूसरे के पास नहीं है।—रानी चेलना के ये वचन सुन तो बौद्ध गुरु बड़े बिगड़े। वे कुपित हो इस प्रकार रानी से कहने लगे—

रानी! यह तू क्या कहती है! हमारी चीज़ हमारे पास है, भला बता तो वह चीज़ कहाँ है? क्या हमने उसे चवा लिया है? तुझे हम साधुओं के साथ कदापि ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।

गुरुओं के ऐसे वचन सुन रानी ने जवाब दिया—

गुरुओं! आप घबड़ायें नहीं; यदि आपकी चीज़ आपके पास होगी तो मैं अभी उसे निकाल कर देती हूँ। रानी के इन वचनों ने बौद्ध साधुओं को बुद्धिहीन बना दिया। वे बार-बार सोचने लगे कि यह रानी क्या कहती है? यह बात क्या हो गयी? मालूम होता है इस निर्दय रानी ने हमें जूतों का भोजन करा दिया। ऐसा विचार करते-करते उन्होंने शीघ्र ही क्रोध से वमन कर दिया।

फिर क्या था ? जूतों के टुकड़े तो उनके पेट में अभी विराजमान ही थे। ज्यों ही वमन में उन्होंने जूतों के टुकड़े देखे, उनके सारे होश किनारा कर गये। अब वे बारबार रानी की निन्दा करने लगे, तथा रानी द्वारा किये हुए पराभव से लज्जित एवं राजमन्दिर में अति अनादर को पा, वे चुपचाप अपने-अपने स्थानों को चले गये। रानी के सामने उनके ज्ञान की कुछ भी तीन-पाँच न चली।

कदाचित् राजगृह नगर में एक विशाल बौद्ध साधुओं का संघ आया। संघ के आगमन का समाचार एवं प्रशंसा महाराज के कानों में भी पड़ी। महाराज अति प्रसन्न हो शीघ्र ही रानी चेलना के पास गये और उन साधुओं की प्रशंसा करने लगे—

प्रिये! मनोहरे! हमारे गुरु अतिशय ज्ञानी हैं। तप की उत्कृष्ट सीमा को प्राप्त हैं। समस्त संसार उनके ज्ञान में झलकता है और परम पवित्र हैं। मनोहरे! जब कोई उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करता है तो वे ध्यान में अतिशय लीन होने के कारण बड़ी कठिनता से उसका जवाब देते हैं एवं वास्तविक तत्त्वों के उपदेशक हैं और देदीप्यमान शरीर से शोभित हैं। महाराज के मुख से इस प्रकार बौद्ध साधुओं की प्रशंसा सुन रानी चेलना ने विनय से उत्तर दिया—

कृपानाथ! यदि आपके गुरु ऐसे पवित्र एवं ध्यानी हैं तो कृपाकर मुझे भी उनके दर्शन कराइये, ऐसे परम पवित्र महात्माओं के दर्शन से मैं भी अपने जन्म को पवित्र करूँगी, आप इस बात का विश्वास रखें, यदि मेरी निगाह में बौद्धधर्म का सच्चापन जम गया और वे साधु सच्चे निकले तो मैं तत्काल बौद्धधर्म को धारण कर लूँगी।

मुझे इस बात का कोई आग्रह नहीं कि मैं जैनधर्म की ही भक्त बनी रहूँ, परन्तु बिना परीक्षा किये दूसरे के कथनमात्र से मैं जैन

धर्म का परित्याग नहीं कर सकती। क्योंकि हेयोपादेय के जानकार तो मनुष्य बिना समझे-बूझे दूसरे के कथनमात्र से उत्तम मार्ग को छोड़ दूसरे मार्ग पर चल पड़ते हैं, वे शक्तिहीन मूर्ख कहे जाते हैं और किसी प्रकार भी वे अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते।

महाराणी के ऐसे निष्पक्ष वचनों से महाराज को रानी का चित्त कुछ बौद्धधर्म की ओर खिंचा हुआ दिख पड़ा। रानी के कथनानुसार उन्होंने शीघ्र ही मण्डप तैयार कराया और वह ग्राम के बाहर बात की बात में बनकर तैयार भी हो गया।

मण्डप तैयार होने पर इधर बौद्ध गुरुओं ने तो मण्डप में समाधि लगायी। दृष्टि बन्द कर, श्वास रोककर, काष्ठ की पुतली के समान वे बैठ गये। उधर रानी को भी इस बात का पता लगा। वह शीघ्र पालकी तैयार कराकर उनके दर्शनार्थ आयी एवं किसी बौद्धगुरु से बौद्धधर्म की बावत जानकारी के लिये वह प्रश्न भी करने लगी—

रानी के प्रश्न को भले प्रकार सुनकर भी किसी भी बौद्ध गुरु ने उत्तर नहीं दिया किन्तु पास ही एक ब्रह्मचारी बैठा था, उसने कहा—माता! यह समस्त साधुवृन्द इस समय ध्यान में लीन हैं। समस्त साधुओं की आत्मा इस समय सिद्धालय में विराजमान हैं। देह युक्त भी इस समय ये सिद्ध हैं, इसलिए इन्होंने आपके प्रश्न का जवाब नहीं दिया है।

ब्रह्मचारी के ऐसे वचन सुन रानी चेलना ने और तो कुछ भी जवाब न दिया, उन्हें मायाचारी समझ, माया को प्रकट करने के लिये उसने शीघ्र ही मण्डप में आग लगवा दी और उनका दृश्य देखने के लिये एक ओर खड़ी हो गयी। तत्पश्चात् कुछ समय बाद राजमन्दिर में आ गयी।

फिर क्या था ? अग्नि जलते ही बौद्धगुरुओं का ध्यान न जाने कहाँ किनारा कर गया। कुछ समय पहिले जो निश्चल ध्यानारूढ़ बैठे थे, वे सब इधर-उधर व्याकुल हो दौड़ने लगे और रानी का सारा कृत्य उन्होंने महाराज को जा सुनाया।

बौद्धगुरुओं के ये वचन सुनकर तो महाराज कुपित हो गये। वे यह समझे कि रानी ने बड़ा अनुचित काम किया है; शीघ्र ही उसके पास आये और इस प्रकार कहने लगे—

सुन्दरी! मण्डप में जाकर तूने यह अति निंद्य एवं नीच काम क्यों कर दिया! अरे! यदि तेरी बौद्धधर्म पर श्रद्धा नहीं है, बौद्ध साधुओं को तू ढोंगी समझती है तो तू उनकी भक्ति न कर। यह कौन बुद्धिमानी थी कि मण्डप में आग लगा तूने उन बेचारों के प्राण लेने चाहे ?

कांते! जो तू अपने को जैनी समझ जैनधर्म की डींग मार रही है, सो यह तेरी डींग अब सर्वथा व्यर्थ मालूम पड़ती है क्योंकि जैन सिद्धान्त में धर्म दयाप्रधान माना गया है। दया उसी का नाम है जो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रियपर्यन्त जीवों की प्राण रक्षा की जाए किन्तु तेरे इस दुष्ट वर्ताव से उस दयामय धर्म का पालन कहाँ हो सका ? तूने एकदम पंचेन्द्रिय जीवों के प्राण विघात के लिये साहस कर डाला, यह बड़ा अनर्थ किया। अब तेरा 'हम जैन हैं, हम जैन हैं', यह कहना आलाप मात्र है। इस दुष्ट कर्म से तुझे कोई जैनी नहीं बतला सकता।

महाराज को इस प्रकार अति कुपित देख रानी चेलना ने बड़ी विनय एवं शान्ति से इस प्रकार निवेदन किया—

कृपानाथ! आप क्षमा करें। मैं एक विचित्र आख्यायिका सुनाती

हूँ। आप कृपया ध्यानपूर्वक सुनें और मेरा इस कार्य में कितने अंश अपराध हुआ, उस पर विचार करें।

❁ ❁ ❁

इसी जम्बूद्वीप में मनोहर-मनोहर गाँवों से शोभित, धनिक एवं विद्वानों से भूषित, एक वत्स देश है। वत्सदेश में एक कौशाम्बी नगरी है। जो कौशाम्बी उत्तमोत्तम बाग-बगीचों से, देवतुल्य मनुष्यों से स्वर्गपुरी की शोभा को धारण करती है। कौशाम्बीपुरी का स्वामी जो नीतिपूर्वक, प्रजापालक, कल्पवृक्ष के समान दाता था, राजा वसुपाल था।

राजा वसुपाल की पटरानी का नाम अश्विनी था। रानी अश्विनी स्त्रियों के प्रधान गुणों की आकर, मृगनयना, चन्द्रवदना एवं रमणीय रत्न थी। कौशाम्बीपुरी में कोई सागरदत्त नाम का सेठ रहता था। सागरदत्त अपार धन का स्वामी था। अनेक गुणयुक्त होने के कारण वह राजमान्य था और विद्वान था।

सागरदत्त की स्त्री का नाम वसुमती था। वसुमती रात्रि विकसी कमलों को चाँदनी के समान सदा सागरदत्त के मन को प्रसन्न करती रहती थी, मुख से चन्द्र शोभा को भी नीचे करनेवाली थी एवं प्रत्येक कार्य को विचारपूर्वक करती थी।

उसी समय कौशाम्बीपुरी में सुभद्रदत्त नाम का सेठ भी निवास करता था। सुभद्रदत्त सागरदत्त के समान ही धनी था, धर्मात्मा एवं अनेक गुणों का भण्डार था। सेठ समुद्रदत्त की प्रिय भार्या सागरदत्ता थी जो कि अतिशय रूपवती एवं पतिभक्ता थी।

कदाचित् सेठ सागरदत्त और सुभद्रदत्त आनन्दपूर्वक एक स्थान में बैठे थे। परस्पर में और भी स्नेह अभिवृद्धि हेतु सेठ समुद्रदत्त

ने सागरदत्त से कहा—

प्रिय सागरदत्त! आप एक काम करें। यदि भाग्यवश आपके पुत्र और मेरे पुत्री अथवा मेरे पुत्र और आपके पुत्री होवे तो उन दोनों का आपस में विवाह कर देना चाहिए, जिससे हमारा और आपका स्नेह दिनोंदिन बढ़ता ही चला जाए। समुद्रदत्त के ये वचन सुन सागरदत्त ने कहा—जो आप कहते हैं, सो मुझे मंजूर है। मैं आपके वचनों से बाहिर नहीं हूँ।

कुछ दिन बाद सेठ सागरदत्त के भाग्यानुसार एक पुत्र जो कि सर्प की आकृति का धारक एवं भयावह था, उत्पन्न हुआ और उसका नाम वसुमित्र रखा गया, तथा सेठ सुभद्रदत्त की सेठानी सागरदत्ता से एक पुत्री उत्पन्न हुई जो पुत्री चन्द्रवन्दना, मनोहरा सुवर्णवर्णा एवं अनेक गुणों की आकर थी और उसका नाम नागदत्ता रखा गया। कदाचित् कुमार कुमारी ने यौवन अवस्था में पदार्पण किया। इन्हें सर्वथा विवाह के योग्य जान बड़े समारोह से दोनों का विवाह किया गया एवं विवाह के बाद वे दोनों दम्पति सांसारिक सुख का अनुभव करने लगे।

माता का पुत्री पर अधिक प्रेम रहता है। यदि पुत्री किसी कष्टमय अवस्था में हो तो माता अति दु:ख मानती है। कदाचित् पुत्री नागदत्ता पर सागरदत्ता की दृष्टि पड़ी। उसे हार आदि उत्तमोत्तम भूषणों से भूषित, कमलाक्षी, कनकवर्णा देख वह इस प्रकार मन ही मन रोदन करने लगी—

पुत्री! कहाँ तो तेरा मनोहर रूप, सौभाग्य, उत्तम कुल, एवं मनोहर गति और कहाँ भयंकर शरीर का धारक, हाथ-पैर रहित एवं अशुभ तेरा पति? हाय दुर्दैव! तुझे सहस्रवार धिक्कार है। तूने

क्या जानकर यह संयोग मिलाया, अथवा ठीक है—तेरी गति विचित्र है। बड़े-बड़े देव भी तेरी गति के पते लगाने में हैरान हैं, तब हम कौन चीज़ हैं! विचारा तो कुछ और था, हो कुछ और हो गया!

माता को इस प्रकार रोदन करती देख पुत्री नागदत्ता का भी चित्त पिघल गया। उसने शीघ्र ही विनय से सांत्वनापूर्वक कहा—

माता! आज क्या हुआ, तू मुझे देख अचानक ही क्यों कर विलाप करने लग गयी? कृपाकर इसका कारण शीघ्र मुझे कह—

पुत्री के इन विनयवचनों ने तो सागरदत्ता को रोदन में और सहायता पहुँचाई—अब उसकी आँखों से अविरल आंसुओं की झड़ी लग गयी। प्रथम तो उसने नागदत्ता के प्रश्न का कुछ भी जवाब न दिया, किन्तु जब उसने नागदत्ता का अधिक आग्रह देखा तो बड़े कष्ट से वह कहने लगी—

पुत्री! मुझे और किसी की ओर से दुःख नहीं किन्तु इस युवा अवस्था में तुझे पतिजन्य सुख से सुखी न देख मैं रोती हूँ। यदि तेरा पति कुरूप भी होता पर मनुष्य, तो मुझे कुछ दुःख न होता परन्तु तेरा पति नाग है। वह न कुछ कर सकता है और धर ही सकता है इसलिए मेरे चित्त को अधिक सन्ताप है।

माता के ये वचन सुन प्रथम तो नागदत्ता हँसने लगी, पश्चात् उसने विनय से कहा—

माता! तू इस बात के लिये जरा भी खेद मत कर। यदि तू नहीं मानती है तो मैं अपना सारा हाल तुझे सुनाती हूँ। तू ध्यानपूर्वक सुन—

मेरे शयनागार में एक सन्दूक रखी रहती है। जिस समय दिन हो जाता है, उस समय तो मेरा पति नाग बन जाता है और दिनभर

नागरूप में मेरे साथ खेल किलोल करता है और जब रात हो जाती है तो वह उस सन्दूक से निकलकर उत्तम मनुष्याकार बन जाता है एवं मनुष्य रूप में रात भर मेरे साथ भोग भोगता है। पुत्री के मुख से यह विचित्र घटना सुन सागरदत्ता आश्चर्य करने लगी। उसने शीघ्र ही नागदत्ता से कहा—

नागदत्ते! यदि यह बात सत्य है तो तू एक काम कर। उस सन्दूक को तू किसी परिचित एवं अपने अभीष्ट स्थान में रख और यह वृत्तान्त मुझे दिखा, तब मैं तेरी बात मानूँगी।

पुत्री नागदत्ता ने अपनी माता की आज्ञा स्वीकार कर ली तथा किसी निश्चित दिन नागदत्ता ने उस सन्दूक को ऐसे स्थान पर रखवा दिया जो स्थान उसकी माँ का भी भले प्रकार परिचित था और माँ को इशारा कर वह मनुष्याकार अपने पति के साथ भोग भोगने लगी।

बस फिर क्या था—हे महाराज! जिस समय सागरदत्ता ने उस सन्दूर को खुला देखा, तो उसने उसे खोखला समझ शीघ्र जला दिया और वह वसुमित्र फिर सदा के लिये मनुष्याकार बन गया। उसी प्रकार हे दीनबन्धो! किसी ब्रह्मचारी से मुझे यह बात मालूम हुई कि बौद्ध गुरुओं की आत्मा इस समय मोक्ष में हैं, ये इनके शरीर इस समय खोखले पड़े हैं, मैंने यह जानकर कि बौद्ध गुरुओं को अब शारीरिक वेदना न सहनी पड़े, आग लगा दी क्योंकि इस बात को आप भी जानते हैं कि जब तक आत्मा के साथ इस शरीर का सम्बन्ध रहता है, तब तक अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं, किन्तु ज्यों ही शरीर का सम्बन्ध छूटा, त्यों ही सब दुःख भी एक ओर किनारा कर जाते हैं। फिर वे आत्मा से कदापि सम्बन्ध नहीं कर पाते।

नाथ! शरीर के सर्वथा जल जाने से अब समस्त गुरु सिद्ध हो गये। यदि उनका शरीर कायम रहता तो उनकी आत्मा सिद्धालय से लौट आती और संसार में रहकर अनेक दु:ख भोगती क्योंकि संसार में जो इन्द्रियजन्य सुख भोगने में आते हैं, उनका प्रधान कारण शरीर है।

यह बात अनुभवसिद्ध है कि इन्द्रिय सुख से अनेक कर्मों का उपार्जन होता है और कर्मों से नरकादि गतियों में घूमना पड़ता है, जन्म-मरण आदि वेदना भोगनी पड़ती है, इसलिए मैंने तो उन्हें सर्वथा दु:ख से छुड़ाने के लिये ऐसा किया था।

नरनाथ! आप स्वयं विचार करें, इसमें मैंने क्या जैनधर्म के विरुद्ध अपराध कर दिया? प्रभो! आपको इस बात पर जरा भी विषाद नहीं करना चाहिए। आप यह निश्चय समझें कि बौद्धगुरुओं का यह ध्यान नहीं था। ध्यान के बहाने से भोले जीवों को ठगना था। मोक्ष कोई सुलभ चीज़ नहीं जो हर एक को मिल जाए। यदि इस सरल मार्ग से मोक्ष मिल जाए तो बहुत जल्दी सर्व जीव सिद्धालय में सिधार जाएँ। आप विश्वास रखें, मोक्ष प्राप्ति की जो प्रक्रिया जिनागम में वर्णित है, वही उत्तम और सुखप्रद है। नाथ! अब आप अपने चित्त को शान्त करें और बौद्ध साधुओं को ढोंगी साधु समझें।

रानी के इन युक्तिपूर्ण वचनों ने महाराज को अनुत्तर बना दिया। वे कुछ भी जवाब न दे सके किन्तु गुरुओं का पराभव देख उनका चित्त शान्त न हुआ। दिनोंदिन उनके चित्त में ये विचार-तरंगें उठती रहीं कि इस रानी ने बड़ा अपराध किया है।

मेरा नाम श्रेणिक नहीं जो मैं इसे बौद्ध धर्म की भक्त और सेविका न बना दूँ। आज जो यह जिनेन्द्र की पूजन और उनकी भक्ति करती

है, सो जिनेन्द्र के बदले इससे बुद्धदेव की भक्ति कराऊँगा। इस प्रकार अशुभकर्म के उदय से कुछ दिन ऐसे ही संकल्प विकल्प वे करते रहे।

❀ ❀ ❀

कदाचित् महाराज को शिकार खेलने का कौतूहल उपजा। वे एक विशाल सेना के साथ शीघ्र ही वन की ओर चल पड़े। जिस वन में महाराज गये, उसी वन में महामुनि यशोधर खड्गासन से ध्यानारूढ़ थे। मुनि यशोधर परमज्ञानी, आत्मस्वरूप के भले प्रकार जानकार एवं परमध्यानी थे। उनकी आत्मा सदा शुभयोग की ओर झुकी रहती थी। अशुभ योग उनके पास तक भी नहीं फटकने पाता था, मित्र-शत्रुओं पर उनकी समदृष्टि थी, त्रैकालिक योग के धारक थे, समस्त मुनियों में उत्तम थे, अनन्त अक्षय गुणों के भण्डार थे, असंख्याती पर्यायों के युगपत जानकार थे, देदीप्यमान निर्मल ज्ञान से शोभित थे, भव्य जीवों के उद्धारक और उन्हें उत्तम उपदेश के दाता थे।

स्यादस्ति स्यान्नास्ति इत्यादि अनेक धर्मस्वरूप जीवादि सप्त तत्त्व उनके ज्ञान में सदा प्रतिभासित रहते थे एवं बड़े-बड़े देव और इन्द्र आकर उनके चरणों को नमस्कार करते थे! महाराज की दृष्टि मुनि यशोधर पर पड़ी। उन्होंने पहिले किसी दिगम्बर मुनि को नहीं देखा था, इसलिए शीघ्र ही उन्होंने किसी पार्श्वचर से धर पूछा।

देखो भाई! नग्न, स्नानादि संस्काररहित, एवं मूड मुंडाये यह कौन खड़ा है? मुझे शीघ्र कहो। पार्श्वचर बौद्ध था, उसने शीघ्र ही इन शब्दों में महाराज के प्रश्न का जवाब दिया।

कृपानाथ! क्या आप नहीं जानते? शरीर नग्न खड़ा हुआ,

महाभिमानी यही तो रानी चेलना का गुरु है।

बस, वहाँ कहने मात्र की ही देरी थी। महाराज इस अवसर की खोज में बैठे ही थे कि कब रानी का गुरु मिले और कब उसका अपमान कर मैं रानी से बदला लूँ! ज्यों ही महाराज ने पार्श्वचर के वचन सुने, मारे क्रोध से उनका शरीर उबल उठा। वे विचार लगे—

अहा! रानी से वैर का बदला लेने का आज अवसर मिला है, रानी ने मेरे गुरुओं का बड़ा अपमान किया है, उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाये हैं, मुझे आज यह रानी का गुरु भी मिला है। अब मुझे भी इसे कष्ट पहुँचाने में और इसका अपमान करने में चूकना नहीं चाहिए। ऐसा क्षण एक विचार कर महाराज ने शीघ्र ही पाँच सौ शिकारी कुत्ते, जो लम्बी-लम्बी डाढों के धारक, सिंह के समान ऊँचे एवं भयंकर थे, मुनिराज पर छोड़ दिये।

मुनिराज परम ध्यानी थे, उन्हें अपने ध्यान के सामने इस बात का जरा भी विचार न था कि कौन दुष्ट हमारे ऊपर क्या अपकार कर रहा है? इसलिए ज्यों ही कुत्ते मुनिराज के पास गये और ज्यों ही उन्होंने मुनिराज की शान्तमुद्रा देखी, उनकी सारी क्रूरता एक ओर किनारा कर गयी। मन्त्रकीलित सर्प जैसा शान्त पड़ जाता है, मन्त्र के सामने उसकी कुछ भी वश नहीं चलती, उसी प्रकार कुत्ते भी शान्त हो गये। मुनिराज की शान्त मुद्रा के सामने उनकी कुछ भी न चली। वे मुनिराज की प्रदक्षिणा देने लगे और उनके चरण कमलों में बैठ गये।

महाराज भी दूर से यह दृश्य देख रहे थे। ज्यों ही उन्होंने कुत्तों को क्रोधरहित और प्रदक्षिणा करते हुए देखा, मारे क्रोध से उनका दिल पसीज गया! वे सोचने लगे यह साधु नहीं है, धूर्त वंचक

कोई मन्त्रवादी है। मेरे बलवान कुत्ते इस दुष्ट ने मन्त्र से कीलित कर दिये हैं।

अस्तु, मैं अभी इसके कर्म का इसे मजा चखाता हूँ, ऐसा विचार कर उन्होंने शीघ्र ही म्यान से तलवार खींच ली और मुनि के मारणार्थ बड़े वेग से उनकी ओर झपट पड़े।

मुनि के मारने के लिये महाराज जा ही रहे थे, अचानक ही उन्हें एक सर्प, जो कि अनेक जीवों का भक्षक एवं फणा ऊँचे किये था, दीख पड़ा एवं उसे अनिष्ट का करनेवाला समझ शीघ्र महाराज ने मार डाला, और अति क्रूर परिणामी हो पवित्र मुनि यशोधर के गले में डाल दिया।

जैनसिद्धान्त में फल प्राप्ति परिणामाधीन मानी है। जिस मनुष्य के जैसे परिणाम रहते हैं, उसे वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। महाराज श्रेणिक के उस समय अति रौद्र परिणाम थे। उन्हें तत्काल ही जिस महाप्रभा नरक में तैतीस सागर की आयु, पाँच सौ धनुष का शरीर, एवं विद्वानों के भी वचन के अगोचर घोर दु:ख हैं। उस महाप्रभा नाम के सप्तम नरक का आयुबंध बँध गया।

यह बात ठीक भी है—जे मनुष्य बिना विचारे दूसरों को कष्ट में डालते हैं, विशेषकर साधु महात्माओं को; उन्हें घोर दु:खों का सामना करना पड़ता है। महात्माओं को कष्ट देनेवाले मनुष्यों को सदा नरकादि गतियाँ तैयार रहती हैं। किन्तु मदोन्मत्तों को इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता और वे अविचारित हो ऐसा काम कर डालते हैं। इसलिए उन्हें इस प्रकार का कष्ट पद आयुबंध बँध गया।

ज्यों ही मुनि यशोधर को यह बात मालूम हुई कि मेरे गले में सर्प डाल दिया है, उन्होंने तो अपनी ध्यान मुद्रा और भी अधिक

चढ़ा दी और महाराज श्रेणिक वहाँ से चल दिये एवं जो-जो काम उन्होंने वहाँ किये थे, अपने गुरुओं से आकर सब कह सुनाये।

श्रेणिक द्वारा एक दिगम्बर गुरु का ऐसा अपमान सुन बौद्ध गुरुओं को अति प्रसन्नता हुई। वे बारबार श्रेणिक की प्रशंसा करने लगे किन्तु साधु होकर उनका यह कृत्य उत्तम न था। साधु का धर्म मानापमान सुख-दु:ख में समान भाव रखना है अथवा ठीक ही था, यदि वे साधु होते तो वे साधुओं के धर्म जानते।

इस प्रकार तीन दिन तक तो महाराज इधर-उधर लापता रहे। चौथे दिन वे रानी चेलना के राजमन्दिर में गये। जो कुछ दुष्कृत्य वे मुनि के साथ कर आये थे, सारा रानी से कह सुनाया और हँसने लगे।

महाराज द्वारा अपने गुरु का यह अपमान सुन रानी चेलना अवाक रह गयी। मुनि पर घोर उपसर्ग जान उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह कहने लगी—हाय! बड़ा अनर्थ हो गया। राजन्! तुमने अपनी आत्मा को दुर्गति का पात्र बना लिया। अरे! अब मेरा जन्म सर्वथा निष्फल है, मेरा राजमन्दिर में भोग भोगना महापाप है।

हाय! मेरा इस कुमार्गी पति के साथ क्यों कर सम्बन्ध हो गया? युवती होने पर मैं मर क्यों न गयी? अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ! कहाँ रहूँ! हाय! यह मेरा प्राण पखेरु क्यों नहीं जल्दी विदा होता? प्रभो! मैं बड़ी अभागिनी हूँ। मेरा अब कैसे भला होगा! छोटे गाँव, वन, पर्वतों में रहना अच्छा किन्तु जिनधर्मरहित अति वैभवयुक्त भी इस राजमन्दिर में रहना ठीक नहीं। हाय दुर्दैव! तूने मुझ अभागिनी पर ही अपना अधिकार जमाया।

रानी चेलना का इस प्रकार रोदन सुन महाराज का पत्थर-हृदय मोम सरीखा पिघल गया। अब महाराज के चेहरे से प्रसन्नता कोसों दूर उड़ गयी। उस समय उनसे और कुछ न बन सका। वे इस रीति से रानी को समझाने लगे—

प्रिये! तू इस बात के लिये जरा भी शोक न कर, वह मुनि गले से सर्प फेंककर कब का कहाँ चला गया होगा। मृत सर्प का गले से निकालना कोई कठिन नहीं है।

महाराज के ये वचन सुन रानी ने कहा—

नाथ! आपका यह कथन भ्रममात्र है। मेरा विश्वास है यदि वे मेरे सच्चे गुरु हैं तो कदापि उन्होंने अपने गले से सर्प न निकाला होगा। कृपानाथ! अचल भी मेरुपर्वत कदाचित् चलायमान हो जाये, मर्यादा का नहीं त्यागी भी समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, किन्तु जब दिगम्बर मुनि ध्यानैकतान हो जाते हैं, उस समय उन पर घोरतम भी उपसर्ग क्यों न आ जाए, कदापि अपने ध्यान से विचलित नहीं होते।

प्राणनाथ! क्षमाभूषण से भूषित दिगम्बर मुनि अचल तो पृथ्वी के समान होते हैं और समुद्र के समान गम्भीर, वायु के समान निष्परिग्रह, अग्नि के समान कर्म भस्म करनेवाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान स्वच्छ चित्त के धारक, एवं मेघ के समान परोपकारी होते हैं।

प्रभो! आप विश्वास रखें, जो गुरु परम ज्ञानी परमध्यानी दृढ़ वैरागी होंगे, वे ही मेरे गुरु होंगे किन्तु इनसे विपरीत परीषहों से भय करनेवाले, अति परिग्रही, व्रत, तप आदि से शून्य, मधु, माँस, मदिरा के लोलुपी, एवं महापापी जो गुरु हैं, सो मेरे गुरु नहीं।

जीवन सर्वस्व ! ऐसे गुरु आपके ही हैं, न जाने जो परम परीक्षक एवं अपनी आत्मा के हितैषी हैं, वे कैसे इन गुरुओं को मानते हैं ?—उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं ?

रानी के ऐसे युक्तिपूर्ण वचन सुन राजा का चित्त मारे भय के काँप गया ! उस समय और कुछ न कहकर उनके मुख से ये ही शब्द निकले—

प्रिये ! इस समय जो तुमने कहा है बिल्कुल सत्य कहा है, अब विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। अब एक काम करो। जहाँ पर मुनिराज विराजमान हैं, वहाँ पर हम दोनों शीघ्र चलें और उन्हें जाकर देखें।

रानी तो जाने को तैयार ही थी। उसने उसी समय चलना स्वीकार किया एवं इधर रानी तो अपनी तैयारी करने लगी, उधर महाराज ने मुनिदर्शनार्थ शीघ्र ही नगर में डोंडी पिटवा दी तथा जिस समय रानी पीनस में बैठी वन की ओर चलने लगी, महाराज भी एक विशाल सेना के साथ उनके पीछे घोड़े पर सवार हो चल दिये और रात ही रात में अनेक हाथी-घोड़ों से वेष्टित वे दोनों दम्पति शीघ्र ही मुनिराज के पास जा दाखिल हो गये।

यह नियम है कि मुनियों पर जब उपसर्ग आता है, तब वे अनित्य आदि बारह भावनाओं का चिन्तन करने लग जाते हैं। ज्यों ही मुनि यशोधर के गले में सर्प पड़ा, वे इस प्रकार भावना भा निकले—राजा ने जो मेरे गले में सर्प डाला है, सो मेरा बड़ा उपकार किया है, क्योंकि जो मुनि अपनी आत्मा से समस्त कर्मों का नाश करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे अवश्य कर्मों की उदीरणा के लिए परीषह सहें।

यह राजा मेरा बड़ा उपकारी है। इसने अपने आप परीषहों की सामग्री मेरे लिये एकत्रित कर दी है। यह देह मुझसे सर्वथा भिन्न है, कर्म से उत्पन्न हुई है, और मेरी आत्मा समस्त कर्मों से रहित पवित्र है, चैतन्यस्वरूप है। शरीर में क्लेश होने पर भी मेरी आत्मा क्लेशित नहीं बन सकती। यद्यपि यह शरीर अनित्य है, महा अपावन है, मल-मूत्र का घर है, घृणित है, तथापि न मालूम विद्वान लोग क्यों इसे अच्छा समझते हैं? इत्र फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थों से क्यों इसका पोषण करते हैं।

यह बात बराबर देखने में आती है कि जब आत्माराम इस शरीर से विदा होता है, उस समय कोस, दो कोस की तो बात ही क्या है, पगभर भी यह शरीर उसके साथ नहीं जाता, इसलिए यह शरीर मेरा है—ऐसा विश्वास सर्वथा निर्मूल है। मनुष्य जो यह कहते हैं कि शरीर में सुख-दु:ख होने पर आत्मा सुखी-दु:खी होता है यह भी बात उनकी सर्वथा निर्युक्तिक है क्योंकि जिस प्रकार झोंपड़े में अग्नि लगने पर झोंपड़ा ही जलता है, तदन्तर्गत आकाश नहीं जलता; उसी प्रकार शारीरिक दु:ख-सुख मेरी आत्मा को दु:खी सुखी नहीं बना सकते।

मैं ध्यानबल से आत्मा को चैतन्यस्वरूप शुद्ध निष्कलंक समझता हूँ और मेरी दृष्टि में शरीर जड़, अशुद्ध, चर्मावृत्त, मल मूत्र आदि का घर, अनेक क्लेश देनेवाला है। मुझे कदापि इसे अपनाना नहीं चाहिए। इस प्रकार भावनाओं का चिन्तन करते हुए मुनिराज, जैसे उन्हें राजा छोड़ गया था, वैसे ही खड़े रहे और गम्भीरतापूर्वक परीषह सहते रहे।

सत्य सिद्धान्त पर आरूढ़ रहने पर मनुष्य कहाँ तक दास नहीं

बनते हैं ? जिस समय राजा-रानी ने मुनि को ज्यों का त्यों देखा, मारे आनन्द के उनका शरीर रोमांचित हो गया। उन दोनों ने शीघ्र ही समानभाव से मुनिराज को नमस्कार किया एवं उनकी प्रदक्षिणा की।

मुनि के दु:ख से दु:खित, किन्तु उनके ध्यान की अचलता से हर्षितचित्त एवं प्रशम, संवेग आदि सम्यक्त्व गुणों से भूषित, रानी चेलना ने शीघ्र ही चींटियाँ दूर कीं। चींटियों ने मुनिराज का शरीर खोखला कर दिया था, इसलिए रानी ने एक मुलायम वस्त्र से अवशिष्ट कीड़ियों को भी दूर कर उसे गरम पानी से धोया और सन्ताप की निवृत्ति के लिए उस पर शीतल चन्दन आदि का लेप कर दिया* एवं मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मुनिराज की ध्यानमुद्रा पर आश्चर्य करनेवाले, उनके दर्शन से अतिशय सन्तुष्ट, वे दोनों दम्पति आनन्दपूर्वक उनके सामने भूमि पर बैठ गये।

यह नियम है कि दिगम्बर साधु रात में नहीं बोलते, इसलिए जब तक रात्रि रही मुनिराज ने किसी प्रकार वचनालाप न किया किन्तु ज्यों ही दिन का उदय हुआ और अन्धकार को तितर-बितर करते हुए ज्यों ही सूर्य महाराज प्राची दिशा में आ जमा, रानी ने शीघ्र ही मुनिराज के चरणों का प्रक्षालन किया एवं परमज्ञानी, परमध्यानी, जर्जर शरीर के धारक, मुनिराज की फिर से तीन प्रदक्षिणा दीं, और उनके चरणों की भक्तिभाव से पूजा कर अपने पाप की शांति के लिये वह इस प्रकार स्तुति करने लगी—

प्रभो! आप समस्त संसार में पूज्य हैं। अनेक गुणों के भण्डार

* **यद्यपि स्त्रियों को मुनिराज से सात हाथ दूर रहने का विधान है, तथापि यहाँ उपसर्गजन्य स्थिति एवं अन्य कोई मार्ग शेष न रहने से ही रानी चेलना को स्वयं मुनिराज का उपसर्ग दूर करने हेतु यह कार्य करने पड़े। इसे 'आपत्तिकाल में मर्यादा नहीं' के रूप में ही देखना चाहिए।**

हैं। आपकी दृष्टि में शत्रु-मित्र समान हैं। दीनबन्धो! सुमार्ग से विमुख जो मनुष्य आपके गले में सर्प डालनेवाले हैं और जो आपको फूलों के हार पहिनानेवाले हैं, आपकी दृष्टि में दोनों ही समान हैं।

कृपासिन्धो! आप स्वयं संसार-समुद्र के पार पर विराजमान हैं एवं जो जीव दु:खरूपी तरंगों से टकराकर संसाररूपी बीच समुद्र में पड़े हैं, इन्हें भी आप ही तारनेवाले हैं। जीवों के कल्याणकारी आप ही हैं। करुणासिन्धो! अज्ञानवश आपकी जो अवज्ञा और अपराध बन पड़ा है, आप उसे क्षमा करें।

कृपानाथ! यद्यपि मुझे विश्वास है कि आप राग-द्वेषरहित हैं, आपसे किसी का अहित नहीं हो सकता, तथापि मेरे चित्त में जो अवज्ञा का संकल्प बैठा है, वह मुझे सन्ताप दे रहा है; इसीलिए यह मैंने आपकी स्तुति की है। प्रभो! आप मेघतुल्य जीवों के परोपकारी हैं, आप ही धीर और वीर हैं एवं शुभ भावना भावनेवाले हैं। इस प्रकार रानी द्वारा भले प्रकार मुनि की स्तुति समाप्त होने पर राजा-रानी ने भक्तिपूर्वक फिर मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया और यथास्थान बैठ गये एवं मुनिराज ने भी अतिशय नम्र दोनों दम्पति को समानभाव से धर्मवृद्धि दी तथा इस प्रकार उपदेश देने लगे—

विनीत मगधेश! संसार में यदि जीवों का परममित्र है तो धर्म ही है। इस धर्म की कृपा से जीवों को अनेक प्रकार के ऐश्वर्य मिलते हैं, उत्तम कुल में जन्म मिलता है और संसार का नाश भी धर्म की ही कृपा से होता है। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे सदा उत्तम धर्म की आराधना करें।

❀ ❀ ❀

देखो, भाग्य का माहात्म्य! यहाँ तो परमपवित्र मुनि यशोधर

का दर्शन और बौद्ध धर्म का परमभक्त? कहाँ मगधेश राजा श्रेणिक? तथा कहाँ तो रानी चेलना द्वारा बौद्ध धर्म की परीक्षा और कहाँ महाराज श्रेणिक का परीक्षा से क्रोध! कहाँ तो श्रेणिक का मुनिराज के गले में सर्प गिराना और कहाँ फिर रानी द्वारा उपदेश? एवं कहाँ तो रात्रि में राजा-रानी का वन गमन और कहाँ समान रीति से धर्मवृद्धि का मिलना? ये सब बातें उन दोनों दम्पति को शुभ-अशुभ भाग्योदय से प्राप्त हुईं।

मुनि यशोधर ने जो धर्मवृद्धि दी थी, वह साधारण न थी किन्तु स्वर्ग-मोक्ष आदि सुख प्रदान करनेवाली थी—संसार से पार करनेवाली थी, तीर्थंकर चक्रवर्ती इन्द्र-अहमिन्द्र आदि पदों की प्रदात्री थी एवं 'महाराज आगे तीर्थंकर होंगे' इस बात को प्रकट करनेवाली थी और धर्म से विमुख महाराज को धर्म-मार्ग पर लानेवाली थी।

इस प्रकार भविष्यत् काल में होनेवाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के भवान्तर के जीव महाराज श्रेणिक को मुनिराज का समागम वर्णन करनेवाला नववाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दसवाँ सर्ग

मनोगुप्ति-वचनगुप्ति की कथाओं का वर्णन

समस्त मुनियों के स्वामी, कर्मरहित निर्मल आत्मा के ज्ञाता, समस्त कर्मों के नाशक, मनुष्येश्वर महाराज श्रेणिक द्वारा पूजित, मैं श्री यशोधर मुनि को नमस्कार करता हूँ।

ज्यों ही महाराज श्रेणिक का इस ओर लक्ष्य गया कि मुनि यशोधर ने हम दोनों को समान रीति से ही धर्मवृद्धि दी है, धर्मवृद्धि देते समय मुनिराज ने शत्रु-मित्र का कुछ भी विभाग नहीं किया है, इनकी हम दोनों पर कृपा भी एक-सी जान पड़ती है, तो महाराज एकदम अवाक रह गये। तत्काल उनका मन संकल्प-विकल्पों से व्याप्त हो गया। वे खिन्न हो ऐसा विचारने लगे—

मुनि यशोधर को धन्य है। गले में सर्प पड़ने पर अनेक पीड़ा सहन करते हुए भी इन्होंने उत्तम क्षमा को नहीं छोड़ा। रानी चेलना ने गले से सर्प निकाल, इनकी भक्तिभाव से सेवा की और मैंने इनके गले में सर्प डाला, इनकी अनेक प्रकार से हँसी की एवं इनकी कुछ भी भक्ति भी न की तो भी मुनिराज का भाव हम दोनों पर समान ही प्रतीत हो रहा है।

हाय! मैं बड़ा नीच नराधम हूँ, जो कि मैंने ऐसे परमयोगी की यह अवज्ञा की। देखो, कहाँ तो परमपवित्र यह मुनिराज का शरीर! और कहाँ मैं इसका विधातेच्छु! हाय! मुझे सहस्त्रबार धिक्कार है। संसार में मेरे समान कोई वज्रपापी न होगा। अरे! अज्ञानवश मैंने यह क्या अनर्थ कर डाले?

अब कैसे इन पापों से मेरा छुटकारा होगा? हाय! मुझे अब

नियम से नरक आदि घोर दुर्गतियों में जाना पड़ेगा। अब नियम से वहाँ के दु:ख भोगने पड़ेंगे। अब मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ? इस कमाये हुए पाप का पश्चात्ताप कैसे करूँ, अब पाप निवृत्त्यर्थ मेरा उपाय यही श्रेयस्कार होगा कि मैं खड्ग से अपना सिर काटूँ और मुनिराज के चरणों में गिरकर समस्त पापों का शमन करूँ।

कृपासिन्धो! मेरे अपराध क्षमा करिये, मुझे दुर्गति से बचाइये— इस प्रकार विचार करते-करते मारे लज्जा के महाराज का मस्तक नत हो गया। मारे दु:ख से उनकी आँखों से अश्रुबिन्दु टपक पड़े!

मुनिराज परमज्ञानी थे। उन्होंने शीघ्र ही राजा के मन का तात्पर्य समझ लिया एवं महाराज को सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहने लगे—

नरनाथ! तुम्हें किसी प्रकार का विपरीत विचार नहीं करना चाहिए। पाप विनाशार्थ जो तुमने आत्महत्या का विचार किया है, वह ठीक नहीं। आत्महत्या से रंचमात्र भी पापों का नाश नहीं हो सकता। इस कर्म से उल्टा घोर पाप का बन्ध ही होगा।

मगधेश! अज्ञानवश जो जीव तलवार, विष आदि से अपने आत्मा का घात कर लेते हैं, वे यद्यपि मरण के पहिले समझ तो यह लेते हैं कि हमारा आत्मा कष्टों से मुक्त हो जाएगा, परभव में हमें सुख मिलेंगे किन्तु उनकी यह बड़ी भूल समझनी चाहिए। आत्मघात से कदापि सुख नहीं मिल सकता। आत्मघात से परिणाम संक्लेशमय हो जाते हैं, संक्लेशमय परिणामों से अशुभ बन्ध होता है और अशुभ बन्ध से नरक आदि घोर दुर्गतियों में जाना पड़ता है।

राजन्! यदि तुम अपना हित ही करना चाहते हो तो इस अशुभ संकल्प को छोड़ो, अपनी आत्मा की निन्दा करो एवं इस पाप का

शास्त्र में जो प्रायश्चित लिखा है, उसे करो। विश्वास रखो कि पापों से मुक्त होने का यही उपाय है। आत्महत्या से पापों की शान्ति नहीं हो सकती।

मुनिराज के ये वचन सुनकर तो महाराज अचम्भे में पड़ गये। वे महारानी के मुँह की ओर ताककर कहने लगे—सुन्दरी! यह बात क्या हुई? मुनिराज ने मेरे मन का अभिप्राय कैसे जान लिया? अहा! ये मुनि साधारण मुनि नहीं किन्तु कोई महामुनि हैं।

महाराज के मुख से यह बात सुन रानी चेलना ने कहा—

नाथ! हाथ की रेखा के समान समस्त पदार्थों को जाननेवाले क्या इन मुनिराज की ज्ञान-विभूति को आप नहीं जानते?

प्राणनाथ! आपके मन की बात मुनिराज ने अपने परम पवित्र ज्ञान से जान ली है। आप आश्चर्य न करें, मुनिराज को आपके अन्तरंग की बात का पता लगना कोई कठिन बात नहीं। अरे! ये तो आपके भवान्तर का हाल भी बता सकते हैं। यदि आपको इच्छा है तो पूछिये। आप इनके ज्ञान की अपूर्व महिमा समझें।

रानी चेलना से मुनिराज के ज्ञान की यह अपूर्व महिमा सुनकर अब तो महाराज गद्गद् कण्ठ हो गये। अपनी आँखों से आनन्दाश्रु पोंछते हुए वे मुनिराज से इस प्रकार निवेदन करने लगे—

हे कृपासिन्धो! मैं परभव में कौन था? किस योनि से मैं इस जन्म में आया हूँ? कृपया मेरे पूर्वभव का विस्तारपूर्वक वर्णन कहें। इस समय मैं अपने भवान्तर के चरित्र सुनने के लिये अति आतुर एवं उत्सुक हूँ।

अतिविनयी महाराज श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने

कहा—राजन्! यदि तुम्हें अपने चरित्र सुनने की इच्छा है तो तुम ध्यानपूर्वक सुनो, मैं कहता हूँ—

❁ ❁ ❁

इसी लोक में लाख योजन चौड़ा, द्वीपों का सिरताज, अपनी गोलाई से चन्द्रमा की गोलाई को नीचे करनेवाला जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप में सुवर्ण के रंग का सुमेरु नाम का पर्वत है। सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में जो विजयार्द्ध पर्वत से छह खण्डों में विभक्त है, भरतक्षेत्र है।

भरतक्षेत्र में एक अति रमणीय स्थान जो कि स्वर्ग के निरालम्ब होने के कारण, पृथ्वी पर गिरा हुआ स्वर्ग का टुकड़ा ही है क्या! ऐसी मनुष्यों को भ्रान्ति करनेवाला आर्यखण्ड है। आर्यखण्ड में अपनी कान्ति से सूर्यकान्ति को तिरस्कृत करनेवाला, जगद्विख्यात, समस्त देशों का शिरोमणि सूर्यकान्त देश है। सूर्यकान्त देश में कुक्कुट-सम्पात्य ग्राम है। मनोहर पुरुषों के चित्तों को अनेक प्रकार से आनन्द प्रदान करनेवाली उत्तमोत्तम स्त्रियाँ हैं। सर्वदा यह देश उत्तमोत्तम धान्य, सोना, चाँदी आदि पदार्थों से शोभित और ऊँचे-ऊँचे धनिक गृहों से व्याप्त रहता है।

इसी देश में एक नगर जो कि उत्तमोत्तम बावड़ी, कूप एवं स्वादिष्ट धान्यों से शोभित सूरपूर है। सूरपूर के बाजार में जिस समय रत्नों की ढेरी नजर आती है, उस समय यही मालूम होता है मानो पानी रहित साक्षात् समुद्र आकर ही इसकी सेवा कर रहा है! और जब ऊँचे-ऊँचे धनिक गृहों की शिखर पर सुवर्ण कलश देखने में आते हैं, तब वह जान पड़ता है, मानो चन्द्रमा इस नगरी की सदा सेवा करता रहता है।

वहाँ पर भक्तिभाव से उत्तमोत्तम जिनालयों में भगवान की पूजाकर भव्य जीव अपने पापों का नाश करते हैं और मयूर जिस समय गवाक्षों से निकला हुआ सुगन्धित धुंआ देखते हैं तो उसे मेघ समझ असमय ही नाचने लग जाते हैं, एवं वहाँ कई एक भव्य जीव संसार भोगों से विरक्त हो सर्वदा के लिये कर्मबन्धन से छूट जाते हैं।

सूर्यपुर का स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजापालक एवं शत्रुओं को भयावह था, राजा मित्र था। राजा मित्र की पटरानी श्रीमती थी। श्रीमती वास्तव में अतिशय शोभायुक्त होने से श्रीमती ही थी। महाराज मित्र के श्रीमती रानी से उत्पन्न कुमार सुमित्र था। सुमित्र नीतिशास्त्र का भले प्रकार वेत्ता, विवेकी, सच्चरित्र और विशाल किन्तु मनोहर नेत्रों से शोभित था। राजा मित्र के मन्त्री का नाम मतिसागर था, जो कि नीतिमार्गानुसार राज्य की सम्भाल रखता था।

मन्त्री मतिसागर के मनोहर रूप की खानि, रूपिणी नाम की भार्या थी और रूपिणी से उत्पन्न पुत्र सुषेण था। सुषेण माता, पिता को सदा सुख देता था और प्रत्येक कार्य को विचारपूर्वक करता था। राजा मित्र का पुत्र सुमित्र और सुषेण दोनों समवयस्क थे। इसलिए वे दोनों आपस में खेला करते थे। सुमित्र को अभिमान अधिक था। वह अभिमान में आकर सुषेण को बड़ा कष्ट देता था, अनेक प्रकार की अवज्ञा भी किया करता था।

एकदिन सुमित्र और सुषेण किसी बावड़ी पर स्नानार्थ गये। वे दोनों कमलपत्र से मुँह ढाँक बारबार जल में डुबकी मारने लगे। सुमित्र बड़ा कौतूहली था। सुषेण को बारबार डुबाता था और खूब हंसी करता था। सुमित्र के इस बर्ताव से यद्यपि सुषेण को दुःख होता था किन्तु राजा मित्र के भय से वह कुछ नहीं कहता था।

उदासीन भाव से उसके सर्व अनर्थ सहता था।

कदाचित् राजा का शरीरान्त हो जाने से सुमित्र राजा बन गया। सुमित्र को राजा बन जाना मन्त्रीपुत्र सुषेण को अति चिन्ता का विषय हो गया। वह विचारने लगा—सुमित्र की प्रकृति क्रूर है। यह दुष्ट मुझे बालकपन में बड़े कष्ट देता था। अब तो यह राजा हो गया, मुझे अब यह और भी अधिक कष्ट देगा, इसलिए अब सबसे अच्छा यही होगा कि इसके राज्य में न रहना, ऐसा विचार कर सुषेण ने शीघ्र ही कुटुम्ब से मोह तोड़ दिया एवं वन में जाकर जैन दीक्षा धारण कर वे उग्र तप करने लगे।

जब से सुषेण मुनिराज वन में गये, तब से वे राजमन्दिर न आये। राजा सुमित्र भी राज पाकर आनन्द से भोग भोगने लगे। उनको भी सुषेण की कुछ याद न आयी। कदाचित् राजा सुमित्र एकान्त स्थान में बैठे थे कि उन्हें अचानक ही सुषेण की याद आ गयी। सुषेण का स्मरण होते ही उन्होंने शीघ्र ही किसी पार्श्वचर (सिपाही) से पूछा—कहो भाई! आजकल मेरे परमपवित्र मित्र सुषेण राजमन्दिर में नहीं आते, वे कहाँ रहते हैं और क्यों नहीं आते? महाराज के मुख से सुषेण के बावत वचन सुन पार्श्वचर ने कहा—

कृपानाथ! सुषेण तो दिगम्बर दीक्षा धारण कर मुनि हो गये। अब उन्होंने समस्त संसार से मोह छोड़ दिया। वे आजकल वन में रहते हैं, इसलिए आपके मन्दिर में नहीं आते।

पार्श्वचर के मुख से अपने प्रियमित्र सुषेण का यह समाचार सुन राजा सुमित्र बड़े दु:खी हुए। उन्हें सुषेण की अब बड़ी याद आने लगी।

कदाचित् राजा सुमित्र को यह पता लगा कि मुनिराज सुषेण

सूरपूर के उद्यान में आ विराजे हैं, उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। मुनिराज के आगमन श्रवण से राजा सुमित्र का चित्तरूप कमल विकसित हो गया। उन्होंने मुनिराज के दर्शनार्थ शीघ्र ही नगर में ढिंढ़ारा पिटवा दिया एवं स्वयं भी एक उन्नत गज पर सवार हो बड़े ठाटबाट से मुनि दर्शन के लिये गये। ज्यों ही राजा सुमित्र का हाथी वन में पहुँचा, वे गज से उतर पड़े। मुनिराज सुषेण के पास जाकर उनकी तीन प्रदक्षिणा दीं, अति विनय से नमस्कार किया एवं प्रबल मोह के उदय से सुषेण की मुनि मुद्रा की ओर कुछ न विचार कर वे यह कहने लगे—

प्रिय मित्र! मेरा राज्य विशाल राज्य है। शुभकर्म के उदय से मुझे वह मिल गया है। ऐसे विशाल राज्य की कुछ भी परवाह न कर मेरे बिना पूछे आप मुनि बन गये, यह ठीक न किया, आपको आधा राज्य ले भोग भोगने थे। अब भी आप इस पद का परित्याग कर दें। भला संसार में ऐसा कौन बुद्धिमान होगा, जो शुभ एवं प्रत्यक्ष सुख देनेवाले राज्य को छोड़ दुर्धर तप आचरण करेगा?

राजा सुमित्र के मुख से ये मोहपूर्ण वचन सुन मुनिराज सुषेण ने कहा—

राजन्! मैं अपने आत्मा को शान्तिमय अवस्था में लाना चाहता हूँ। परभव में मेरा आत्मा शान्तिस्वरूप का अनुभव करे, इसलिए मैंने यह तप धारण करना प्रारम्भ कर दिया है। मुझे विश्वास है कि उत्तम तप की कृपा से मनुष्यों को स्वर्ग-मोक्ष सुख मिलते हैं। इसकी कृपा से राज्य, उत्तमोत्तम विभूतियाँ, उत्तम यश एवं उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

मुनिराज सुषेण के मुख से ये वचन सुन राजा सुमित्र ने और तो

कुछ न कहा किन्तु इतना निवेदन और भी किया—

मुनिनाथ! यदि आप तप छोड़ना नहीं चाहते तो कृपाकर आप मेरे राजमन्दिर में भोजनार्थ जरूर आवें और मेरे ऊपर कृपा करें।

राजा के ये वचन भी मोह-परिपूर्ण जान मुनिवर सुषेण ने कहा—

नरनाथ! मैं इस काम के करने के लिये भी सर्वथा असमर्थ हूँ। दिगम्बर मुनियों को इस बात की पूर्णतया मनाही है। वे संकेतपूर्वक आहार नहीं ले सकते। आप निश्चय समझिये कि भोजन मन-वचन-काय द्वारा स्वयं किया, एवं पर से कराया गया, और पर को करते देख 'अच्छा है' इत्यादि अनुमोदनापूर्वक होगा, दिगम्बर मुनि उस भोजन को कदापि न करेंगे किन्तु उनके योग्य वही भोजन हो सकता है जो प्रासुक होगा, उनके उद्देश से न बना होगा और विधिपूर्वक होगा।

राजन्! दिगम्बर मुनि अतिथि हुआ करते हैं। उनके आहार की कोई तिथि निश्चित नहीं रहती। मुनि निमन्त्रण आमन्त्रणपूर्वक भी भोजन नहीं कर सकते। आप विश्वास रखिये जो मुनि निश्चित तिथि में निमन्त्रणपूर्वक आहार करनेवाले हैं, कृत-कारित-अनुमोदना का कुछ भी विचार नहीं रखते, वे मुनि नहीं; जिह्वा के लोलुपी हैं, एवं वज्र मूर्ख हैं। हाँ! यदि मेरे योग्य जैन शास्त्र से अविरुद्ध कोई काम हो तो मैं कर सकता हूँ।

मुनिराज की दृष्टि सांसारिक कामों से ऐसी उपेक्षायुक्त देख राजा सुमित्र ने कुछ भी जवाब न दिया। उसने शीघ्र ही मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया एवं हताश हो चुपचाप राजमन्दिर की ओर चल दिया।

यद्यपि राजा सुमित्र हताश हो राजमन्दिर में तो आ गये किन्तु उनका सुषेण विषयक मोह कम न हुआ। उनके मन में मोह का यह अंकुर खड़ा ही रहा कि किसी रीति से मुनि सुषेण राजमन्दिर में आहार लें, इसलिए ज्यों ही वह राजमन्दिर में आया कि शीघ्र ही उसने यह समझ कि मुनि सुषेण को जब अन्यत्र आहार न मिलेगा तो मेरे यहाँ जरूर आहार ग्रहण करेंगे; नगर में यह कड़ी आज्ञा कर दी कि सुषेण मुनि को कोई आहार न दे और स्वयं प्रतिदिन मुनि सुषेण की राह देखता रहा।

कई दिन बाद मुनिराज सुषेण दो पक्ष की पारणा के लिये नगर में आहारार्थ आये। वे विधिपूर्वक उधर गृहस्थों के घर गये किन्तु राजा की आज्ञा से किसी ने उन्हें आहार नहीं दिया। अन्त में सम्यग्दर्शनादि गुणों से भूषित विद्वान, आहार के न मिलने पर भी प्रसन्नचित्त, मुनि सुषेण जूरा प्रमाण भूमि को निरखते राजमन्दिर की ओर आहारार्थ चल दिये।

इधर मुनिराज का तो राजमन्दिर में प्रवेश हुआ और इधर राजा सुमित्र की सभा में राजा वैर का एक दूत आ पहुँचा। दूत मुख से समाचार सुन सुमित्र अति व्याकुल हो गये। चित्त की घबड़ाहट से वे मुनिराज को न देख सके। अन्य किसी ने मुनिराज को आहार दिया नहीं, इसलिए अपना प्रबल अन्तराय जान मुनिराज तत्काल वन को लौट गये एवं उन्होंने दो पक्ष का प्रोषध व्रत धारण कर लिया।

जब दो पक्ष समाप्त हो गये तो फिर मुनिराज आहार को आये और उसी तरह समस्त गृहस्थों के घर घूमकर वे राजमन्दिर की ओर गये। ज्यों ही मुनिराज राजमन्दिर के पास पहुँचे, त्यों ही राजा सुमित्र के हाथी ने बन्धन तोड़ दिया एवं जनसमुदाय को व्याकुल

करता हुआ वह नगर में उपद्रव करने लगा। इसलिए इस भयंकर दृश्य से अपना भोजनान्तराय समझ मुनिराज फिर वन को लौट गये। उस दिन भी उनको आहार न मिला। वन में जाकर फिर उन्होंने दो पक्ष का प्रोषधव्रत धारण कर लिया।

प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने पर मुनिराज फिर भी दो पक्ष बाद नगर में आये, गृहस्थों के घरों में आहार न पाकर वे राजमन्दिर में आहारार्थ गये। इधर मुनिराज का तो राजमन्दिर में आगमन हुआ और उधर राजमन्दिर में बड़े जोर से अग्नि जल उठी। अग्निज्वाला देख राजा सुमित्र आदि घबड़ा गये। उस दिन भी राजा सुमित्र की दृष्टि मुनिराज पर न पड़ी एवं मुनिराज भी आहार का अन्तराय समझ वन की ओर चल दिये।

मुनिराज वन की ओर जा रहे थे। उनकी देह आहार के न मिलने से सर्वथा क्षीण हो चुकी थी—ज्यों ही गृहस्थों की दृष्टि मुनिराज पर पड़ी, मुनिराज का शरीर अति क्षीण देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे खुले शब्द में राजा सुमित्र की निन्दा करने लगे। देखो, यह राजा बड़ा दुष्ट है, इस समय यह मुनिराज के आहार में पूरा-पूरा अन्तराय कर रहा है। न यह दुष्ट स्वयं आहार देता है और न किसी दूसरे को देने देता है।

मनुष्यों को इस प्रकार बातचीत करते सुन मुनि सुषेण ईर्यापथ ध्यान से विचलित हो गये। आहार के न मिलने से मारे क्रोध के उनका शरीर लाल हो गया। वे विचारने लगे—देखो, इस राजा की दुष्टता! जिस समय मैं मुनि नहीं था, उस समय भी यह मुझे अनेक सन्ताप देता था और अब मैं मुनि हो गया, इसके साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध न रहा तो भी यह मुझे सन्ताप दिये बिना नहीं मानता।

ऐसा नीच चाण्डाल कोई राजा नहीं दीख पड़ता। इस प्रकार क्रोधान्ध हो मुनि सुषेण ने बड़े जोर से किसी पत्थर में लात मारी। मारते ही वे एकदम जमीन पर गिर गये और तत्काल उनके प्राण पखेरू उड़ गये एवं खोटे निदान से मुनि सुषेण व्यन्तर हो गये।

मुनि सुषेण की मृत्यु का समाचार राजा सुमित्र ने भी सुना। सुनते ही उनका चित्त अति आहत हो गया। सुमित्र व मन्त्री आदि सुषेण की मृत्यु पर अति शोक करने लगे। किसी दिन सुषेण की मृत्यु से सुमित्र के दु:ख की सीमा यहाँ तक बढ़ गयी कि उसने समस्त राज्य का परित्याग कर दिया, शीघ्र ही तापस के व्रत धारण कर लिये और आयु के अन्त में मरकर खोटे तप के प्रभाव से वह भी देव हो गये।

मगधेश! अब देवगति की आयु को समाप्त कर राजा सुमित्र का जीव तो श्रेणिक हुआ है और मुनि सुषेण का जीव अपने आयु कर्म के अन्त में रानी चेलना के गर्भ में आयेगा। वह कुणक नाम का धारक तेरा पुत्र होगा एवं तेरा पुत्र होकर भी वह तेरे लिये सदा शत्रु ही रहेगा।

मुनिराज यशोधर के मुख से अपने पूर्वभव का वह वृत्तान्त सुन राजा श्रेणिक को शीघ्र ही जातिस्मरण हो गया। जातिस्मरण के बल से उन्होंने शीघ्र ही अपने पूर्वभव का हाल वास्तविक रीति से जान लिया एवं मुनिराज के गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए वे ऐसा विचार करने लगे—

अहा!!! मुनि यशोधर का ज्ञान धन्य है। उत्तम क्षमा भी इनकी प्रशंसा के लायक है। परीपक्षों के जीतने में धीरता भी इनकी लोकोत्तर है। इनके प्रत्येक गुण पर विचार करने से यही बात जान पड़ता है

कि मुनि यशोधर सा परम ज्ञानी मुनि शायद ही संसार में होगा!

श्री जिनेन्द्र भगवान का शासन भी संसार में धन्य है। जिनागम में जो तत्त्व कहे गये हैं और उनका जिस रीति से स्वरूप वर्णन किया गया है, सर्वथा सत्य है। जिनोक्त जीवादितत्त्वों से भिन्न तत्त्व मिथ्या तत्त्व हैं। यशोधर मुनिराज अपने व्रत में सर्वथा दृढ़ हैं। साधुओं के वास्तविक लक्षण मुनि यशोधर में ही संघटित होते हैं। महाराज की विचार-सीमा अब और भी चढ़ गयी। वे मन ही मन यह भी कहने लगे—जो साधु भोले जीवों के वंचक हैं, विषय लम्पटी हैं, हाथी, घोड़ा, माल, खजाना, स्त्री आदि परिग्रहों के धारक हैं, वास्तविक ज्ञान-ध्यान से बहिर्भूत हैं, वे नाम के ही साधु हैं।

पाखण्डी साधु कदापि गुरु नहीं बन सकते। वे संसार-समुद्र में डुबानेवाले हैं। इस प्रकार विचार करते-करते महाराज श्रेणिक को अपनी आत्मा का कुछ वास्तविक ज्ञान हो गया। उन्होंने शीघ्र ही श्रावक के व्रत धारण कर लिये। रानी चेलना सहित महाराज श्रेणिक ने विनय से मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया एवं मुनिराज के गुणों में संलग्न चित्त से उनकी बारम्बार स्तुति करते हुए महाराज श्रेणिक और रानी चेलना आनन्दपूर्वक अपने राजमन्दिर की ओर चल दिये।

महाराज ने जिनधर्म की परमभक्त रानी चेलना के साथ बड़े ठाटबाट से राजमन्दिर में प्रवेश किया और अपनी कीर्ति से समस्त दिशायें सफेद करनेवाले महाराज भले प्रकार जिन भगवान की पूजा आराधना एवं उनके गुणों का स्तवन करते हुए राजमन्दिर में रहने लगे।

❀ ❀ ❀

कदाचित् बौद्ध साधुओं को इस बात का पता लगा कि महाराज श्रेणिक ने किसी जैन मुनि के उपदेश से जैनधर्म धारण कर लिया है, उनके परिणाम बौद्धधर्म से सर्वथा विमुख हो गये हैं, तो वे शीघ्र ही महाराज श्रेणिक के पास आये और ऐसा उपदेश देने लगे—

प्रिय मगधेश! यह बात सुनने में आयी है कि आपने बौद्धधर्म का सर्वथा परित्याग कर दिया है और आप जैनधर्म के परमभक्त हो गये हैं? यदि यह बात सत्य है तो आपने बड़ा अनर्थ एवं अविचारित काम कर डाला। हमें सन्देह होता है कि परम पवित्र, जीवों को यथार्थ सुख देनेवाले श्री बुद्ध देव के धर्म और यथार्थ तत्त्वों को छोड़कर निस्सार, जीवों के अहितकारक जैनधर्म पर आपने कैसे विश्वास कर लिया?

प्रजानाथ! स्त्रियों की अपेक्षा बुद्धिबल मनुष्य का अधिक होता है। इसलिए संसार में सर्वथा यही बात देखने में आती है कि यदि स्त्री किसी विपरीत मार्ग पर चलनेवाली हो तो चतुर पुरुष अपने बुद्धिबल से उसे सन्मार्ग पर ले आते हैं, किन्तु यह बात कहीं नहीं देखी कि स्त्री के कहने से वे विपरीत मार्गगामी हो जाए।

आप विश्वास रखिये कि जो मनुष्य स्त्री की बातों में अपने समीचीन मार्ग का त्याग कर देते हैं और विपरीत मार्ग को ही सम्यक् मार्ग समझने लग जाते हैं, वे मनुष्य विद्वानों की दृष्टि में चतुर नहीं समझे जाते। स्त्री के कहने में चलनेवाला मनुष्य आबाल-गोपाल निन्दाभाजन बन जाता है।

राजन्! आप बुद्धिमान हैं, प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करते हैं, तथापि न मालूम आपने कैसे स्त्री की बातों में फँसकर अपने पवित्र

धर्म का परित्याग कर दिया? हमें इस बात की कोई परवाह नहीं कि आप जैन बनें अथवा बौद्ध रहें, किन्तु यहाँ यह कहना हमें आवश्यकीय होता कि यदि आप जैन मुनियों की अपेक्षा बौद्ध साधुओं को अल्पज्ञानी समझते हैं तो आप कृपया फिर से इस बात का निर्णय कर लें, पीछे आप बौद्धधर्म का परित्याग कर दें।

मगधाधिश! हमें पूर्ण विश्वास है कि अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान के भण्डार, परम पवित्र बौद्ध साधुओं के सामने जैनधर्म सेवी मुनि कोई चीज़ नहीं और न बौद्धधर्म के सामने जैनधर्म ही कोई चीज़ है। याद रखिये, यदि आप यों ही बिना परीक्षा किये जैनधर्म धारण कर लेंगे और बौद्धधर्म छोड़ देंगे तो आपको अभी नहीं तो पीछे जरूर पछताना होगा।

प्रबल पवन के सामने भी अचल वृक्ष कहाँ तक चलायमान नहीं होता? कुतर्क से मनुष्य के सद्विचार कहाँ तक किनारा नहीं कर जाते! ज्यों ही महाराज ने बौद्धों का लम्बा-चौड़ा उपदेश सुना 'पानी के अभाव से जैसा अभिनव वृक्ष कुम्हाला जाता है' महाराज का जैनधर्मरूपी पौधा कुम्हला गया। अब उनका चित्त फिर डांवाडोल हो गया। उनके मन में फिर से जैनधर्म एवं जैन मुनियों की परीक्षा का विचार आकर सामने टकराने लगा।

कदाचित् महाराज ने जैन मुनियों की परीक्षार्थ राजमन्दिर में गुप्तरीति से एक गहरा गड्ढा खुदवाया और उसमें कुछ हड्डी, चर्म, आदि अपवित्र पदार्थ मँगाकर रखवा दिये और रानी से जाकर कहा—

कान्ते! अब मैं जैनधर्म का परिपूर्ण भक्त हो गया हूँ, मेरे समस्त विचार बौद्धधर्म से सर्वथा हट गये हैं। कदाचित् भाग्यवश यदि

कोई जैन मुनि राजमन्दिर में आहारार्थ आवें तो तू इस पवित्र मन्दिर में आहार देना, उनकी भक्ति-सेवा-सन्मान भी खूब करना।

रानी चेलना बड़ी पण्डिता थी। महाराज की यह आकस्मिक वनचभंगी सुन उसे शीघ्र ही इस बात का बोध हो गया कि महाराज ने जैन मुनियों की परीक्षार्थ अवश्य ही कुछ ढोंग रचा है और महाराज के परिणाम बौद्धधर्म की ओर फिर झुके हुए प्रतीत होते हैं।

कुछ दिन के पश्चात् भले प्रकार ईर्यासमिति के प्रतिपालक, परम पवित्र तीन मुनिराज राजमन्दिर में आहारार्थ आये। ज्यों ही महाराज की दृष्टि मुनियों पर पड़ी कि वे शीघ्र ही रानी के पास गये और कहने लगे—

प्रिये! मुनिराज राजमन्दिर में आहारार्थ आ रहे हैं। जल्दी तैयार हो उनका पड़गाहन कर। ऐसा कहकर वे स्वयं भी मुनियों के सामने आकर खड़े हो गये।

मुनिराज यथास्थान आकर ठहर गये। ज्यों ही रानी ने मुनिराज को देखा, विनम्र मस्तक हो उन्हें नमस्कार किया तथा महाराज द्वारा की हुई परीक्षा से जैनधर्म पर कुछ आघात न पहुँचे, यह विचार रानी ने शीघ्र ही विनय से कहा:—

हे मनोगुप्ति आदि त्रिगुप्ति पालक, पुरुषोत्तम, मुनिराजो! आप आहारार्थ राजमन्दिर में तिष्ठें।

उनमें से कोई भी मुनि त्रिगुप्ति का पालक था नहीं। सब दो-दो गुप्तियों के पालक थे, इसलिए ज्यों ही रानी के वचन सुने, उन्होंने शीघ्र ही अपनी दो-दो अंगुलियाँ उठा दीं तथा दो अंगुलियों के उठाने से रानी को यह जतलाकर—हे रानी! हम दो-दो गुप्तियों के ही पालक हैं—शीघ्र ही वन की ओर चल दिये।

उसी समय कोई गुणसागर नाम के मुनिराज भी पुर में आहारार्थ आये। मुनि गुणसागर को अवधिज्ञान के बल से राजा का भीतरी विचार विदित हो गया था, इसलिए वे सीधे राजमन्दिर में ही घुसे चले आये। मुनिराज पर रानी की दृष्टि पड़ी। उन्हें नतमस्तक हो, रानी ने नमस्कार किया एवं वह इस प्रकार कहने लगी—

हे त्रिगुप्तियों के पालक पुरुषोत्तम मुनिराज! आप राजमन्दिर में आहारार्थ ठहरें।

मुनि गुणसागर ने ज्यों ही रानी के वचन सुने, शीघ्र ही उन्होंने अपनी तीन अंगुलियाँ दिखा दीं। मुनिराज की तीन अंगुलियाँ देख रानी अति प्रसन्न हुई। उसने शीघ्र ही महाराज को अपने पास बुलाया, महाराज ने आकर भक्तिभाव से मुनिराज को नमस्कार किया। आगे बढ़कर मुनिराज को काष्ठासन दिया। उनका पड़गाहन (प्रतिगृहीत) किया, गरम पानी से उनके चरण प्रक्षालन किये एवं महाराज नतमस्तक हो उन्हें भोजनालय में आहारार्थ ले गये।

महाराज की प्रार्थनानुसार मुनिराज भोजनालय में गये तो सही, किन्तु ज्यों ही वे वहाँ पहुँचे कि अवधिज्ञान के बल से शीघ्र ही उन्हें गढ़े हुए हड्डी-चाम का पता लग गया। वे तत्काल ही यह कहकर कि राजन्! तेरा घर अपवित्र है, वहाँ से लौट पड़े और ईर्यापथ से जीवों की रक्षा करते हुए वन की ओर चले आये।

चारों मुनियों को इस प्रकार राजमन्दिर से बिना कारण लौटा देख राजा श्रेणिक आदि समस्त जन हाहाकार करने लगे। मुनियों का अलौकिक ज्ञान देख सब मनुष्यों के मुख से उनकी प्रशंसा निकलने लगी। महाराज श्रेणिक को भी इस बात का परम दुःख हुआ, वे शीघ्र रानी के पास आये और कहने लगे—

प्रिये ! यह क्या हुआ, मुनिराज अकारण ही क्यों आहार छोड़ चले गये ? कुछ जान नहीं पड़ता, शीघ्र कहो।

महाराज के ऐसे वचन सुन रानी ने उत्तर दिया—

नाथ ! मैं भी इस बात को न जान सकी, मुनिगण क्यों तो राजमन्दिर में आहारार्थ आये और क्यों फिर बिना आहार लिये चले गये। स्वामिन् ! चलिये, अपन शीघ्र ही वन चलें और जहाँ पर वे परम पवित्र यतीश्वर विराजमान हैं, वहाँ जाकर उन्हीं से यह बात पूछें।

रानी चेलना की मनोहर एवं संशयनिवारक यह युक्ति महाराज को पसन्द आ गयी। अतिशय तेजस्वी और मुनिदर्शनार्थ उत्कण्ठित वे दोनों दम्पति जहाँ मुनिराज विराजमान थे, वहीं गये। प्रथम ही प्रथम महाराज की दृष्टि मुनिवर धर्मघोष पर पड़ी। तत्काल वे दोनों दम्पति उनके पास गये। भक्तिपूर्वक उनके चरणों को नमस्कार किया, एवं अति विनय से महाराज ने यह पूछा—

प्रभो ! समस्त जगत के उद्धारक स्वामिन् ! मेरे शुभोदय से आप राजमन्दिर में आहारार्थ गये थे, किन्तु आप बिना आहार के ही चले आये। मैं यह न जान सका कि क्यों तो आप राजमन्दिर में आहारार्थ गये और क्यों लौट आये ? कृपा कर शीघ्र मेरे इस संशय को दूर करें। राजा के वचन सुन मुनिवर धर्मघोष ने कहा—

राजन् ! जब हम राजमन्दिर में आहारार्थ पहुँचे थे, हमें देख रानी चेलना ने यह कहा था—हे त्रिगुप्तिपालक मुनिराज ! आप मेरे राजमन्दिर में आहारार्थ विराजें। हम त्रिगुप्तिपालक थे नहीं, इसलिए हम वहाँ न ठहरे। हमारे न ठहरने का और दूसरा कोई कारण न था।

मुनिराज के ऐसे वचन सुन महाराज आश्चर्यसागर में गोता मारने लगे। वे सोचने लगे ये परमपवित्र मुनिराज किस गुप्ति के पालक नहीं हैं? ऐसा कुछ समय सोच-विचारकर महाराज ने शीघ्र ही मुनिराज से निवेदन किया—

कृपानाथ! क्या आपके तीनों ही गुप्ति नहीं हैं, अथवा कोई एक नहीं है तथा वह क्यों नहीं है? कृपया शीघ्र कहें।

महाराज श्रेणिक के ऐसे लालसायुक्त वचन सुनकर मुनिराज ने कहा—राजन्! हमारे मनोगुप्ति नहीं है। वह क्यों नहीं है? उसका कारण कहता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें।

❀ ❀ ❀

अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम नगरों से व्याप्त इसी जम्बूद्वीप में एक कलिंग नाम का देश है। कलिंग देश में अतिशय मनोहर बाजारों की श्रेणियों से व्याप्त एक दन्तपुर नाम का सर्वोत्तम नगर है। दन्तपुर का स्वामी जो कि नीतिपूर्वक प्रजा का पालक, मन्त्री और बड़े-बड़े सामन्तों से वेष्टित, सूर्य के समान प्रतापी था। वह मैं राजा धर्मघोष था। मेरी पटरानी का नाम लक्ष्मीमती था। रानी लक्ष्मीमती अति मनोहरा थी। समस्त रानियों में मेरी प्राणवल्लभा थी। चन्द्रमुखी एवं काममंजरी थी। हम दोनों दम्पति में गाढ़ प्रेम था, एक-दूसरे को देखकर जीते थे। यहाँ तक कि हम दोनों ऐसे प्रेम में मस्त थे कि हमको जाता हुआ काल भी नहीं मालूम होता था।

कदाचित् मुझे एक दिगम्बर गुरु के दर्शन का सौभाग्य मिला। मैंने उनके मुख से जैनधर्म का उपदेश सुना। उपदेश में मुनिराज के मुख से ज्यों ही मैंने संसार की अनित्यत, बिजली के समान विषयभोगों

की चपलता सुनी, मारे भय के मेरा शरीर कँप गया। कुछ समय पहिले जिन मैं भोगों को अच्छा समझता था, वे ही मुझे विष सरीखे जान पड़ने लगे। मैं एकदम संसार से उदास हो गया और उन्हीं मुनिराज के चरणकमलों में अविलम्ब जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।

इसी पृथ्वीतल में एक अति मनोहर कौशाम्बी नगरी है। कौशाम्बीपुरी के राजा का मन्त्री जो कि नीतिकला में अतिशय चतुर गरुड़वेग था। मन्त्री गरुड़वेग की प्रिय भार्या गरुड़दत्ता थी। गरुड़दत्ता परम सुन्दरी चन्द्रवदना एवं पतिभक्ता थी। किसी समय विहार करता-करता मैं कौशाम्बी नगरी में जा पहुँचा और वहाँ किसी दिन मन्त्री गरुड़वेग के घर आहारार्थ गया।

ज्यों ही गरुड़दत्ता ने मुझे अपने घर आते देखा, भले प्रकार मेरा विनय किया। आह्वानन कर काष्ठासन पर बैठाकर मेरे चरण प्रक्षालन किये एवं मन और इन्द्रियों को भले प्रकार सन्तुष्ट करनेवाला मुझे सर्वोच्च आहार दिया।

आहार देते समय गरुड़दत्ता के हाथ से एक कबल नीचे गिर गया। कवल गिरते ही मेरी दृष्टि भी जमीन पर पड़ी, ज्यों ही मैंने गरुड़दत्ता के पैर का अंगूठा जमीन पर देखा, मुझे अपनी प्रियतमा लक्ष्मीमती के अंगूठे की याद आयी। मेरे मन में अचानक यह विकल्प उठ खड़ा हुआ।

अहा! जैसा मनोहर अंगूठा रानी लक्ष्मीमती का था, वैसा ही इस गरुड़दत्ता का है। बस फिर क्या था? मेरे मन के चलित हो जाने से हे राजन्! आज तक मुझे मनोगुप्ति की प्राप्ति न हुई, इसलिए मैं मनोगुप्ति रहित हूँ।

ज्यों ही मुनिवर धर्मघोष के मुख से राजा श्रेणिक ने यह बात सुनी, उन्हें अति प्रसन्नता हुई। वे अपने मन में कहने लगे—समस्त पापों का नाशक जिनेन्द्रशासन धन्य है। सत्यवक्ता मुनिवर धर्मघोष भी धन्य हैं। अहा! जैसी सत्यता जैनधर्म में है, वैसी कहीं नहीं। इस प्रकार मुनिराज धर्मघोष की बार-बार प्रशंसा कर महाराज ने मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं वे दोनों दम्पति वहाँ से उठकर मुनिवर जिनपाल के पास गये और उन्हें सविनय नमस्कार कर राजा श्रेणिक ने पूछा—

भगवन्! आज आप आहारार्थ मेरे मन्दिर में गये थे, आपने मेरे मन्दिर में क्यों आहार न लिया? मुझसे ऐसा क्या घोर अपराध बन पड़ा था? कृपाकर मेरे इस सन्देह को शीघ्र दूर करें।

राजा श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मुनिराज जिनपाल ने भी वही उत्तर दिया जो मुनिवर धर्मघोष ने दिया था।

मुनिराज से यह उत्तर पाकर महाराज फिर अचम्भे में पड़ गये। मन में वे ऐसा सोचने लगे कि इन मुनिराज के कौन सी गुप्ति नहीं है, और वह क्यों नहीं है? कुछ समय ऐसा संकल्प-विकल्प कर उन्होंने मुनिराज से पूछा—

प्रभो! कृपया इस बात को स्पष्ट रीति से कहें। आपके कौनसी गुप्ति न थी और क्यों न थी? मेरे मन में अधिक संशय है। मुनिराज ने उत्तर दिया—

राजन! मेरे वचनगुप्ति न थी, वह क्यों न थी? उसका कारण सुनाता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।

❁ ❁ ❁

इसी पृथ्वीमण्डल पर समस्त पृथ्वी का तिलकसूत्र एक भूमितिलक नाम का नगर है। नगर भूमितिलक का अधिपति भले प्रकार प्रजा का रक्षक, अतिशय धर्मात्मा राजा वसुपाल था। वसुपाल की प्रिय भार्या धारिणी थी। रानी धारिणी अति मनोहरा, उत्तमोत्तम गुणों की आकर एवं काम भाव की जयपताका थी।

शुभ भाग्योदय से रानी धारिणी से उत्पन्न एक कन्या थी। जो कन्या चन्द्रबदना, मृगनयना, रतिरूपा, समस्त उत्तमोत्तम गुणों की आकार एवं अपनी शरीरकान्ति से अन्धकार को नाश करनेवाली थी और उसका नाम वसुकान्ता था।

उसी समय कौशाम्बीपुरी में एक चण्डप्रद्योतन नाम का प्रसिद्ध राजा राज्य करता था। चण्डप्रद्योतन अतिशय तेजस्वी वीर एवं विशाल सेना का स्वामी था।

कदाचित् कुमारी वसुकान्ता ने यौवन अवस्था में पदार्पण किया। राजा चण्डप्रद्योतन को इसके युवतीपने का पता लग गया। कुमारी के गुणों पर मुग्ध हो राजा चण्डप्रद्योतन ने शीघ्र ही राजा वसुपाल से उस पुत्री के लिये प्रार्थना की और उनके साथ बहुत कुछ प्रेम दिखाया, किन्तु राजा चण्डप्रद्योतन जैन न था, इसलिए राजा वसुपाल ने उसकी प्रार्थना न सुनी और पुत्री देने के लिये साफ इनकार कर दिया।

राजा चण्डप्रद्योतन ने यह बात सुनी तो उसने शीघ्र ही सेना सजाकर भूमितिलक की ओर प्रस्थान कर दिया। कुछ दिन बाद मंजिल दर मंजिल करता-करता राजा चण्डप्रद्योतन भूमितिलकपुर में आ पहुँचा। आते ही उसने अपनी सेना से समस्त नगर घेर लिया और लड़ाई के लिये तैयार हो गया।

राजा वसुपाल को इस बात का पता लगा तो उसने भी अपनी सेना सजवा ली। तत्काल वह चण्डप्रद्योतन से लड़ने के लिये निकल पड़ा और दोनों दल की सेना में भयंकर युद्ध होने लगा। मेघनाद मेघ शब्द से जैसे मयूर इधर-उधर नाचते फिरते हैं, मेघनाद (बिगुल) के शब्द सुनने से उस समय योद्धाओं की भी यही दशा हो गयी। रोष में आकर वे भी इधर-उधर घूमने लगे और एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। दोनों सेना का घोर संग्राम साक्षात् महासागर की उपमा को धारण करता था, क्योंकि महासागर जैसा पर्वतों से व्याप्त रहता है, संग्राम भी आहत हो पृथ्वी पर गिरे हुए हाथी रूपी पर्वतों से व्याप्त था। महासागर जैसा तरंगयुक्त होता है, संग्राम भी चंचल अश्वरूपी तरंगयुक्त था।

महासागर में जिस प्रकार महामत्स्य रहते हैं, संग्राम में भी पेनी तलवारों से कटे हुए मनुष्यों के मुखरूपी मत्स्य थे। महासागर जैसा जलपूर्ण रहता है वैसा संग्राम भी घावों से निकलते हुए रक्तरूपी जल से पूर्ण था। महासागर जैसा मणिरत्नों से व्याप्त रहता है, संग्राम भी मृतयोद्धाओं के दाँतरूपी मणिरत्नों से व्याप्त था। महासागर में जैसे भयंकर शब्द होते हैं, संग्राम में भी हाथियों के चित्काररूपी शब्द थे। महासागर जिस प्रकार बालू सहित होता है, संग्राम भी पीसी हुई हड्डीरूपी बालू सहित था।

महासमुद्र जैसे कीचड़ व्याप्त रहता है, संग्राम भी माँसरूपी कीचड़ से व्याप्त था। महासागर में जैसे मेंढ़क और कछुवे रहते हैं, संग्राम में भी वैसे ही कटे हुए घोड़ों के पैर, मेंढ़क और हाथियों के पैर कछुवे थे। महासागर जैसा खण्ड पर्वतयुक्त होता है, संग्राम में भी मृतशरीरों के ढ़ेर रूप खण्ड पर्वतयुक्त था! महासागर में जैसे

सर्प रहते हैं, संग्राम में भी कटी हुई हाथियों की पूंछें सर्प थीं। महासागर जैसा पवनपूर्ण रहता है, संग्राम भी योद्धाओं के श्वासोच्छवास रूप पवन से परिपूर्ण था। महासागर में जैसा वडवानल होता है, संग्राम में भी उसी प्रकार चमकते हुए चक्र वडवानल थे। महासागर जैसा बेलायुक्त होता है, उसी प्रकार संग्राम में भी समस्त दिशाओं में घूमते हुए योद्धारूपी वेला थीं।

सागर में जैसे नाव और जहाज होते हैं, संग्राम में भी घोड़ेरूपी नाव और जहाज थे, तथा संग्राम में खड्गधारी खड्गों से युद्ध करते थे। मुष्टियुद्ध करनेवाले मुष्टिओं से लड़ते थे। कोई-कोई आपस में केश पकड़कर युद्ध करते थे। अनेक वीर पुरुष भुजाओं से लड़ते थे। पैरों से लड़ाई करनेवाले पैरों से लड़ते थे। सिर लड़ानेवाले सुभट सिर लड़ाकर युद्ध करते थे।

बहुत से सुभट आपस में मुख भिड़ाकर लड़ते थे। गदाधारी और तीरंदाज गदाधारी और तीरंदाजों से लड़ते थे। घुड़सवार घुड़सवारों से, गजसवार गजसवारों से, रथसवार रथसवारों से, एवं प्यादे प्यादों से भयंकर युद्ध करते थे।

उस समय संग्राम में अनेक वीर पुरुष शब्दयुद्ध करनेवाले थे। इसलिए वे शब्दयुद्ध करते थे। लाठी चलानेवाले लाठियों से युद्ध करते थे एवं राजा राजाओं से युद्ध करते थे तथा शिलायुद्ध करनेवाले शिलाओं से, वाँस युद्ध करनेवाले सुभट वाँसों से, वृक्ष उखाड़कर युद्ध करनेवाले वृक्ष उखाड़र और हल के धारक हलों से युद्ध करते थे।

इस प्रकार दोनों राजाओं का आपस में कई दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्त में जब वसुपाल ने यह देखा कि राजा

चण्डप्रद्योतन जीता नहीं जा सकता तो उसे बड़ी चिन्ता हुई तथा वह उसके जीतने के लिये अनेक उपाय सोचने लगा।

कदाचित् विहार करता-करता उस समय मैं भी कौशाम्बी में जा पहुँचा। मैंने जो वन किले के बिल्कुल पास था, उसी में स्थित हो ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया, वहाँ ध्यान करते हुए माली ने मुझे देखा। वह तत्काल राजा वसुपाल के पास भागता-भागता पहुँचा और मेरे आगमन का सारा समाचार राजा से कह सुनाया।

सुनते ही राजा वसुपाल तत्काल मेरे दर्शन के लिये आये। मेरे पास आकर उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। राजा वसुपाल के साथ और भी कई मनुष्य थे, उनमें से एक मनुष्य ने मुझसे यह निवेदन किया—

प्रभो! कृपया राजा वसुपाल को आप शत्रुओं की ओर से अभयदान प्रदान करें। इन्हें वैरियों की ओर से कैसा भी भय न रहे।

मनुष्य की राग-द्वेष परिपूर्ण बात सुनकर मैंने कुछ भी उत्तर न दिया लेकिन उन वन की रक्षिका एक दैवी थी, ज्यों ही उसने यह समाचार सुना, अपनी दिव्यवाणी से उसने शीघ्र ही उत्तर दिया—

राजन् वसुपाल! तुझे किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए, नियम से तेरी विजय होगी। बस फिर क्या था? देवी तो उस समय अदृश्य थी, इसलिए ज्यों ही राजा वसुपाल ने वचन सुने, मारे आनन्द के उसका शरीर रोमांचित हो गया।

वह यह समझा कि आशीर्वाद मुझे मुनिराज ने दिया है, बड़ी भक्ति से उसने मुझे नमस्कार किया और बड़ी विभूति के साथ अपने राजमन्दिर की ओर चला गया। राजमन्दिर में जाकर विजय

की खुशी में उसने तोरण आदि लगाकर नगर में बड़ा भारी उत्सव किया। समस्त दिशाएँ बधिर करनेवाले बाजे बजने लगे एवं राजा वसुपाल आनन्द से रहने लगा।

राजा चण्डप्रद्योतन को भी इस बात का पता लगा। राजा वसुपाल को पक्का जैनी समझ उसने तत्काल युद्ध का संकल्प छोड़ दिया और सब सेना को साथ ले अपने नगर की ओर प्रस्थान कर दिया। नगर में जाकर उसने जैनधर्म धारण कर लिया। जिनराज के वाक्यों पर उसका पूरा-पूरा श्रद्धान हो गया और आनन्द से रहने लगा।

राजा वसुपाल को भी चण्डप्रद्योतन के चले जाने का पता लगा। उसने शीघ्र ही कई मन्त्री—जो कि पर के अभिप्राय जानने में अतिशय चतुर थे—राजा चण्डप्रद्योतन के पास भेजे और सारा हाल जानना चाहा। राजा की आज्ञानुसार समस्त मन्त्री शीघ्र ही कौशाम्बी गये। राजा चण्डप्रद्योतन की सभा में पहुँच उन्होंने विनय से राजा को नमस्कार किया और जो कुछ राजा वसुपाल का सन्देशा था, सब कह सुनाया। मन्त्रियों के मुख से राजा वसुपाल का यह सन्देशा सुन राजा चण्डप्रद्योतन ने कहा—

मत्रियों! राजा वसुपाल अतिशय धर्मात्मा है। धर्म उसे अपने प्राणों से भी प्यारा है। मैंने राजा वसुपाल को जैन समझ युद्ध का संकल्प तोड़ दिया। जो पापी पुरुष जैनियों के प्राणों को दुखाते हैं, उनके साथ युद्ध करते हैं, वे शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और वे संसार में नराधम कहलाते हैं।

राजा चण्डप्रद्योतन से यह समाचार सुन मन्त्री तत्काल भूमितिलकपुर को लौट पड़े। चण्डप्रद्योतन का सारा समाचार राजा

वसुपाल को कह सुनाया और उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगे। ज्यों ही राजा वसुपाल ने यह बात सुनी, उन्हें अति प्रसन्नता हुई।

चण्डप्रद्योतन को अपने समान धर्मी समझ राजा वसुपाल ने शीघ्र ही कन्या वसुकान्ता का विवाह राजा चण्डप्रद्योतन के साथ कर दिया एवं हाथी, घोड़ा आदि उत्तमोत्तम पदार्थ देकर राजा चण्डपद्योतन के साथ बहुत कुछ हित जनाया।

जब कन्या वसुकान्ता के साथ राजा चण्डप्रद्योतन का विवाह हो गया तो उनको बड़ा सन्तोष हुआ। वे बड़े आनन्द से रहने लगे और दोनों दम्पति भले प्रकार सांसारिक सुख का अनुभव करने लगे।

कदाचित् राजा चण्डप्रद्योतन रानी वसुकान्ता के साथ एकान्त में बैठे थे। अचानक ही उन्हें भूमितिलकपुर के युद्ध का स्मरण हो आया। वे रानी वसुकान्ता से कहने लगे—

प्रिये! मैं अतिशय प्रतापी था। चतुरंग सेना से मण्डित था। अपने प्रताप से मैंने समस्त भूपतियों का मान गलित कर दिया था। मैंने तेरे पिता को इतना बलवान नहीं जाना था। हाय! तेरे पिता के साथ युद्ध कर मैंने बड़ा अनर्थ किया।

रानी वसुकान्ता ने जब यह वचन सुने तो वह कहने लगी—

नाथ! आपके बराबर मेरे पिता बलवान न थे, किन्तु मुनिवर जिनपाल ने उन्हें अभयदान दे दिया था; इसलिए वे आपसे पराजित न हो सके। रानी वसुकान्ता के ये वचन सुन महाराज अचम्भे में पड़ गये। वे कहने लगे—

चन्द्रबदने! तुम यह क्या कह रही हो? परमयोगी राग-द्वेष से

रहित होते हैं, वे कदापि ऐसा काम नहीं कर सकते। यदि मुनिवर जिनपाल ने राजा वसुपाल को ऐसा अभयदान दिया हो तो बड़ा अनर्थ कर डाला। चलो, अब हम शीघ्र उन्हीं मुनिराज के पास चलें और उन्हीं से सब समाचार पूछें।

राजा चण्डप्रद्योतन की आज्ञानुसार रानी वसुकान्ता मुनि-वन्दना के लिये तैयार हो गयी। वे दोनों दम्पति बड़े आनन्द से मुनि वन्दनार्थ गये। जिस समय वे दोनों दम्पति वन में पहुँचे और ज्यों ही उन्होंने मुझे देखा, बड़ी भक्ति से नमस्कार किया, तीन प्रदक्षिणा दीं, एवं राजा चण्डप्रद्योतन ने बड़ी विनय से यह कहा—

समस्त विज्ञानों के पारगामी, भव्यों को मोक्षसुख प्रदान करनेवाले, अतिशय कठिन किन्तु परमोत्तम व्रत के धारक, शत्रु-मित्रों को समान समझनेवाले प्रभो! क्या यह आपको योग्य था कि एक को अभयदान देना और दूसरे का अनिष्ट चिन्तन करना?

कृपानाथ! प्रथम तो मुनियों के लिये ऐसा कोई अवसर नहीं आता। यदि किसी प्रकार का अवसर आकर उपस्थित भी हो जाए तो आप सरीखे वीतराग मुनिगण उस समय ध्यान का अवलम्बन कर लेते हैं, भली-बुरी कैसी भी सम्मति नहीं देते।

राजा चण्डप्रद्योतन के ऐसे वचन सुन, हे राजन् श्रेणिक! मैंने तो कुछ जवाब न दिया किन्तु रानी वसुकान्ता कहने लगी—

नाथ! मेरे पिता के शुभोदय से उस समय किसी वनरक्षिका देवी ने यह आशीर्वाद दिया था। मुनिराज ने कुछ भी नहीं कहा था। आप इस अंश में मुनिराज का जरा भी दोष न समझें।

बस फिर क्या था? राजन्! ज्यों ही राजा चण्डप्रद्योतन ने रानी

वसुकान्ता के वचन सुने, मारे हर्ष के उसका कण्ठ गद्गद् हो गया। कुछ समय पहिले जो उसके हृदय में मेरे विषय में कालुष्य बैठा था, तत्काल वह निकल भागा।

दोनों दम्पति ने मुझे विनयपूर्वक नमस्कार किया एवं वे दोनों दम्पति तो कौशाम्बीपुरी में आनन्दानुभव करने लगे और मुझे उसी कारण से आज तक वचनगुप्ति प्राप्त न हुई। मैं अनेक देशों में विहार करता-करता राजगृह आया। आज मैं आपके यहाँ आहारार्थ भी गया, किन्तु मैं त्रिगुप्तिपालक नहीं था, इसलिए मैंने आहार न लिया। मेरे आहार के न लेने का अन्य कोई कारण नहीं।

विनीत मगधेश! यह आप निश्चय समझें कि जो मुनि मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति पालक होते हैं, वे नियम से अवधिज्ञान के धारक होते हैं। तीनों गुप्तियों में एक भी गुप्ति को न रखनेवाले मुनिराज के अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन तीनों ज्ञानों में से एक भी ज्ञान नहीं होता। साधारण जीवों के समान उनके मति, श्रुत दो ही ज्ञान होते हैं।

राजन्! मन में उत्पन्न खोटे विकल्पों के निरोध के लिये मनोगुप्ति का पालन किया जाता है। इस मनोगुप्ति का पालन करना सरल बात नहीं। इस गुप्ति को वे ही पालन कर सकते हैं, जो ज्ञान, पूजा आदि अष्ट मदों के विजयी यतीश्वर होते हैं और शुभ एवं अशुभ संकल्पों से बहिर्भूत रहते हैं, उसी प्रकार वचनगुप्ति की रक्षा करना भी अति कठिन है।

जो मुनीश्वर वचनगुप्ति के पालक होते हैं, उन्हें स्वर्गसुख की प्राप्ति होती है, अनेक प्रकार के कल्याण मिलते हैं। विशेष कहाँ तक कहा जाए, वचनगुप्ति पालक मुनिराज समस्त कर्मों का नाश

कर सिद्ध अवस्था को भी प्राप्त हो जाते हैं तथा इसी प्रकार कायगुप्ति का पालन भी अति कठिन है। शरीर से सर्वथा निर्मल होकर विरले ही मुनिश्वर कायगुप्ति के पालक होते हैं। तीनों गुप्तियों के पालक मुनिराज निर्मल होते हैं। उन्हें तप के प्रभाव से अनेक प्रकार की लब्धियाँ मिलती हैं। उनकी आत्मा सम्यग्ज्ञान से सदा भूषित रहती है एवं वे जैनधर्म के संचालक समझे जाते हैं।

इस प्रकार मुनिवर धर्मघोष और जिनपाल के मुख से मनोगुप्ति और वचनगुप्ति की कथा सुनकर राजा श्रेणिक और रानी चेलना को अति आनन्द मिला। वे दोनों दम्पति परमपवित्र दोनों गुप्तियों की बार-बार प्रशंसा करने लगे। उनके मुख से समस्त बाधारहित मुनिमार्ग की एवं केवली प्रतिपादित श्रुतज्ञान की भी झड़ाझड़ प्रशंसा निकलने लगी।

इस प्रकार श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के भवान्तर के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में मनोगुप्ति वचनगुप्ति दोनों गुप्तियों की कथा वर्णन करनेवाला दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

ग्यारहवाँ सर्ग

कायगुप्ति कथा का वर्णन

मुनिवर जिनपाल द्वारा वचनगुप्ति कथा के समाप्त हो जाने पर राजा-रानी ने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। धर्मप्रेमी वे दोनों दम्पति मुनिवर मणिमाली के पास गये। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर राजा श्रेणिक ने विनय से पूछा—

संसारतारकस्वामिन्! मेरे शुभोदय से आप राजमन्दिर में आहारार्थ पधारे थे किन्तु आप बिना कारण वहाँ से आहार किये बिना ही लौट आये, यह क्या हुआ ? मेरे मन में इस बात का बड़ा संशय बैठा है, कृपया इस मेरे संशय को शीघ्र मिटावें।

राजा श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने कहा—

राजन्! रानी चेलना ने 'हे त्रिगुप्ति पालक मुनिराज! आप आहारार्थ राजमन्दिर में विराजें' इस रीति से मेरा आह्वानन किया था। मेरे कायगुप्ति थी नहीं, इसलिए मैं वहाँ आहार के लिये न ठहरा। वह क्यों नहीं थी, उसका कारण सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें—

❀ ❀ ❀

इसी पृथ्वीतल में अतिशय शुभ एक मणिवत नाम का देश है। मणिवत साक्षात् समस्त देशों में मणि के समान है। मणि-देश में (अघरता) धन, विद्या आदि की असहायता हो, यह बात नहीं है। वहाँ के निवासी धनी एवं विद्वान, धन और विद्या से बराबर सहाायता करनेवाले हैं। एक मात्र अधरता है तो स्त्रियों के ओठों में ही है। वहाँ सब लोग सुखी हैं, इसलिए कोई किसी से किसी चीज़ की याचना भी नहीं करता। यदि याचना का व्यवहार है तो वर के लिये

कन्या और कन्या के लिये वर का ही है।

उस देश में किसी का विनाश भी नहीं किया जाता। यदि विनाश व्यवहार है तो व्याकरण के क्विपप्रत्यय में ही है–क्विपप्रत्यय का ही लोप किया जाता है। वहाँ के मनुष्य निरपराधी है, इसलिए वहाँ कोई किसी का बन्धन नहीं करता। यदि बन्धन व्यवहार है तो मनोहर शब्द करनेवाले पक्षियों में ही है—वे ही पिंजरों में बँधे रहते हैं!

मणिवत देश में कोई आलसी भी नजर नहीं आता। आलसीपना है तो वहाँ के मतवाले हाथियों में ही हैं—वे ही झूमते झामते मन्द गति से चलते हैं। कोई किसी को वहाँ पर मारने सतानेवाला भी नहीं है। यदि मारता सताता है तो यमराज ही है। वहाँ के निवासियों को भय किसी का नहीं है, केवल कामीपुरुष अपने प्राणबल्लभाओं के क्रोध से डरते हैं—कामियों को प्रतिक्षण इस बात का डर बना रहता है कि कहीं यह नाराज न हो जाए।

उस देश में कोई चोर नहीं है। यदि चोर का व्यवहार है तो पवन में है, वही जहाँ-तहाँ की सुगन्धि चुरा ले आता है। वहाँ का कोई मनुष्य जाति पतित नहीं है। यदि पतन व्यवहार है तो वृक्षों के पत्तों में हैं, वे ही पवन के जोर से जमीन पर गिरते हैं।

वृक्षों के पत्ते छोड़कर उस देश में कोई चपल भी नहीं है, किन्तु वहाँ के निवासी सब लोग गम्भीर और उदार हैं। वहाँ पर कोई मनुष्य जड़ नहीं है। यदि जड़ता है तो स्त्रियों के नितम्बों में हैं। कृशता भी वहाँ पर स्त्रियों के कटिभाग में ही है—वहाँ स्त्रियों की कमर ही पतली है और कोई कृश नहीं। वहाँ के पत्थर ही नहीं बोलते-चालते हैं, मनुष्य कोई गूंगा नहीं।

उस देश में कोई किसी का दमन नहीं करता, एकमात्र योगीश्वर ही इन्द्रियों का दमन करते हैं। मलिन भी वहाँ कोई नहीं रहता, एकमात्र मलिनता वहाँ के तालाबों में हैं। हाथी आकर वहाँ के तालाबों को गन्दला कर देते हैं। उस देश में निष्कोषता कमलों में ही है, सूर्यास्त होने पर वे ही मुंद जाते हैं किन्तु वहाँ निष्कोषता-खजाना न हो, यह बात नहीं। लोग उस देश में दान आदि उत्तम कार्यों में ईर्षा-द्वेष करते हैं, किन्तु इनसे अतिरिक्त और किसी कार्य में उन्हें ईर्षा-द्वेष नहीं!

वहाँ के लोग उत्तमोत्तम व्याख्यान सुनने के व्यसनी हैं, जूआ आदि का कोई व्यसनी नहीं है तथा उस देश में उत्तमोत्तम मुनियों के ध्यान प्रभाव से सदा वृक्ष फले-फूले रहते हैं, योग्य वर्षा हुआ करती है, वहाँ के मनोहर बागों में सदा कोकिल बोलती रहती है। वहाँ की स्त्रियों से हथिनी भी मन्द गमन की शिक्षा लेती है और स्वभाव से वे स्त्रियाँ लज्जावती एवं पतिभक्ता हैं।

इसी मणिवत देश में एक अतिजय रमणीय दारा नामक नगर है। दारानगर के ऊँचे-ऊँचे महल सदा चन्द्रमण्डल को भेदन किया करते हैं। उसकी स्त्रियों के मुख-चन्द्रमा की कृपा से अन्धकार सदा दूर रहता है, इसलिए वहाँ दीपक आदि की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस समय वहाँ की स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ जाती हैं, उस समय चन्द्रमा उनको चूड़ामणि तुल्य जान पड़ता है और तारागण चूड़ामणि में जड़े हुए सफेद मोती सरीखे मालूम पड़ते हैं।

दारानगर का स्वामी भले प्रकार नीति कला में निष्णात क्षत्रियवंशी, मैं राजा मणिमाली था। मेरी स्त्री जो कि अतिशय गुणवती थी, गुणमाला थी। गुणमाला से उत्पन्न मेरे एक पुत्र था,

उसका नाम मणिशेखर था और वह अतिशय नीतियुक्त था। मैं भोगों में इतना मस्त था कि मुझे जाते हुए काल का भी ज्ञान न था। मैं सदा जिनधर्म का पालन करता हुआ आनन्द से राज्य करता था।

कदाचित् मैं आनन्द में बैठा था। मेरी पट्टरानी मेरे केशों को सम्भाल रही थी। अचानक ही उसे मेरे सिर में एक सफेद बाल दिख पड़ा। वह एकदम अचम्भे में पड़ गयी और कहने लगी— हाय! जिस यमराज ने बड़े-बड़े चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायणों को भी अपना कवल बना लिया, उसी यमराज का दूत यहाँ आकर भी प्रगट हो गया। बस!!! ज्यों ही मैंने रानी गुणमाला के ये वचन सुने, मेरी आनन्दतरंगें एक ओर किनारा कर गयीं। मेरे मुख से उस समय ये ही शब्द निकले—

प्रिये! समस्त लोक को भय उत्पन्न करनेवाला वह दूत कहाँ है? मुझे भी शीघ्र दिखा। मैं उसे देखना चाहता हूँ।

मेरे वचन सुनते ही रानी ने बाल उखाड़ लिया और मेरी हथेली पर रख दिया। ज्यों ही मैंने अपना सफेद बाल देखा। अपना काल अति समीप जान मैं राज्य से विरक्त हो गया। जो विषयभोग कुछ समय पहले अमृत जान पड़ते थे, वे ही हलाहल विष बन गये। मैं अपने प्यारे पुत्र और स्त्रियों को भी अपना शत्रु समझने लगा।

मैंने शीघ्र ही चन्द्रशेखर को बुलाया और राज्यकार्य उसे सौंप तत्काल वन की ओर चल पड़ा। वन में आते ही मुझे मुनिवर गुणसागर के दर्शन हुए। मैंने शीघ्र ही अनेक राजाओं के साथ मुनिदीक्षा धारण कर ली, जैन सिद्धान्त का भले प्रकार ज्ञाता हो गया और उग्र तपस्वी बन गया तो मैं सिंह के समान इस पृथ्वीमण्डल पर अकेला ही विहार करने लगा।

राजन्! अनेक देश एवं नगरों में विहार करता-करता किसी दिन मैं उज्जयनी नगरी में जा पहुँचा और वहाँ की श्मशान-भूमि में मुर्दे के समान आसन बाँधकर ध्यान के लिये बैठ गया। वह समय रात्रि का था, इसलिए एक मन्त्रवादी—जो कि अनेक मन्त्रों में निष्णात, वैताली विद्या की सिद्धि का इच्छुक, एवं जाति का कोली था—वहाँ आया और मेरे शरीर को मृत शरीर जान तत्काल उसने मेरे मस्तक पर एक चूल्हा रख दिया एवं किसी मृतकपाल में दूध और चावल डालकर चूल्हे में अग्नि जलाकर वह खीर पकाने लग गया।

बस फिर क्या था? मन्त्रवादी तो यह समझ कि कब जल्दी खीर पके और कब जल्दी मन्त्र सिद्ध हो, बड़ी तेजी से चूल्हे में लकड़ी झोंककर आग जलाने लगा और आग जलने से जब मुझे मस्तक और मुख में तीव्र वेदना जान पड़ी तो मैं कर्मरहित शुद्ध आत्मा का स्मरण कर इस प्रकार भावना भाने लगा—

रे आत्मन्! तुझे इस समय इस दुःख से व्याकुल न होना चाहिए। तूने अनेक बार भयंकर नरक दुःख भोगे हैं। नरक दुःखों के सामने यह अग्नि का दुःख कुछ दुःख नहीं। देख, नरक में नारकियों को क्षुधा तो इतनी अधिक है कि यदि मिले तो वे त्रिलोक का अन्न खा जाएँ किन्तु उन्हें मिलता कणमात्र भी नहीं, इसलिए वे अतिशय क्लेश सहते हैं। वहाँ पर नारकियों को गरम लोहे की कढ़ाइयों में डाला जाता है, उनके शरीर के खण्ड किये जाते हैं, उस समय उन्हें परम दुःख भोगना पड़ता है।

हजार बिच्छुओं के काटने से जैसी शरीर में अग्नि भर्राती है, उसी प्रकार नरक भूमिस्पर्श से नारकियों को दुःख भोगने पड़ते हैं।

यदि नारक की मिट्टी का छोटा सा टुकड़ा भी यहाँ आ जाए तो उसकी दुर्गन्धि से कोसों दूर बैठे जीव शीघ्र मर जाएँ, किन्तु अभागे नारकी रात-दिन उसमें पड़े रहते हैं। तुझे भी अनेक बार नरक में जाकर ये दु:ख भोगने पड़े हैं। जब जब तू एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय योनियों में रहा है, उस समय भी तूने अनेक दु:ख भोगे हैं।

अनेक बार तू निगोद में भी गया है और वहाँ के दु:ख कितने कठिन हैं, यह बात भी तू जानता है। तुझे इस समय जरा भी विचलित नहीं होना चाहिए। भाग्यवश यह नरभव मिला है। प्रसन्नचित्त होकर तुझे व्रतसिद्धि के लिये परीषह सहने चाहिए। ध्यान रख! परीषह सहन करने से ही व्रतसिद्धि और सच्चा आत्मीय सुख मिल सकता है।

राजन्! मैं तो इस प्रकार अनित्यत्व भावना भा रहा था। मुझे अपने तन-बदन का भी होश हवाश न था। अचानक ही जब अग्नि जोर से जलने लगी तो मेरे मस्तक पर रखा कपाड़ बेहद रीति से हिलने लगा और भलीभाँति कौलिक द्वारा डाटै जाने पर तत्काल जमीन पर गिर गया। जो कुछ उसमें दूध-चावल आदि चीजें थीं, मिट्टी में मिल गयीं और शीघ्र ही अग्नि शान्त हो गयी।

बस फिर क्या था? ज्यों ही उस कौलिक ने यह दृश्य देखा, मारे भय के उसके पेट में पानी हो गया। वह यह जानकर कि मन्त्र मुझ पर कुपित हो गया है, वहाँ से तत्काल घर भागा और शीघ्र ही अपने घर आ गया।

कुछ समय बाद-रात्रि में मुर्दे के धोखे से मुनिराज पर घोर उपसर्ग हुआ है—यह बात दारानगर निवासी सज्जनों को मानों

जतलाता हुआ सूर्य प्राची दिशा में उदित हो गया। जिनेन्द्ररूपी सूर्य के उदय से जैसा मिथ्यात्व अन्धकार तत्काल विलय को प्राप्त हो जाता है और भव्यों के चित्तरूपी कमल विकसित हो जाते हैं; उसी प्रकार सूर्य के उदय से गाढ़ अन्धकार भी बात की बात में नष्ट हो गया। जहाँ-तहाँ सरोवरों में कमल भी खिल गये।

उस समय रात भर के वियोगी चकवा-चकवी सूर्योदय से अति आनन्दित हुए और परस्पर प्रेमालिंगन कर अपने को धन्य समझने लगे, किन्तु रात्रि में अपनी प्राण-प्यारियों के साथ क्रीड़ा करनेवाले कामीजन अति दु:ख मानने लगे और बार-बार सूर्य की निन्दा करने लगे। सच पूछिये तो सूर्य एक प्रकार का उत्तम साधु है, क्योंकि साधु जिस प्रकार भव्य जीवों को उत्तम मार्ग का दर्शक होता है, वैसे सूर्य भी पथिकों को उत्तम मार्ग का दर्शक है। साधु जैसे भव्य जीवों के अज्ञान अन्धकार को दूर करता है, सूर्य भी उसी प्रकार दूर करनेवाला है। साधु जिस प्रकार जीव-अजीव आदि पदार्थों का विचार करता है, उनके साथ सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार सूर्य भी अपनी किरणों से समस्त पदार्थों से सम्बन्ध रखता है।

दैदीप्यमान सूर्य के तेज के सामने चन्द्रमा उस समय सूखे पत्ते के समान जान पड़ने लगा और तारागुण तो लापता हो गये। श्मशानभूमि के पास एक बाग था, इसलिए उस समय एक माली फूल तोड़ने के लिए वहाँ आया। अचानक उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। ज्यों ही उसने मुझे अर्धदग्ध मस्तकयुक्त और बेहोश देखा तो मारे आश्चर्य के उसका ठिकाना न रहा। वह शीघ्र ही भागकर नगर में आया और जिनधर्म के परमभक्त जो जिनदत्त आदि सेठ थे, उनसे मेरा सारा हाल कह सुनाया।

ज्यों ही जिनदत्त आदि सेठों ने माली के मुख से मेरी ऐसी

भयंकर दशा सुनी, उन्हें परम दु:ख हुआ। मारे दु:ख के वे हाहाकार करने लगे और सबके सब मिलकर तत्काल श्मशानभूमि की ओर चल दिये।

श्मशानभूमि में आकर मुझे उन्होंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। मेरी ऐसी बुरी अवस्था देखकर वे और भी अधिक दु:ख मनाने लगे। किस दुष्ट ने मुनिराज पर यह उपसर्ग किया है ? इस प्रकार क्रोधित हो भव्य जिनदत्त ने मुझे शीघ्र उठाया और व्याधि के दूर करने के लिये मुझे अपने घर ले गया। जिस समय मैं घर पहुँच गया कि तत्काल जिनदत्त किसी वैद्य के घर गया। मेरी व्याधि के उपचारार्थ वैद्य से उसने औषधि माँगी और मेरी सारी अवस्था कह सुनाई। भव्य जिनदत्त के मुख से मुनिराज की यह अवस्था सुन वैद्य ने कहा—

प्रिय जिनदत्त ! मुनिराज का रोग अनिवार है। जब तक लाक्षामूल तेल न मिलेगा, कदापि मैं उनकी चिकित्सा नहीं कर सकता। तैल से ही यह रोग जा सकता है, इसलिए तुम्हें लाक्षामूल रस के लिये प्रयत्न करना चाहिए। वैद्यराज के ऐसे वचन सुनकर जिनदत्त ने कहा—वैद्यराज ! कृपया शीघ्र कहें लाक्षामूल तेल कहाँ कैसे मिलेगा ? जिससे मैं उसके लिये प्रयत्न करूँ। वैद्यराज ने कहा—

इसी नगर में भट्ट सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण निवास करता है। लाक्षामूल तेल उसी के यहाँ मिल सकता है, और कहीं नहीं। तुम उसके घर जाओ और शीघ्र वह तेल ले आओ।

वैद्यराज के ऐसे वचन सुन जिनदत्त शीघ्र ही भट्ट सोमशर्मा के घर गया। वहाँ उसकी तुंकारी नाम की शुभ भार्या को देखकर और उसे बहिन, इस शब्द से पुकार कर यह निवेदन करने लगा—

बहिन! मुनिवर मणिमाली का आधा मस्तक किसी ने जला दिया है। उनके मस्तक में इस समय प्रबल पीड़ा है, कृपाकर मुनि पीड़ा की निवृत्ति के लिये मूल्य लेकर मुझे कुछ लाक्षामूल तेल दे दीजिए।

जिनदत्त की ऐसी प्रिय बोली (वचन) सुन तुंकारी अति प्रसन्न हुई। उसने शीघ्र जिनदत्त से कहा—

प्रिय जिनदत्त! यदि मुनि की पीड़ा दूर करने के लिये तेल की आवश्यकता है तो आप ले जाइये, मैं आपसे कीमत नहीं लूँगी। जो मनुष्य इस भव में जीवों को औषधि प्रदान करते हैं, परभव में उन्हें कोई रोग नहीं सताता। आप निर्भय हो मेरी अटारी पर चले जाइये। वहाँ बहुत से घड़े तेल के रखे हैं, जितना तुम्हें चाहिए उतना ले जाईये।

तुंकारी के ऐसे दयामय वचन सुन जिनदत्त अति प्रसन्न हुआ। अटारी पर चढ़कर उसने शीघ्र एक घड़ा उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया और चलने लगा।

घड़ा लेकर जिनदत्त कुछ ही दूर गया था कि अचानक ही उसके कन्धे से घड़ा गिर गया और उसमें जितना तेल था, सब फैलकर मिट्टी में मिल गया। तेल को इस प्रकार जमीन पर गिरा देख जिनदत्त का शरीर मारे भय के काँप गया। वह विचारने लगा— हाय!!! बड़ा अनर्थ हो गया। बड़ी कठिनता से यह तेल हाथ आया था, सो अब सर्वथा नष्ट हो गया। जाने अब मुझे तेल मिलेगा या नहीं?

अहा! अब तुंकारी मुझ पर अवश्य नाराज होगी। मैंने बड़ा अनर्थ किया। इस प्रकार अपने मन में कुछ समय संकल्प-किल्प

कर वह फिर तुंकारी के पास गया। डरते-डरते उसे सब हाल कह सुनाया और तेल के लिये फिर से निवेदन किया। तुंकारी परम भद्रा थी, उसने नुकसान पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया किन्तु शान्तिपूर्वक उसने यही कहा—

प्रिय जिनदत्त! यदि वह तेल फैल गया तो फैल जाने दो, मेरे यहाँ बहुत तेल रखा है, जितना तुझे चाहिए उतना ले जाओ और मुनिराज की पीड़ा दूर करने का उपाय करो।—ब्राह्मणी के ऐसे उत्तम किन्तु सन्तोषप्रद वचन सुन जिनदत्त का सारा भय दूर हो गया।

ब्राह्मणी की आज्ञानुसार उसने शीघ्र ही दूसरा घड़ा अपने कन्धे पर रख लिया, किन्तु ज्यों ही घड़ा लेकर जिनदत्त कुछ चला कि ठोकर खा जमीन पर गिर गया और घड़ा के फूट जाने से फिर सारा तेल फैल गया। ब्राह्मणी की आज्ञानुसार जिनदत्त ने तीसरा घड़ा भी अपने कन्धे पर रखा और कन्धे पर रखते ही वह भी फूट गया। इस प्रकार बराबर जब तीन घड़े फूट गये तो जिनदत्त को परम खेद हुआ।

खिन्न-चित्त हो उसने ब्राह्मणी से फिर सब हाल जाकर कह सुनाया और कहते-कहते उसका मुख फीका पड़ गया। तीनों घड़ों के इस प्रकार फूट जाने से सेठ जिनदत्त को अति दु:खित देखकर तुंकारी का चित्त करुणा से आर्द्र हो गया। उसने डाट-डपट के बदले जिनदत्त को यही कहा—

प्यारे भाई! यदि तीन घड़े फूट गये हैं तो फूट जाने दो। उसके लिये किसी बात का भय मत करो। मेरे घर में बहुत से घड़े रखे हैं। जब तक तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न हो, तब तक तुम एक-एक

करके सभी को ले जाओ।—ब्राह्मणी के ऐसे स्नेह भरे वचन सुन जिनदत्त को परम आनन्द हुआ। उसकी आज्ञानुसार उसने शीघ्र ही घड़ा कन्धे पर रख लिया और अपने घर की ओर चल दिया।

ब्राह्मणी के ऐसे उत्तम बर्ताव से जिनदत्त के चित्त पर असाधारण असर पड़ गया था। ब्राह्मणी के स्नेहयुक्त वचनों ने उसे अपना पक्का दास बना लिया था। इसलिए ज्यों ही वह अपने घर पहुँचा, घड़ा रखकर वह फिर तुंकारी के घर आया और विनयपूर्वक इस प्रकार निवेदन करने लगा—

प्रिय बहिन! तू धन्य है। तेरा मन सर्वथा धर्म में दृढ़ है। तू क्षमा की भण्डार है। मैंने आज तक तुह्मारे समान कोई स्त्रीरत्न नहीं देखी। जैसी क्षमा तुझमें है, संसार में किसी में नहीं। मुझसे बराबर तीन घड़े फूट गये, तेरा बहुत नुकसान हो गया, तथापि तुझे जरा भी क्रोध न आया।—जिनदत्त के ऐसे प्रशंसायुक्त किन्तु उत्तम वचन सुन तुंकारी ने कहा—

भाई जिनदत्त! क्रोध का भयंकर फल मैं चख चुकी हूँ, इसलिए मैंने क्रोध कुछ शान्त कर दिया है-मैं जरा-जरा सी बात पर क्रोध नहीं करती। तुंकारी के ऐसे वचन सुन जिनदत्त ने कहा—

बहिन! तुम क्रोध का फल कब चख चुकी हो, कृपा कर मुझे उसका सविस्तार समाचार सुनाओ। इस कथा के सुनने की मुझे विशेष लालसा है। जिनदत्त के ऐसे वचन सुन तुंकारी ने कहा—

भाई! यदि तुझे इस कथा के सुनने की अभिलाषा है तो मैं कहती हूँ, तू ध्यानपूर्वक सुन।

❁ ❁ ❁

इसी पृथ्वी तल में आनन्दित जनों से परिपूर्ण, मनोहर एवं

आनन्द का सागर एक आनन्द नाम का नगर है। आनन्द नगर में सम्पत्ति का धारक कोई शिवशर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था। शिवशर्मा की प्रिय भार्या कमलश्री थी। कमलश्री अतिशय मनोहरा सुवर्णवर्णा एवं विशालनेत्रा थी। शिवशर्मा की प्रिय भार्या कमलश्री से उत्पन्न आठ पुत्ररत्न थे। आठों ही पुत्र इन्द्र के समान सुन्दर थे, भव्य थे और धन आदि से मत्त थे।

उन आठों भाइयों के बीच मैं अकेली बहिन थी। मेरा नाम भद्रा था। पिता-माता का मुझ पर असीम प्रेम था। सदा वे मेरा सन्मान करते रहते थे। मेरे भाई भी मुझ पर परम स्नेह रखते थे। मैं अतिशय रूपवती और समस्त स्त्रियों में सारभूत थी, इसलिए मेरी भोजाइयाँ भी मेरा पूरा-पूरा सन्मान करती थीं। पास-पड़ोसी भी मुझ पर अधिक प्रेम रखते थे और मुझे शुभ नाम से पुकारते थे। मुझे तुंकार शब्द से बड़ी चिढ़ थी, इसलिए मेरे पिता ने राजसभा में भी जाकर कह दिया था। क्या—

राजन्! मेरी पुत्री तुंकार शब्द से बहुत चिढ़ती है, इसलिए क्या तो मन्त्री, क्या नगर निवासी और बाँधव कोई भी उसके सामने तुंकार शब्द न कहें। मेरे पिता के ऐसे वचन सुन राजा ने मुझे भी बुलाया। राजा की आज्ञानुसार मैं दरबार में गयी। मैंने वहाँ स्पष्ट रीति से यह कह दिया कि जो मुझे तुंकारी शब्द से पुकारेगा, राजा के सामने ही मैं उसके अनेक अनर्थ कर पाड़ूँगी। ऐसा कहकर मैं अपने घर लौट आयी। उस दिन से सब लोगों ने चिढ़ से मेरा नाम तुंकारी ही रख दिया और मैं क्रोधपूर्वक माता-पिता के घर में रहने लगी।

कदाचित् शुभ्र नाम के वन में एक पवित्र मुनिराज-जिनका नाम गुणसागर था, आये। मुनिराज का आगमन समाचार सुन राजा

आदि समस्त लोग उनकी वन्दनार्थ गये। मुनिराज के पास पहुँचकर सबों ने भक्तिभाव से उन्हें नमस्कार किया और सबके सब उनके पास भूमि में बैठ गये। उन सबको उपदेश श्रवण के लिये लालायित देख मुनिराज ने उपदेश दिया।

उपदेश सुनकर सभी को परम सन्तोष हुआ और अपनी सामर्थ्य के अनुसार सभी ने यथायोग्य व्रत भी ग्रहण किये। मैं भी मुनिराज का उपदेश सुन रही थी; अत: मैंने भी श्रावक व्रत धारण कर लिये, किन्तु व्रत धारण करते समय तुंकार शब्द से उत्पन्न क्रोध का त्याग नहीं किया था।

मुनिराज के उपदेश के समाप्त हो जाने पर सब लोग नगर में आ गये। मैं भी अपने घर आ गयी। मेरे भाई जैसे आठ मदयुक्त थे, उनके संसर्ग से मैं भी आठ मदयुक्त हो गयी। जिस बात की मैं हठ करती थी, उसे पूरा करके मानती। यहाँ तक कि मुझे हठीली जान मेरा कोई विवाह भी नहीं करता था, इसलिए जिस समय मैं युवती हुई तो मेरे पिता को परम कष्ट होने लगा। मेरी विवाह सम्बन्धी चिन्ता उन्हें रात-दिन सताने लगी।

उसी समय सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था। सोमशर्मा पक्का जुआरी था, कदाचित् सोमशर्मा जुआ खेल रहा था। उसने किसी बाजू पर अपना सब धन रख दिया और तीव्र दुर्भाग्योदय से उसे वह हार गया। सब धन के हारने पर जब जुआरियों ने सोमशर्मा से अपना धन माँगा तो वह न दे सका, इसलिए जुआरियों ने उसे किसी वृक्ष से बाँध दिया और बुरी तरह लातें, डंडे, घूसों से मारने लगे। शिवशर्मा के पास तक भी यह बात पहुँची, वह भागता-भागता शीघ्र ही सोमशर्मा के पास गया और उससे इस प्रकार कहने लगा—

प्रिय ब्राह्मण! यदि तुम मेरी पुत्री के साथ विवाह करना स्वीकार करो तो मैं इन जुआरियों का कर्जा पटा दूँ और तुम्हें इनके चंगुल से छुटा लूँ। बस, हे श्रेष्ठिन्! मेरे पिता के ऐसे हितकारी वचन सुन शिवशर्मा ने कहा—

ब्राह्मण सरदार! आपकी कन्या में ऐसा कौन सा दुर्गुण है जिससे उसके लिए कोई योग्य वर नहीं मिलता और पापी, जुआरी, दुष्टों द्वारा दण्डित, मुझ जैसे पुरुष के साथ उसका विवाह करना चाहते हैं ?—सोमशर्मा ने कहा—

प्रियवर! मेरी पुत्री में रूप आदि का कुछ भी दोष नहीं है, वह अतिशय रूपवती सुन्दरी है। अनेक कलाकौशलों की भण्डार है, किन्तु उसमें क्रोध की मात्रा कुछ अधिक है। वह तुंकार शब्द को सहन नहीं कर सकती। बस जो कुछ दोष है, सो यही है। तुम अपने जीवन में सुख भोगने के लिये यही काम करना कि हम तुम का ही व्यवहार रखना। मैं तू का नहीं। इसके अतिरिक्त दूसरा तुम्हें कोई कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा।

शिवशर्मा के ऐसे वचन सुन और उस कष्ट को कुछ कष्ट न समझ सोमशर्मा ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया एवं मेरे पिता ने तत्काल जुआरियों का कर्ज पटा दिया और आनन्दपूर्वक उसे अपने घर ले आये। कुछ दिन बाद किसी उत्तम मुहूर्त में सोमशर्मा के साथ मेरा विवाह हो गया। में उसके साथ आनन्दपूर्वक भोग भोगने लगी। वह मुझसे सदा तुम का व्यवहार रखता था। इसलिए मुझे परम सन्तोष रहता था एवं हम दोनों दम्पति का आपस में स्नेह बढ़ता ही चला जाता था।

कदाचित् सोमशर्मा किसी कार्यवश बाहर गये। उन्हें वहाँ कोई

ऐसा स्थान दीख पड़ा, जहाँ बहुत से नृत्य आदि तमाशे हो रहे थे। वे वहाँ बैठ गये और तमाशा देखते-देखते उन्हें अपने समय का भी कुछ ख्याल न रहा। जब बहुत-सी रात्रि बीत चुकी और खेल भी प्राय: समाप्त होने पर आ चुका तो उन्हें घर की याद आयी। वे शीघ्र अपने घर के द्वार पर आकर इस प्रकार पुकारने लगे—

प्राणबल्लभे! कृपाकर तुम किवाड़ खोलो। मैं दरवाजे पर खड़ा हूँ। मैं उस समय अर्धनिद्रित थी, इसलिए दो-एक आवाज तो मैं उनकी न सुन सकी, किन्तु जब वे स्वभाव से बारबार पुकारने लगे तो मैंने उनकी आवाज तो सुन ली परन्तु 'ये इतनी रात तक कहाँ रहे, क्यों अपने समय पर अपने घर न आये, ऐसा उन पर दोषारोपण कर फिर भी मैंने आवाज न दी और न दरवाजा खोला। कुछ समय बाद वे मुझे 'तुम तुम' शब्द से पुकारने लगे तो भी मैंने उन्हें उत्तर न दिया, प्रत्युत मैं उन पर अधिक घृणा करती चली गयी और मेरा गर्व भी बढ़ता चला गया। अन्त में जब सोमशर्मा अधिक घबड़ा गये, मेरी ओर से उन्हें कुछ भी जवाब न मिला तो उन्हें क्रोध आ गया। क्रोध के आवेश में उन्हें कुछ न सूझा वे मुझे फिर... इस रीति से पुकारने लगे।

अरी तुंकारी! तू किवाड़ क्यों नहीं जल्दी खोलती, दरवाजे पर खड़े-खड़े मुझे अधिक समय बीत चुका है। रात्रि के अधिक व्यतीत हो जाने से हम कष्ट भोग रहे हैं।

बस फिर क्या था। रे भाई जिनदत्त! ज्यों ही मैंने अपने पति के मुख से तुंकारी शब्द सुना, क्रोध के मारे मेरा शरीर भभक उठा। मेरे पति अर्धरात्रि के बीतने पर घर आये थे, इसलिए मैं स्वभाव से ही उन पर कुपित बैठी थी, किन्तु तुंकारी शब्द ने मुझे बेहद कुपित

बना दिया। मुझे उस समय और कुछ न सूझा, किवाड़ खोल मैं घर से निकली और वन की ओर चल पड़ी।

उस समय रात्रि अधिक बीत चुकी थी। नगर में चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। उस समय उल्लू-चोर आदि ही आनन्द से जहाँ-तहाँ भ्रमण करते-फिरते थे, और कोई नहीं जागता था। मैं अपने घर से थोड़ी ही दूर गयी थी। मेरे बदन पर कीमती भूषण वस्त्र थे, इसलिए मुझ पर चोरों की दृष्टि पड़ी। वे शीघ्र मुझ पर बाघ सरीखे टूट पड़े और मुझे कड़ी रीति से पकड़कर उन्होंने तत्काल अपने सरदार किसी भील के पास पहुँचा दिया। चोरों का सरदार वह भील बड़ा दुष्ट था। ज्यों ही उसने मुझे देखा, वह अति प्रसन्न हुआ और इस प्रकार कहने लगा—

बाले! तुझे जिस बात की आवश्यकता हो कह, मैं उसे करने के लिये तैयार हूँ। तू मेरी प्राणबल्लभ बनना स्वीकार कर ले। मैं तुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी रखूँगा। तू किसी प्रकार अपने चित्त में भय न कर। भीलपति के ऐसे वचन सुन मैं भोंचक रह गयी, किन्तु मैंने धैर्य हाथ से न जाने दिया, इसलिए मैंने शीघ्र ही प्रौढ़ किन्तु शान्तिपूर्वक इस प्रकार जवाब दिया—

भील सरदार! आपका यह कथन सर्वथा विरुद्ध और मलिन है। जो स्त्रियाँ उत्तमवंश में उत्पन्न हुई हैं और जो मनुष्य कुलीन हैं, कदापि उन्हें अपना शीलव्रत नष्ट न करना चाहिए। आप यह विश्वास रखें कि जो जीव अपने शीलव्रत की कुछ भी परवाह न कर दुष्कर्म कर डालते हैं, उन्हें दोनों जन्मों में अनेक दु:ख सहने पड़ते हैं। संसार में उनको कोई भला नहीं कहता।

उस समय वह चोरों का सरदार कामबाण से बिंधा था। भला

वह धर्म-अधर्म को क्या समझ सकता था ? इसलिए तप्त लोहपिण्ड पर जलबूँद जैसे तत्काल नष्ट हो जाती है—उसका नामनिशान भी नजर नहीं आता, वैसा ही मेरे वचनों का भीलराज के चित्त पर जरा भी असर न पड़ा। वह कबूतरी पर जैसा बाज टूटता है—एकदम मुझ पर टूट पड़ा और मुझे अपनी दोनों भुजाओं में भरकर कामचेष्टा करने के लिए उद्यत हो गया।

जब मैंने उसकी यह घृणित अवस्था देखी तो मैं अपने पवित्र शीलव्रत की रक्षार्थ आसन बाँधकर निश्चल बैठ गयी। मैंने उसकी ओर निहारा तक नहीं। बहुत समय तक प्रयत्न करने पर भी जब उस पापी का उद्देश्य पूर्ण न हो सका तो वह अति कुपित हो गया। उसने शीघ्र ही अपने साथियों के हाथ मुझे बेच डाला और अपने क्रोध की शान्ति की।

उसके साथी भी परम दुष्ट थे—ज्यों ही उन्होंने मुझे देखा; देवांगना के समान परम सुन्दरी जान वे भी कामबाणों से व्याकुल हो गये और बिना समझे बूझे मेरे शीलव्रत का खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय कोई वनरक्षिका देवी यह दृश्य देख रही थी, इसलिए ज्यों ही वे दुष्ट मेरे पास आये, मारे डण्डों के देवी ने उन्हें ठीक कर दिया और वह मुझे अपने यहाँ ले गयी।

भाई जिनदत्त! यद्यपि मैं अतिशय पापिनी थी तो भी मैं अपने शीलव्रत में दृढ़ थी, इसलिए उस भयंकर समय में उस देवी ने मेरी रक्षा की। तुम निश्चय समझो, जो मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हैं, देव भी उनके दास बन जाते हैं और उनके समस्त दु:ख एक ओर किनारा कर जाते हैं।

जिस समय देवी मुझे अपने घर ले गयी थी, उस समय मेरे

पास कोई वस्त्र न था, इसलिए उस देवी ने मुझे एक ऐसा कंबल जो अनेक जू, कीड़ी आदि जीवों से व्याप्त था, जगह-जगह उसमें रक्त, पीव, कीचड़ लगी थी-दे दिया और मुझे वहीं रहने को आज्ञा दी। मैंने भी कंबल ले लिया और प्रबल पापोदय से उस क्षेत्र में उत्पन्न कौंदों आदि धान्यों को देखती हुई रहने लगी। इतने पर भी मेरे दु:खों की शान्ति न हुई, प्रतिपक्ष में वह देवी मेरे सिर के केशों का मोचन करती थी और अपने वस्त्र के रंगने के लिये उससे रक्त निकाला करती थी। रक्त निकालते समय मेरे मस्तक में पीड़ा होती थी, इसलिए वह देवी उस पीड़ा को लाक्षामूल तेल लगाकर दूर करती थी।

कदाचित् मेरे परमस्नेहीं भाई यौवनदेव को उज्जयनी के राजा ने किसी कार्यवश बड़ी विभूति के साथ राजा पारासर के पास भेजा। वह अपना कार्य समाप्त कर उज्जयनी लौट रहा था। मार्ग में कुछ समय के लिये जिस वन में मैं रहती थी, उसी वन में वह ठहर गया और मुझ अभागिनी पर उसकी दृष्टि पड़ गयी।

ज्यों ही उसने मुझे देखा, बड़े स्नेह से मुझे अपने हृदय लगाया और बड़ी कठिनता से उस देवी के चंगुल से निकाल कर मुझे उज्जयनी ले गया। जिस समय मेरी माता आदि कुटुम्बियों ने मुझे देखा, उन्हें परम दु:ख हुआ। मेरे शरीर की दशा देख मेरी माँ अधिक दु:ख मानने लगी, मेरे मिलाप से मेरा समस्त बंधुवर्ग अति प्रसन्न हुआ एवं कुछ दिन बाद मेरा भाई धनदेव मुझे यहाँ मेरे पति के घर पहुँचा गया।

प्रिय भाई! जब से मैं यहाँ आई हूँ, तब से मैंने जरा-जरा सी बात पर क्रोध करना छोड़ दिया है। मैं क्रोध का भयंकर फल चख

चुकी हूँ, इसलिए और भी मैं क्रोध की मात्रा दिनों दिन कमती करती जाती हूँ। आप निश्चय समझिये, यह धर्मरूपी वृक्ष सम्यग्दर्शनरूपी जड़ का धारक, शास्त्ररूपी पिण्ड से युक्त, दानरूपी शाखाओं से शोभित, अनेक प्रकार के गुणरूपी पत्तों से व्याप्त, कीर्तिरूपी पुष्पों से सुसज्जित, व्रतरूपी उत्तम आलवाल से मनोहर, मोक्षरूपी फल को देनेवाला व क्षमारूपी जल से बढ़ा हुआ परम पवित्र है। यदि इसमें किसी रीति से क्रोधरूपी अग्नि प्रवेश कर जाए तो वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, तत्काल भस्म हो जाता है, इसलिए जो मनुष्य अपना हित चाहते हैं, उन्हें ऐसा भयंकर फल देनेवाला क्रोध सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

❁ ❁ ❁

ब्राह्मणी तुंकारी के मुख से ऐसी कथा सुन सेठ जिनदत्त अति प्रसन्न हुआ। वह तुंकारी की बारबार प्रशंसा करने लगा एवं प्रशंसा करता-करते कुछ समय बाद अपने घर आया। लाक्षामूल तेल एवं अन्यान्य औषधियों से जिनदत्त मेरी (मुनिराज की) परिचर्या करने लगा। कुछ दिन बाद मेरे रोग की शान्ति हुई। मुझे निरोग देखकर जिनदत्त को परम सन्तोष हुआ। मेरी निरोगता की खुशी में जिनदत्त आदि सेठों ने अति उत्सव मनाया। जहाँ-तहाँ जिनमन्दिरों में विधान होने लगे एवं कानों को अति प्रिय उत्तमोत्तम बाजे भी बजने लगे।

❁ ❁ ❁

राजन् श्रेणिक! इधर तो मैं निरोग हुआ और उधर वर्षाकाल भी आ गया। उस समय आनन्द से वृष्टि होने लगी। जहाँ-तहाँ बिजली चमकने लगी एवं प्रत्येक दिशा में मेघध्वनि सुन पड़ी। उस समय हरित वनस्पति से आच्छादित, जलबूँदों से व्याप्त पृथ्वी अति मनोहर

नजर आने लगी। जैसे हरितकान्त मणि पर जड़े हुए सफेद मोती शोभित होते हैं, हरी वनस्पति पर स्थित जल बूँदें उस समय ठीक वैसी ही शोभा को धारण करती थी।

उस समय मयूर चारों ओर आनन्द शब्द करते थे। विरहिणी कामिनियों के लिये वह मेघमाला जलती हुई अग्नि ज्वाला के समान थी और अपनी प्राणबल्लभा के अधरामृत पान के लोलुपी, क्षणभर भी उसके विरह को सहन न करनेवाले कामियों के मार्ग को रोकनेवाली थी। जिस समय विरहिणी स्त्रियाँ अपने-अपने घोंसलों में आनन्दपूर्वक प्रेमालिंगन करते हुए बगली-बगलों को देखती थीं, उन्हें परम दु:ख होता था। वे अपने मन में ऐसा विचार करती थीं - हाय!!! यह पति विरह दु:ख हम पर कहाँ से टूट पड़ा। क्या यह दु:ख हमारे ही लिये था? हम कैसे इस दु:ख को सहन करें।

इस प्रकार जीवों को स्वभाव से ही सुख-दु:ख के देनेवाले वर्षाकाल के आ जाने से जिनदत्त आदि ने चातुर्मास के लिये मुझे उस नगर में ही रहने के लिये आग्रह किया। इसलिए मैं वहीं रह गया एवं ध्यान में दत्तचित्त, जीवों को उत्तम मार्ग का उपदेश देता हुआ मैं सुखपूर्वक जिनदत्त के घर में रहने लगा।

सेठ जिनदत्त का पुत्र जो कि अति व्यसनी और दुर्ध्यानी कुबेरदत्त था, कुबेरदत्त से जिनदत्त धन आदि के विषय में सदा शंकित रहता था। कदाचित् सेठ जिनदत्त ने एक तांबे के घड़े को रत्नों से भरकर और मेरे सिंहासन के नीचे एक गहरा गड्ढा खोदकर चुपचाप रख दिया, किन्तु घड़ा रखते समय कुबेरदत्त मेरे सिंहासन के पीछे छिपा था, इसलिए उसने यह सब दृश्य देख

लिया और कुछ दिन बाद वहाँ से उस घड़े को उखाड़ कर अपने परिचित स्थान पर उसने रख दिया।

कुछ दिन बाद चातुर्मास समाप्त हो गया। मैंने भी अपना ध्यान समाप्त कर दिया एवं हेयोपादेय विचार में तत्पर ईर्या-समितिपूर्वक मैं वहाँ से निकला और वन की ओर चल दिया।

मेरे चले जाने के पश्चात् सेठ जिनदत्त को अपने धन की याद आयी। जिस स्थान पर उसने रत्नभरा घड़ा रखा था, तत्काल उसे खोदा। वहाँ घड़ा था नहीं। इसलिए जब उसे घड़ा न मिला तो वह इस प्रकार संकल्प-विकल्प करने लगा—

हाय! मेरा धन कहाँ गया? किसने ले लिया? अरे! मेरे प्राणों के समान, यत्न से सुरक्षित, धन अब किसके पास होगा? हाय! रक्षार्थ मैंने दूसरी जगह से लाकर यहाँ रखा था, उसे यहाँ से भी किसी चोर ने चुरा लिया! जब बाढ़ ही खेत खाने लगी तो दूसरा मनुष्य कैसे उसकी रक्षा कर सकता है?

मुनिराज के सिवाय इस स्थान पर दूसरा कोई मनुष्य नहीं रहता था। शायद मुनिराज के परिणामों में मलिनता आ गयी हो, उन्होंने ही ले लिया हो। पूछने में कोई हानि नहीं, चलूँ मुनिराज से पूछ लूँ। ऐसा कुछ समयपर्यन्त विचारकर शीघ्र ही जिनदत्त ने कुछ नौकर मेरे अन्वेषणार्थ भेजे और स्वयं भी घर से निकल पड़ा एवं कपटवृत्ति से जहाँ-तहाँ मुझे ढूँढ़ने लगा।

मैं वन में किसी पर्वत की तलहटी में ध्यानारूढ़ था। मुझे जिनदत्त की कपटवृत्ति का कुछ भी ख्याल न था। अचानक ही घूमता-घूमता वह मेरे पास आया। भक्तिभाव से मुझे नमस्कार किया एवं कपटवृत्ति से वह इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—

प्रभो ! दीनबन्धो ! जब से आपने उज्जयनी छोड़ दी है, तब से वहाँ के निवासी श्रावक बड़ा दु:ख मान रहे हैं। आपके चले जाने से वे अपने को भाग्यहीन समझते हैं और अहोरात्रि आपके दर्शनों के लिये लालायित रहते हैं। कृपाकर एक बार आप अवश्य ही उज्जयनी पधारें और उन्हें आनन्दित करें, पीछे आपके आधीन बात हैं, चाहे आप जावें या न जावें। जिनदत्त की ऐसी वचनभंगी सुन मैं अवाक् रह गया, मुझे शीघ्र ही उसके भीतरी अभिप्राय का ज्ञान हो गया। धन के लिये उसका ऐसा वर्ताव सुन मैं अपने मन में ऐसा विचार करने लगा—

यह धन बड़ा निकृष्ट पदार्थ है। यह दुष्ट, जीवों को घोर पाप का संचय करानेवाला और अनेक दु:ख प्रदान करनेवाला है। हाय !!! जो परममित्र है, अपना कैसा भी अहित नहीं चाहता, वह भी इस धन की कृपा से परम शत्रु बन जाता है और अनेक अहित करने के लिये तैयार हो जाता है। प्राणप्यारी स्त्री इस धन की कृपा से सर्पिणी के समान भयंकर बन जाती है। जन्मदात्री, सदा हित चाहनेवाली माता भी धन के चक्कर में पड़कर भयंकर व्याघ्री बन जाती है, धन के लिये पुत्र के मारने में वह जरा भी संकोच नहीं करती।

धन के फेर में पड़कर एक भाई दूसरे भाई का भी अनिष्ट चिन्तन करने लग जाता है। पिता भी धन की ही कृपा से अपने को सुखी मानता है। यदि कुटुम्बी धन नहीं देखते हैं तो जहाँ-तहाँ निन्दा करते फिरते हैं। बहिन भी धन के चक्कर में फँसकर हलाहल विष सरीखी जान पड़ती है। निर्धन भाई को मारने में उसे जरा भी संकोच नहीं होता।

हाय ! समस्त परिग्रह के त्यागी, आत्मिकरस में लीन, मुनिराज

भी इस दुष्ट धन की कृपा से चोर बन जाते हैं। इस धन के लिये पिता अपने प्यारे पुत्र को मार देता है। पुत्र भी अपने प्यारे पिता को यमलोक पहुँचा देता है। धन के पीछे भाई-भाई को मार देता है। सेवक स्वामी का प्राणघात कर देते हैं। धन के लिये जीव अपने शरीर की भी परवाह नहीं करते।

हाय! ऐसे धन को सहस्त्रबार धिक्कार है। यह सर्वथा हिंसामय है। इसके चक्कर में फँसे हुए जीव कदापि सुखी नहीं हो सकते। इस प्रकार धन की बार-बार निन्दा करते हुए मुझे वह पुनः अपने घर ले गया एवं वहाँ पहुँचकर वह कहने लगा—

नाथ! कृपाकर मुझे कोई कथा सुनाइये। मुझे आपके मुख से कथा श्रवण की अधिक अभिलाषा है। उसके ऐसे वचन सुन मैंने कहा—

जिनदत्त! तुम्हीं कोई कथा कहो, हम तुम्हारे मुख से ही कथा सुनना चाहते हैं। बस फिर क्या था? वह तो कथा द्वारा अपना भीतरी अभिप्राय बतलाना चाहता ही था, इसलिए ज्यों ही उसने मेरे वचन सुने, वह अति प्रसन्न हुआ और कहने लगा—

प्रभो! आपकी आज्ञानुसार मैं कथा सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें और मुझे क्षमा करें।

❀ ❀ ❀

इसी जम्बूद्वीप में एक अतिशय मनोहर बनारस नाम की नगरी है। बनारस नगरी का स्वामी जो नीतिपूर्वक प्रजा का पालक था, राजा जितमित्र था। राजा जितमित्र के यहाँ एक अगदंकार नाम का राजवैद्य था। उसकी स्त्री धनदत्ता अतिशय रूपवती एवं साक्षात् कुबेर की स्त्री के समान थी। राज्य की ओर से वैद्य अगदंकार को

जो आजीविका दी जाती थी, उसी से वह अपना गुजारा करता था, एवं इन्द्र के समान उत्तमोत्तम भोग-भोगता हुआ वहाँ आनन्द से रहता था।

वैद्यवर अगदंकार के अतिशय सुन्दर दो पुत्र थे। प्रथम पुत्र धनमित्र था और दूसरे का नाम धनचन्द्र था। दोनों भाई माता-पिता के लाडले अधिक थे, इसलिए अनेक प्रयत्न करने पर भी वे फूटा अक्षर भी न पढ़ सके। रोग आदि की परीक्षा का भी उन्हें ज्ञान न हुआ एवं वे निरक्षर भट्टाचार्य होकर घर में रहने लगे।

कुछ दिन बाद अशुभकर्म की कृपा से वैद्यवर अगदंकार का शरीरान्त हो गया। वे धनमित्र और धनचन्द्र अनाथ सरीखे रह गये। राजा की ओर से जो आजीविका बँधी थी, राजा ने उसे भी उन्हें मूर्ख जान छीन ली, इसलिए उन दोनों भाईयों को और भी अधिक दुःख हुआ एवं अतिशय अभिमानी किन्तु अतिशय दुःखित वे दोनों भाई कुछ विद्या सीखने के लिए चम्पापुरी की ओर चल दिये।

उस समय चम्पापुरी में कोई शिवभूति नाम का ब्राह्मण निवास करता था। शिवभूति वैद्य विद्या का अच्छा ज्ञाता था, इसलिए वे दोनों भाई उसके पास गये एवं कुछ काल वैद्यक शास्त्रों का भले प्रकार अभ्यास कर वे भी वैद्य विद्या के उत्तम जानकार बन गये।

जब उन्होंने देखा कि हम अच्छे विद्वान बन गये तो उन दोनों ने अपनी जन्मभूमि बनारस जाने का विचार किया एवं प्रतिज्ञानुसार वे वहाँ से चल भी दिये। मार्ग में वे आनन्दपूर्वक आ रहे थे कि अचानक ही उनकी दृष्टि एक व्याघ्र पर पड़ी। व्याघ्र सर्वथा अन्धा था और आँखों के न होने से अनेक क्लेश भोग रहा था।

व्याघ्र का अन्धा देखकर धनमित्र का चित्त दया से आर्द्र हो

गया। उसने शीघ्र ही अपने छोटे भाई से कहा—

प्रिय धनचन्द्र! कहो तो मैं इस दीन व्याघ्र को उत्तम औषधियों के प्रताप से अभी सूझता कर दूँ? यह बेचारा आँखों के बिना कष्ट सह रहा है।—धनमित्र की ऐसी बात सुन धनचन्द्र ने कहा—

नहीं भाई! इसे तुम सूझता मत करो। यह स्वभाव से दुष्ट है, इसके फन्दे में पड़कर अपनी जान बचाना भी कठिन पड़ जाएगी। दुष्टों पर उपकार करने से कुछ फल नहीं मिलता।

धनमित्र का काल सिर पर छा रहा था। उसने छोटे भाई धनचन्द्र की जरा भी बात न मानी और तत्काल व्याघ्र को सूझता बनाने के लिये तत्पर हो गया। जब धनचन्द्र ने देखा कि धनमित्र मेरी बात को नहीं मानता है तो वह शीघ्र ही समीपवर्ती किसी वृक्ष पर चढ़ गया और पत्तियों से अपने को छिपाकर सब दृश्य देखने लगा।

धनमित्र व्याघ्र की आँखों की दवा करने लगा। औषधियों के प्रभाव से बात की बात में धनमित्र ने उसे सूझता बना दिया किन्तु दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। ज्यों ही व्याघ्र सूझता हो गया, उसने तत्काल ही धनमित्र को खा लिया और आनन्द से जहाँ-तहाँ घूमने लगा। इसलिए हे प्रभो मुने! क्या व्याघ्र को यह उचित था जो कि वह अपने परमोपकारी, दुःख दूर करनेवाले धनमित्र को खा गया? कृपया आप मुझे कहें।—सेठ जिनदत्त के मुख से ऐसी कथा सुन मुनिराज ने कहा—

जिनदत्त! व्याघ्र बड़ा कृतघ्नी निकला। निस्सन्देह उसने परमोपकारी धनमित्र के साथ अनुचित बर्ताव किया, तुम निश्चय समझो जो मनुष्य कृत उपकार का ख्याल नहीं करते, वे घोर पापी समझे जाते हैं। संसार में उन्हें नरकादि दुर्गतियों के फल भोगने

पड़ते हैं। मैं तुम्हारी कथा सुन चुका, अब तुम मेरी कथा सुनो, जिससे संशय दूर हो।

❁ ❁ ❁

इसी जम्बूद्वीप में एक हस्तिनापुर नाम का विशाल नगर है। किसी समय हस्तिनापुर का स्वामी अतिशय बुद्धिमान राजा विश्वसेन था। विश्वसेन की प्रिय भार्या रानी वसुकान्ता थी। वसुकान्ता अतिशय मनोहरा, चन्द्रवदनी, मृगनयनी, कृशांगी एवं पूर्ण चन्द्रानना थी।

राजा विश्वसेन की रानी वसुकान्ता से उत्पन्न एक पुत्र जो कि शुभ लक्षणों का धारक, सदा धनवृद्धि का इच्छुक, वीर एवं सर्वोत्कृष्ट वसुदत्त था। राजा विश्वसेन ने वसुदत्त को योग्य समझ राज्यभार उसे ही दे दिया था और आनन्दपूर्वक भोग भोगते, वे अपने अन्त:पुर में रहने लगे।

कदाचित् वे आनन्द में बैठे थे, उस समय कोई एक सार्थवाह मनुष्य उनके पास आया। उसने भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया एवं अपनी भक्ति प्रगट करने के लिये एक आम की गुठली उनको भेंट की। राजा विश्वसेन ने गुठली तो ले ली किन्तु वे उसकी परीक्षा न कर सके, इसलिए उन्होंने शीघ्र ही सार्थवाह से पूछा—

कहो भाई, यह क्या चीज़ है ? मैं इसको पहिचान न सका। राजा के ऐसे वचन सुन सार्थवाह ने कहा—

कृपानाथ! समस्त रोगों को नाश करनेवाले आम्रफल का यह बीज है। इस देश में यह फल होता नहीं, इसलिए यह अपूर्व पदार्थ जान मैंने आपकी सेवा में आकर भेंट किया है। सार्थवाह के ऐसे विनयी वचनों से राजा विश्वसेन अति प्रसन्न हुए। उनका प्रेम रानी

वसुकान्ता में अधिक था, इसलिए उन्होंने यह समझ कि बिना रानी के मेरा निरोग होना किस काम का ? शीघ्र रानी को वह बीज दे दिया।

रानी का प्रेम पुत्र वसुदत्त पर अधिक था, इसलिए उसने गुठली उठाकर वसुदत्त को दे दी। जब वह आम का बीज वसुदत्त के हाथ में आया तो वे उसे जान न सके और उनका प्रेम पिता पर अधिक था, इसलिए उन्होंने शीघ्र ही वह बीज पिता को दे दिया और विनय से यह प्रार्थना की कि पूज्यपिता! यह क्या चीज़ है, कृपाकर मुझे बतावें ? वसुदत्त के ऐसे वचन सुन राजा विश्वसेन ने कहा—

प्यारे पुत्र! अमृतफल-आम पैदा करनेवाला यह आम का बीज है। इससे जो फल उत्पन्न होता है, उससे समस्त रोग शान्त हो जाते हैं। यह फल हमें सार्थवाह ने भेंट किया है। ऐसा कहते-कहते उन्होंने शीघ्र ही किसी चतुर माली को बुलाया और स्त्री-पुत्र आदि के निरोगपने की आशा से किसी उत्तम क्षेत्र में बोने के लिये शीघ्र ही आज्ञा दे दी।

राजा की आज्ञानुसार माली ने उसे किसी उत्तम क्षेत्र में बो दिया। प्रतिदिन स्वच्छ जल सींचना भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन बाद माली का परिश्रम सफल हो गया। वह वृक्ष उत्तमोत्तम फलों से परिपूर्ण हो गया एवं प्रतिदिन माली को आनन्द देने लगा।

किसी समय एक गृद्धपक्षी आकाशमार्ग से किसी एक जहरीले सर्प को मुख में दबाये चला जा रहा था। भाग्यवश एक फल पर सर्प की विष-बूँद गिर गयी, विष की गर्मी से वह फल भी जल्दी पक गया। माली ने आनन्दित हो फल तोड़ लिया और उसे राजा

की सभा में जाकर भेंट कर दिया। राजा विश्वसेन को फल देख परम आनन्द हुआ। उन्होंने माली को उचित पारितोषिक दे सन्तुष्ट किया एवं अपने प्रिय पुत्र को बुलाकर उसे फल खाने की आज्ञा दे दी।

आम्रफल विष-बूँद से विषमय हो चुका था, इसलिए ज्यों ही कुमार ने फल खाया कि खाते ही उसके शरीर में विष फैल गया। बात की बात में वह मूर्छित हो जमीन पर गिर गया और उसकी चेतना एक ओर किनारा कर गयी। अपने इकलौते और प्रिय पुत्र वसुदत्त की यह दशा देखा राजा विश्वसेन बेहोश हो गये, उन्होंने वह सब कार्य आम्रफल का जान तत्काल उसे कटवाने की आज्ञा दे दी एवं पुत्र की रक्षार्थ शीघ्र ही राजवैद्य को बुलवाया।

राजवैद्य ने कुमार की नाड़ी देखी। नाड़ी में उसे विष विकार जान पड़ा, इसलिए उसने शीघ्र ही उसी आम्र फल का एक फल मँगाया और कुमार को खिलाकर तत्काल निर्विष कर दिया! राजा विश्वसेन ने जब आम्रफल का यह माहात्म्य देखा तो उन्हें बड़ा शोक हुआ, वे अपने उस अविचारित कार्य के लिय बराबर पश्चात्ताप करने लगे और अपनी मूर्खता के लिये सहस्त्रबार धिक्कार देने लगे।

हे जिनदत्त! यह तुम निश्चय समझो कि जो हतबुद्धि मनुष्य बिना समझे काम कर डालते हैं, उन्हें पीछे पछताना पड़ता है। बिना समझे काम करनेवाले मनुष्य निन्दा भाजन बन जाते हैं। अब तुम्हीं इस बात को कहो कि राजा ने जो वह आम-वृक्ष बिना विचार कटवा दिया था, वह काम क्या उसका उत्तम था?—मुझसे यह कथा सुन जिनदत्त ने कहा—

नाथ! राजा का वह कार्य सर्वथा बेसमझ का था। मैं आपको

एक दूसरी कथा सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें।

❁ ❁ ❁

किसी समय किसी गंगा किनारे एक विश्वभूति नाम का तपस्वी रहता था। कदाचित् एक हाथी का बच्चा नदी के प्रवाह में बहा चला जाता था। तपस्वी की अचानक ही उस पर दृष्टि पड़ गयी। दयावश उसने शीघ्र ही उस हाथी के बच्चे को पकड़ लिया। वह बच्चा शुभ लक्षणयुक्त था, इसलिए वह तपस्वी उत्तमोत्तम फल आदि खिलाकर उसका पोषण करने लगा और चन्द रोज में ही वह बच्चा एक विशाल हाथी बन गया।

कदाचित् किसी राजा की दृष्टि उस हाथी पर पड़ी तो उसे शुभ लक्षणयुक्त देख राजा ने उसे खरीद लिया और अपने घर ले जाकर सिखाने के लिये किसी महावत के सुपुर्द कर दिया। राजा की आज्ञानुसार महावत उसे सिखाने लगा। जब वह सीखने में टालमटोल करता था, तब महावत उसे मारे-मारे अंकुशों के वश में करता था।

इस प्रकार कुछ समय तो वह हाथी वहाँ रहा। जब उसे अंकुश बहुत दुःख देने लगा तो वह भागकर गंगा के किनारे उसी तपस्वी के पास गया।

ज्यों ही तपस्वी ने उसे देखा तो उसने भी उसे न रखा, मारपीट कर वहाँ से भगा दिया। तपस्वी का ऐसा बर्ताव देख हाथी को क्रोध आ गया एवं उस दुष्ट ने उपकारी तपस्वी को तत्काल चीर कर मार दिया।

कृपानाथ! अब आप ही कहें, परोपकारी उस तपस्वी के साथ क्या हाथी का वह बर्ताव उत्तम था?

मैंने कहा—जिनदत्त! वह हाथी बड़ा दुष्ट था। दुष्ट ने जरा भी अपने उपकारी की दया न की। देखो, जो मनुष्य दूसरे के उपकार को भूल जाते हैं, उन्हें अनेक वेदनाएँ सहनी पड़ती हैं। नरकादि गतियाँ उनके लिये सदा तैयार रहती हैं एवं बुद्धिमान लोग स्वभाव से हिंसक और उपकारी के हिंसक में उतना ही भेद मानते हैं। मैं तुम्हारी कथा सुन चुका। मैं भी एक दूसरी कथा कहता हूँ, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो—

❀ ❀ ❀

इसी पृथ्वी पर एक चम्पापुरी नाम की सर्वोत्तम नगरी है। किसी समय कुबेरपुरी के तुल्य उस चम्पापुरी में एक देवदत्ता नाम की वेश्या रहती थी। देवदत्ता अतिशय सुन्दरी थी। यदि उसके लिये देवांगना कह दिया जाता तो भी कम था। उसके पास एक पालतू तोता था, वह उसे अपने प्राणों से भी प्यारा समझती थी।

कदाचित् रविवार के दिन तोते के लिए प्याले में शराब रखकर वह तो किसी कार्यवश भीतर चली गयी और इतने ही में एक लड़की वहाँ आयी। उसने उस शराब में विष डाल दिया और शीघ्र वहाँ से चम्पत हो गयी।

देवदत्ता को इस बात का पता न लगा, वह अपने सीधे स्वभाव से बाहिर आयी और तोता को शराब पिलाने लगी, किन्तु तोता वह सब दृश्य देख रहा था, इसलिए अनेक बार प्रयत्न करने पर भी उसने शराब में चोंच तक न डुबोई। वह चुपचाप बैठा रहा। देवदत्ता जबरन उसे शराब पिलाने लगी तो वह चिल्लाने लगा, इसलिए देवदत्ता को क्रोध आ गया और उसने उसे तत्काल मारकर फेंक दिया।

अब, हे जिनदत्त! तुम्हीं कहो, देवदत्ता का यह अविचारित काम क्या योग्य था ?

जिनदत्त ने उत्तर दिया—नाथ! यदि देवदत्ता ने ऐसा काम किया तो परम मूर्खा समझनी चाहिए। मैं अब आपको तीसरी कथा सुनाता हूँ। कृपया उसे ध्यानपूर्वक सुनें।

❀ ❀ ❀

इसी लोक में एक अतिशय मनोहर एवं प्रसिद्ध बनारस नाम की नगरी है। किसी समय बनारस में कोई वसुदत्त नाम का सेठ निवास करता था। वसुदत्त उत्तम दर्जे का व्यापारी था, धनी था, सुवर्ण निर्मित मकान में रहता था और बड़ा तुन्दिल (बड़ी तोंद का) था। वसुदत्त की प्रिय भार्या का नाम वसुदत्ता था। वसुदत्ता बड़ी चतुरा थी। विनयादि गुणों से अपने पति को सन्तुष्ट करनेवाली थी और मनोहरा थी।

कदाचित् उसी नगरी में एक चोर किसी के घर चोरी के लिये गया। उस समय उस घर के मनुष्य जाग रहे थे, इसलिए चोर को उन्होंने देख लिया। देखते ही चोर भागा। भागते समय उसके पीछे बहुत से मनुष्य थे, इसलिए घबड़ाकर वह सेठ सुभद्रदत्त के घर में घुस पड़ा और सुभद्रदत्त से इस प्रकार विनय वचन कहने लगा—

कृपानाथ! मुझे बचाइये, मैं मरा। चोर के ऐसे वचन सुन सुभद्रदत्त को दया आ गयी। उसने चोर को शीघ्र ही अपने कपड़ों में छिपा लिया। कोतवाल आदि सेठ जी के पास आये। सेठजी से चोर की बाबत पूछा भी तो भी सेठजी ने कुछ जवाब न दिया। जहाँ-तहाँ सभी ने चोर देखा परन्तु कहीं न दीख पड़ा किन्तु सेठजी की बड़ी तोंद के नीचे ही वह छिपा रहा। इसलिए वे

सबके सब वापस लौट गये।

जब विघ्न शान्त हो गया, तब चोर को जाने की आज्ञा दे दी तथा यह समझकर कि चोर चला गया, वे अपने किवाड़ बन्द कर सो गये। किन्तु वह दुष्ट उसी घर में छिप गया और दाव पाकर मालमता लेकर चम्पत हो गया। प्रात:काल सेठ सुभद्रदत्त की आँख खुली। अपनी चोरी देख उन्हें दु:ख हुआ।

वे कहने लगे—मैंने तो उस दुष्ट चोर की रक्षा की थी किन्तु उस दुष्ट ने मेरे साथ भी यह दुष्टता की। यह बात ठीक है कि दुष्ट अपनी दुष्टता कदापि नहीं छोड़ते। ऐसा कुछ समय सोच-विचारकर वे शान्त हो गये। इसलिए हे मुनिनाथ! आप ही कहें, क्या उस चोर का सेठ सुभद्रदत्त के साथ वैसा बर्ताव उत्तम था?

मैंने उत्तर दिया—सर्वथा अनुचित। उसने सेठ सुभद्रदत्त के साथ बड़ा विश्वास-घात किया। वह चोर बड़ा पापी और कुमार्गी था। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। अब मैं भी तुम्हें कथा सुनाता हूँ, मुझे विश्वास है। अबकी कथा से तुम्हें जरूर सन्तोष होगा। तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

❀ ❀ ❀

इसी लोक में कामदेव का रंगस्थल अतिशय मनोहर एक बंग देश है। बंग देश में एक चम्पापुरी नाम की नगरी है। चम्पापुरी में जातीय मुकुन्द केतकी, चम्पा आदि के वृक्ष सदा हरे भरे, फले-फूले रहते हैं, सदा उत्तम मनुष्य निवास करते हैं।

चम्पापुरी में एक ब्राह्मण जो कि भले प्रकार वेद-वेदांत का पाठी और धनी था, सोमशर्मा था। सोमशर्मा की अतिशय रूपवती दो स्त्रियाँ थीं। प्रथम स्त्री सोमिल्ला और दूसरी का नाम सोमशर्मिका

था। भाग्योदय से सुन्दरी सोमिल्ला को पुत्रवती देख सोमशर्मा उस पर अधिक प्रेम करने लगा और सोमशर्मिका की ओर से उसका प्रेम कुछ हटने लगा।

स्त्रियाँ स्वभाव से ही ईर्षा-द्वेष की खान होती हैं। यदि उनको कुछ कारण मिल जाए, तब तो ईर्षा, द्वेष करने में वे जरा भी नहीं चूकती।

ज्यों ही सोमशर्मिका को यह पता लगा कि मेरा पति मुझ पर प्रेम नहीं करता, सोमिल्ला को अधिक चाहता है, मारे क्रोध के वह भभक उठी। वह उसी दिन से सोमिल्ला से मर्मभेदी वचन कहने लगी। हास्य और कलह करना भी प्रारम्भ कर दिया, यहाँ तक कि सोमिल्ला का अहित करने में भी वह नहीं डरने लगी।

उसी नगरी में एक भद्र नाम का बैल रहता था। भद्र सुशील और शान्त प्रकृति का धारक था। इसलिए समस्त नगर निवासी उस पर बड़ा प्रेम करते थे। कदाचित् भद्र (बैल) ब्राह्मण सोमशर्मा के दरवाजे पर खड़ा था कि ब्राह्मणी सोमशर्मिका की दृष्टि उस पर पड़ी, उसने शीघ्र ही अपनी सौत सोमिल्ला के बालक को ऊपर अटारी से बैल के सींग पर पटक दिया एवं सींग पर गिरते ही रोता हुआ वह बालक शीघ्र मर गया।

नगर निवासियों को बालक की इस प्रकार मृत्यु का पता लगा। वे दौड़ते-दौड़ते शीघ्र ही सोमशर्मा के यहाँ आये। बिना विचारे सभी ने बालक की मृत्यु का दोष बेचारे बैल के मत्थे पर ही मढ़ दिया। जो बैल को घास आदि खिलाकर नगर निवासी उसका पालन पोषण करते थे, सो भी छोड़ दिया और मारपीट कर उसे नगर से बाहर भगा दिया, जिससे वह बैल बड़ा खिन्न हुआ, बिल्कुल

लटक गया तथा किसी समय अतिशय दु:खी हो वह ऐसा विचार करने लगा—

हाय! इन स्त्रियों के चरित्र बड़े विचित्र हैं। बड़े-बड़े देव भी जब इनका पता नहीं लगा सकते तो मनुष्य उनके चरित्र का पता लगा लें, यह बात अति कठिन है। ये दुष्ट स्त्रियाँ निकृष्ट काम करके भी एकदम मुकर जाती हैं और मनुष्यों पर ऐसा असर डाल देती हैं मानों हमने कुछ किया ही नहीं। ये मायाचारिणी महापापिनी हैं। दूसरों द्वारा कुछ और ही कहवाती हैं और स्वयं कुछ और ही कहती हैं। ये कटाक्षपात किसी और पर फेंकती हैं, इशारे किसी अन्य की ओर करती हैं और आलिंगन किसी दूसरे से ही करती हैं तथा वस्तु का वायदा तो इनका किसी दूसरे के साथ होता है और किसी दूसरे को दे बैठती हैं।

कवियों ने जो इन्हें अबला कहकर पुकारा है, सो ये नाम से ही अबला (शक्तिहीन) हैं, काम से अबला नहीं। जिस समय ये क्रूर काम करने का बीड़ा उठा लेती है तो उसे तत्काल कर डालती हैं और अपने कटाक्षपातों से बड़े-बड़े वीरों को भी अपना दास बना लेती हैं। चाहे अतिशय उष्ण भी अग्नि शीतल हो जाए, शीतल चन्द्रमा उष्ण हो जाए, पूर्व दिशा में उदित होनेवाला सूर्य भी पश्चिम दिशा में उदित हो जाए किन्तु स्त्रियाँ झूठ छोड़ कभी भी सत्य नहीं बोल सकतीं।

हाय! जिस समय ये दुष्ट स्त्रियाँ परपुरुष में आसक्त हो जाती हैं, उस समय अपनी प्यारी माता को छोड़ देती हैं, प्राण प्यारे पुत्र की भी परवाह नहीं करती। परम स्नेही कुटुम्बीजनों का भी लिहाज नहीं करतीं। विशेष कहाँ तक कहा जाए, अपनी प्यारी जन्मभूमि

को छोड़ परदेश में भी रहना स्वीकार कर लेती हैं। ये नीच स्त्रियाँ अपने उत्तम कुल को भी कलंकित बना देती हैं, पति आदि से नाराज हो मरने का भी साहस कर लेती हैं और दूसरों के प्राण लेने में भी जरा नहीं चूकतीं।

अहा!!! जिन योगीश्वरों ने स्त्रियों की वास्तविक दशा विचार कर उनसे सर्वथा के लिये सम्बन्ध छोड़ दिया है, स्त्रियों की बात भी जिनके लिये हलाहल विष है, वे योगीश्वर धन्य हैं और वास्तविक आत्मस्वरूप के जानकार हैं। हाय! ये स्त्रियाँ छलकपट दगाबाजी की खान हैं, समस्त दोषों की भण्डार हैं, असत्य बोलने में बड़ी पण्डिता हैं, विश्वास के अयोग्य हैं, चौतरफा इनके शरीर में कामदेव व्याप्त रहता है। मोक्षद्वार के रोकने में ये अर्गल (बाधक) हैं, स्वर्ग मार्ग को भी रोकनेवाली हैं। नरकादि गतियों में ले जानेवाली हैं, दुष्कर्म करने में बड़ी साहसी हैं—इत्यादि अपने मन में संकल्प-विकल्प करता-करता वह भद्र नाम का बैल वहीं रहने लगा।

उसी नगरी में कोई जिनदत्त नाम का सेठ निवास करता था। जिनदत्त समस्त वणिकों का सरदार और धर्मात्मा था। जिनदत्त की प्रियभार्या सेठानी जिनमती थी। जिनमती परम धर्मात्मा थी, शीलादि उत्तमोत्तम गुणों की भण्डार थी, अति रूपवती थी, पतिभक्ता एवं दान आदि उत्तमोत्तम कार्यों में अपना चित्त लगानेवाली थी।

सेठ जिनदत्त और जिनमती आनन्द से रहते थे। अचानक ही जिनमती के अशुभकर्म का उदय प्रकट हो गया। उस बेचारी को लोग कहने लगे कि यह व्यभिचारिणी है। निरन्तर परपुरुषों के यहाँ गमन करती है, इसलिए वह मन में अतिशय दुःखित होने लगी। उसे अति दुःखी देख कई एक मनुष्य उसके यहाँ आये और

कहने लगे—जिनमती! यदि तुझे इस बात का विश्वास है कि मैं व्यभिचारिणी नहीं हूँ तो तू एक काम कर–तपा हुआ पिण्ड अपने हाथ पर रख। यदि तू व्यभिचारिणी होगी तो जल जाएगी, नहीं तो नहीं।

नगर निवासियों की बात जिनमती ने मान ली। किसी दिन वह सर्वजनों के सामने हाथ में पिण्ड लेना ही चाहती थी कि अचानक ही वह भद्र नाम का बैल भी वहाँ आ गया। वह सब समाचार पहले से ही सुन चुका था, इसलिए आते ही उसने तप्त लोहे का पिण्ड अपने दाँतों में दबा लिया। बहुत काल मुख में रखने पर वह जरा भी न जला एवं सबों को प्रकट रीति से यह बात जतला दी कि ब्राह्मण सोमशर्मा का बालक मैंने नहीं मारा। मैं सर्वथा निर्दोष हूँ।

भद्र की यह चेष्टा देख नगर निवासी मनुष्यों को आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कुछ दिन पहले जो वे बिना विचारे भद्र को दोषी मान चुके थे, वही भद्र अब उनकी दृष्टि में निर्दोष बन गया। अब वे भद्र की बार–बार तारीफ करने लगे। उनके मुख से उस समय जयकार शब्द निकले तथा जिस प्रकार भद्र ने उस प्रकार का काम कर अपनी निर्दोषता का परिचय दिया था। जिनमती ने भी उसी प्रकार दिया। बेधड़क उसने तप्तपिण्ड को अपनी हथेली पर रख लिया।

जब उसका हाथ न जला तो उसने भी यह प्रकट रीति से जतला दिया कि मैं व्यभिचारिणी नहीं हूँ। मैंने आज तक परपुरुष का मुँह नहीं देखा है। मैं अपनी पति की सेवा में ही सदा उद्यत रहती हूँ और उसी को देव समझती हूँ, जिससे सब लोग उसकी मुक्तकण्ठ से तारीफ करने लगे और उसकी आत्मा को भी शान्ति

मिली। इसलिए जिनदत्त! तुम्हीं बताओ, भद्र और जिनमती पर जो दोषारोपण किया गया था, वह सत्य था या असत्य?

जिनदत्त ने कहा—कृपानाथ! वह दोषारोपण सर्वथा अनुचित था। बिना विचारे किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए। जो लोग ऐसा काम करते हैं, वे नराधम समझे जाते हैं। दीनबन्धों! में आपकी कथा सुन चुका हूँ। अब आप कृपया मेरी भी कथा सुनें—

❁ ❁ ❁

इसी लोक में एक पद्मरथ नाम का नगर है। किसी समय पद्मरथ नगर में राजा वसुपाल राज्य करता था। कदाचित् राजा वसुपाल को अयोध्या के राजा जितशत्रु से कुछ काम पड़ गया, इसलिए उसने शीघ्र ही एक चतुर ब्राह्मण उसके समीप भेज दिया। ब्राह्मण राजा की आज्ञानुसार चला। चलते-चलते वह किसी अटवी में जा निकला। वह अटवी बड़ी भयावह थी, अनेक क्रूर जीवों से व्याप्त थी। कहीं पर वहाँ पानी भी नजर नहीं आता था। चलते-चलते वह थक भी चुका था, प्यास से भी अधिक व्याकुल हो चुका था, इसलिए प्यास से व्याकुल हो वह उसी अटवी में किसी वृक्ष के नीचे पड़ गया और मूर्छित सा हो गया।

भाग्यवश वहाँ एक बन्दर आया। ब्राह्मण की वैसी चेष्टा देख उसे दया आ गयी। वह यह समझकर कि प्यास से इसकी ऐसी दशा हो रही है, शीघ्र ही उसे एक विपुल जल से भरा तालाब दिखाया और एक ओर हट गया।

ज्योंही ब्राह्मण ने विपुल जल से भरा तालाब देखा, उसके आनन्द का ठिकाना न रहा। वह शीघ्र उसमें उतरा, अपनी प्यास बुझाई और इस प्रकार विचार करने लगा—

यह अटवी विशाल अटवी है। शायद आगे इसमें पानी मिले या न मिले, इसलिए यहीं से पानी ले चलना ठीक है। मेरे पास कोई पात्र है नहीं, इसलिए इस बन्दर को मारकर इसकी चमड़ी का पात्र बनाना चाहिए। बस फिर क्या था? विचार के साथ ही उस दुष्ट ने शीघ्र ही उस परोपकारी बन्दर को मार दिया और उसकी चमड़ी में पानी भरकर अयोध्या की ओर चल दिया।

कृपानाथ! अब आप ही कहें, क्या उस दुष्ट ब्राह्मण का परोपकारी उस बन्दर के साथ वैसा बर्ताव उचित था?

मैंने कहा—सर्वथा अनुचित। वास्तव में वह ब्राह्मण बड़ा कृतघ्नी था। उसे कदापि उस परोपकारी बन्दर के साथ ऐसा बर्ताव करना उचित न था। जिनदत्त! तुम निश्चय समझो, पापी मनुष्य किये उपकार को भूल जाते हैं, संसार में उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई मनुष्य उन्हें अच्छा नहीं कहता। अब मैं भी तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

❀ ❀ ❀

इसी जम्बूद्वीप में एक कौशाम्बी नाम की विशाल नगरी है। कौशाम्बी नगरी में कोई मनुष्य दरिद्र न था, सब धनी सुखी एवं अनेक प्रकार के भोग भोगनेवाले थे। उसी नगरी में किसी समय एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण निवास करता था। उसकी स्त्री का नाम कपिला था। कपिला अतिशय सुन्दरी थी, मृगनयनी थी, काममंजरी एवं रति के समान मनोहरा थी।

कदाचित् सोमशर्मा को किसी कार्यवश किसी वन में जाना पड़ा। वहाँ एक अतिशय मनोहर नैवले का बच्चा उसे दिख पड़ा और तत्काल उसे पकड़कर घर ले गया। कपिला के कोई सन्तान

न थी। बिना सन्तान के उसका दिन बड़ी कठिनता से कटता था। इसलिए जब से उसके घर में वह बच्चा आ गया, पुत्र के समान वह उसका पालन करने लगी और उस बच्चे से उसका दिन भी सुख से व्यतीत होने लगा।

दुर्भाग्य का अन्त हो जाने पर कपिला के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र की उत्पत्ति से कपिला के आनन्द का ठिकाना न रहा। सोमशर्मा और कपिला अब अपने को परमसुखी मानने लगे और आनन्द से रहने लगे।

कपिला का पति सोमशर्मा किसान था, इसलिए किसी समय कपिला को धान काटने के लिये खेत पर जाना पड़ा। वह बच्चे को पालने में सुलाकर और उसे नैवले को सुपुर्द कर शीघ्र ही खेत को चली गयी।

उधर कपिला का तो खेत पर जाना हुआ और इधर एक काला सर्प बालक के पालने के पास आया। ज्यों ही नैवला की दृष्टि काले सर्प पर पड़ी, वह एकदम सर्प पर टूट पड़ा और कुछ समय तक चू चू फू फू शब्द करते हुए घोर युद्ध करने लगा।

अन्त में अपने पराक्रम से नैवले ने विजय पा ली और उस सर्पराज को तत्काल यमलोक का रास्ता बता दिया तथा वह बालक के पास बैठ गया।

कपिला अपना कार्य समाप्त कर घर आयी। कपिला के पैर की आहद सुन नैवला शीघ्र ही कपिला के पास आया और कपिला के पैरों में गिर उसकी मिन्नत करने लगा। नैवले का सर्वांग उस समय लोहूलुहान था, इसलिए ज्यों ही कपिला ने उसे देखा, इसने अवश्य मेरे पुत्र को मारकर खाया है, यह समझ, मारे क्रोध के उसका शरीर

भभक उठा और बिना विचारे उस दीन नैवले को मारे मूसलों के देखते-देखते यमलोक पहुँचा दिया, किन्तु ज्यों ही वह बालक के पास आयी और ज्यों ही बालक को सकुशल देखा, उसके शोक का ठिकाना न रहा। नैवले की मृत्यु से उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी और माथा धुनने लगी।

जिनदत्त! कहो, उस ब्राह्मणी का यह अविचारित कार्य उत्तम था या नहीं?

मेरे ऐसे वचन सुन जिनदत्त ने कहा—कृपानाथ! ब्राह्मणी का यह काम सर्वथा अयोग्य था। बिना विचारे जो महान्ध हो काम कर डालते हैं, उन्हें बाद में अधिक पछताना पड़ता है। मैं भी पुन: आपको कथा सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये—

❁ ❁ ❁

इसी द्वीप में एक विशाल बनारस नाम की उत्तम नगरी है। किसी समय बनारस में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण निवास करता था। सोमशर्मा की स्त्री का नाम सोमा था। सोमा अतिशय व्यभिचारिणी थी। पति से छिपाकर वह अनेक दुष्कर्म किया करती थी, किन्तु मिष्टवचनों से पति को अपने दुष्कर्मों का पता नहीं लगने देती थी और बनावटी सेवा आदि कार्यों से उसे सदा प्रसन्न करती रहती थी।

कदाचित् सोमशर्मा तो किसी कार्यवश बाहर चला गया और सोमा अपने यार गोपालों को बुलाकर उनके साथ सुखपूर्वक व्यभिचार करने लगी, किन्तु कार्य समाप्त कर ज्यों ही सोमशर्मा घर आया और ज्यों ही उसने सोमा को गोपालों के साथ व्यभिचार करते देखा, उसे परम दु:ख हुआ। वह एकदम घर से विरक्त हो

गया एवं बाँस की लाठी में कुछ सोना छिपाकर तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ा।

मार्ग में वह कुछ ही दूर तक पहुँचा था कि अचानक ही उसकी एक मायाचारी बालक से भेंट हो गयी। बालक ने विनयपूर्वक सोमशर्मा को प्रणाम किया, उसका शिष्य बन गया एवं यह विचार कर कि सोमशर्मा के पास धन है, वह सोमशर्मा के साथ चल भी दिया।

मार्ग में चलते-चलते उन दोनों को रात हो गयी, इसलिए वे दोनों किसी कुम्हार के घर ठहर गये। वहाँ रात बिताकर सवेरे चल भी दिये। चलते समय बालक महादेव के सिर से कुम्हार का छप्पर लग गया और तृण उसके सिर से चिपटा चला गया। वे कुछ ही दूर गये थे कि बालक ने अपना सिर टटोला तो उसे एक तृण दिख पड़ा। तृण देखकर मायाचारी वह बालक ब्राह्मण से इस प्रकार कहने लगा—

गुरु! चलते समय कुम्हार के छप्पर का यह तृण मेरे सिर से लिपटा चला आया है, मैं इसे वहाँ पहुँचाना चाहता हूँ क्योंकि उत्तम कुलीन मनुष्यों को परद्रव्य ग्रहण करना महा पाप है। मैं बिना दिये पर पदार्थजन्य पाप को सहन नहीं कर सकता। कृपाकर आप मुझे आज्ञा दें, मैं शीघ्र लौटकर आता हूँ। ऐसा कहता-कहता चल भी दिया। ब्राह्मण ने जब देखा कि बटुक चला गया तो वह भी आगे किसी नगर में जाकर ठहर गया। उसने किसी ब्राह्मण के घर भोजन किया एवं उस ब्राह्मण को अपने शिष्य के लिये भोजन रख छोड़ने की भी आज्ञा दे दी।

कुछ समय पश्चात् ढूँढ़ता-ढ़ाँढ़ता वह बालक भी सोमशर्मा के

पास आ पहुँचा। आते ही उसने विनय से सोमशर्मा को नमस्कार किया और सोमशर्मा की आज्ञानुसार वह भोजन को भी चल दिया। वह बटुक चित्त का अति कटुक था, इसलिए ज्यों ही वह थोड़ी दूर पहुँचा, तत्काल उसने ब्राह्मण का धन लेने के लिये बहाना बनाया और पीछे लौटकर इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन करने लगा—

प्रभो! मार्ग में कुत्ते अधिक हैं, मुझे देखते ही वे भोंकते हैं। शायद वे मुझे काट खायें, इसलिए मैं नहीं जाना चाहता, फिर कभी देखा जाएगा, किन्तु वह ब्राह्मण परम दयालु था, उसे उस पर दया आ गयी, इसलिए उसने अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी और जिसमें सोना रख छोड़ा था, वह लकड़ी शीघ्र दे दी और जाने के लिये प्रेरणा भी की।

बस फिर क्या था! बालक की निगाह तो उस लकड़ी पर ही थी। संग भी वह उसी लकड़ी के लिये लगा था, इसलिए ज्यों ही उसके हाथ लकड़ी आयी, वह हमेशा के लिये ब्राह्मण से विदा हो गया, फिर वृद्ध ब्राह्मण की ओर उसने झांककर भी नहीं देखा। कृपानाथ! आप ही कहें, वृद्ध और परमोपकारी उस ब्राह्मण के साथ क्या उस बालक का यह बर्ताव योग्य था?

मैंने कहा—जिनदत्त! सर्वथा अयोग्य! उस बालक को कदापि सोमशर्मा ब्राह्मण के साथ वैसा वर्ताव नहीं करना चाहिए था। अस्तु, अब मैं तुम्हें एक अतिशय उत्तम कथा सुनाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

❀ ❀ ❀

धन धान्य उत्तमोत्तम पदार्थों से व्याप्त इसी पृथ्वीतल में एक कौशाम्बी नगरी है। किसी समय उस नगरी का स्वामी राजा

गंधर्वानीक था। राजा गंधर्वानीक के मणि आदि रत्नों को साफ करनेवाला कोई गारदेव नाम का मनुष्य भी उसी नगरी में निवास करता था। कदाचित् वह राजमन्दिर से एक पद्मराग मणि साफ करने के लिये लाया और उसे आँगन में रख वह साफ ही करना चाहता था कि उसी समय कोई ज्ञानसागर नाम के मुनिराज उसके यहाँ आहारार्थ आ गये।

मुनिराज को देख गारदेव ने अपना काम छोड़ दिया, मुनिराज को विनयपूर्वक नमस्कार किया, प्रासुकजल से उनका चरण-प्रक्षालन किया, एवं किसी उत्तम काष्ठासन पर बैठने की प्रार्थना की। प्रार्थनानुसार इधर मुनिराज तो काष्ठासन पर बैठे और उधर एक नीलकण्ठ आया एवं आँख बचाकर उस पद्मरागमणि को लेकर तत्काल उड़ गया तथा मुनिराज आहार ले वन की ओर चल दिये।

मुनिराज को आहार देकर जब गारदेव को फुरसत मिली तो उसे मणि के साफ करने की याद आयी। वह शीघ्र ही आँगन में आया तो उसे वहाँ मणि मिली नहीं, इसलिए परमदु:खी हो वह इस प्रकार विचारने लगा—

मेरे घर में सिवाय मुनिराज के दूसरा कोई नहीं आया, यदि मणि यहाँ नहीं है तो गई कहाँ! मुनिराज ने ही मेरी मणि ली होगी और लेनेवाला कोई नहीं। कुछ समय ऐसा संकल्प-विकल्प कर वह सीधा वन को चल दिया और मुनिराज के पास आकर मणि का तकादा करता हुआ अनेक दुर्वचन कहने लगा।

जब मुनिराज ने उसके ऐसे कटुक वचन सुने तो अपने ऊपर उपसर्ग समझ वे ध्यानारूढ़ हो गये। गारदेव के प्रश्नों का उन्होंने जवाब तक न दिया, किन्तु मुनिराज से जवाब न पाकर मारे क्रोध

के उसका शरीर भभक उठा। उस दुष्ट को उस समय और कुछ न सूझी, मुनिराज को चोर समझ वह मुक्के-घूँसे-डंडों से मारने लगा और कष्टप्रद अनेक कुवचन भी कहने लगा। इस प्रकार मारधाड़ करने पर भी जब उसने मुनिराज से कुछ भी जवाब न पाया तो वह हताश हो अपने नगर को चल दिया।

वह कुछ ही दूर गया कि उसे फिर मणि की याद आयी। वह फिर मदान्ध हो गया, इसलिए उसने वहीं से फिर एक डण्डा मुनिराज पर फेंका। दैवयोग से वह नीलकण्ठ भी उसी वन में मुनिराज के समीप किसी वृक्ष पर बैठा था। इसलिए जिस समय वह डण्डा मुनि की ओर आया तो उसका स्पर्श नीलकण्ठ से भी हो गया। डण्डे के लगते ही नीलकण्ठ भागा और जल्दी में पद्मरागमणि उसके मुँह से गिर गयी।

पद्मरागमणि को इस प्रकार गिरी देख गारदेव अचम्भे में पड़ गया। अब वह अपने अविचारित काम पर बारबार घृणा करने लगा। मणि को उठाकर वह नगर चला गया। साफ कर उसे राजमन्दिर में पहुँचा दी और संसार से सर्वथा उदासीन हो उसी वन में आया। मुनिराज के चरण कमलों को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने पापों की क्षमा माँगी एवं उन्हीं के चरणों में दीक्षा धारण कर दुर्धर तप करने लगा।

सेठ जिनदत्त! कहो क्या उस गारदेव का बिना विचार किया वह काम योग्य था? निश्चय समझो, बिना विचारे जो काम करते हैं, उन्हें निःसीम दुःख भोगने पड़ते हैं।

मेरी यह कथा सुन जिनदत्त ने कहा—कृपासिन्धो! गारदेव का वह काम सर्वथा निन्दनीय था। अविचारित काम करनेवालों की

दशा ऐसी ही हुआ करती है। नाथ! मैं आपकी कथा सुन चुका, कृपाकर आप भी मेरी कथा सुनें।

❁ ❁ ❁

इसी पृथ्वीतल में अनेक उत्तमोत्तम घरों से शोभित, देवतुल्य मनुष्यों से व्याप्त, एक पलाशकूट नाम का सर्वोत्तम नगर है। किसी समय पलाशकूट नगर में कोई रौद्रदत्त नाम का ब्राह्मण निवास करता था। कदाचित् किसी कार्यवश रौद्रदत्त को एक विशाल वन में जाना पड़ा। वह वन में पहुँचा ही था कि एक गेंड़ा इसकी ओर टूट पड़ा।

उस समय रौद्रदत्त को और तो कोई उपाय न सूझा, समीप में एक विशाल वृक्ष खड़ा था, उसी पर वह चढ़ गया। जिस समय गेंड़ा उस वृक्ष के पास आया तो वह शिकार का मिलना कठिन समझ वहाँ से चल दिया और अपने विघ्न को शान्त देख रौद्रदत्त भी नीचे उतर आया। वह वृक्ष अति मनोहर था। उसकी हर एक लकड़ी बड़े पायेदार थी।

इसलिए उसे देख रौद्रदत्त के मुख में पानी आ गया। वह यह निश्चयकर कि इसकी लकड़ी अत्युत्तम है, इसकी स्तम्भ आदि कोई चीज़ बनवानी चाहिए, शीघ्र ही घर आया। हाथ में फरसा ले वह फिर वन को चला गया और बात की बात में वह वृक्ष काट डाला।

कृपानाथ! आप ही कहें, क्या आपत्ति काल में रक्षा करनेवाले उस वृक्ष को काटना रौद्रदत्त के लिये योग्य था?

मैंने कहा—जिनदत्त! सर्वथा अयोग्य था। रौद्रदत्त को कदापि वह वृक्ष काटना नहीं चाहिए था। जो मनुष्य परकृत उपकार को नहीं मानते, वे निश्चित ही पापी गिने जाते हैं, कृतघ्नी मनुष्यों को

संसार में अनेक वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। मैं तुम्हारी कथा सुन चुका। अब मैं भी तुम्हें एक अत्युत्तम कथा सुनाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

❁ ❁ ❁

इसी पृथ्वीतल में उत्तमोत्तम तोरण पताका आदि से शोभित समस्त नगरी में उत्तम कोई द्वारावती नाम की नगरी है। किसी समय द्वारावती के पालक महाराज श्रीकृष्ण थे। महाराज श्रीकृष्ण परम न्यायी थे। न्याय राज्य से चारों ओर उनकी कीर्ति फैली हुई थी और सत्यभामा, रुक्मिणी आदि कामिनियों के साथ भोग भोगते वे आनन्द से रहते थे।

कदाचित् राजसिंहासन पर बैठ वे आनन्द में मग्न थे कि इतने में ही एक माली आया, उसने विनयपूर्वक महाराज को नमस्कार किया, और उत्तमोत्तम फल भेंट कर वह इस प्रकार निवेदन करने लगा—

प्रभो! प्रजापालक! एक परम तपस्वी वन में आकर विराजे हैं। माली के मुख से मुनिराज का आगमन सुन महाराज श्रीकृष्ण को परमानन्द हुआ। वे जिस काम को उस समय कर रहे थे, उसे शीघ्र ही छोड़ दिया, उचित पारितोषिक दे माली को प्रसन्न किया और अनेक नगरवासियों के साथ चतुरंग सेना से मण्डित महाराज ने वन की ओर प्रस्थान कर दिया। वन में आकर मुनिराज को देख भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कुछ उपदेश श्रवण की इच्छा से मुनिराज के पास भूमि पर बैठ गये। उस समय मुनिराज का शरीर व्याधिग्रस्त था, इसलिए उस व्याधि के दूर करणार्थ राजा ने यही प्रश्न किया।

प्रभो ! इस रोग की शान्ति का उपाय क्या है ? किस औषधि के सेवन करने से यह रोग जा सकता है। कृपया मुझे शीघ्र बतावें। राजा श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुन मुनिराज ने कहा—

नरनाथ ! यदि रत्नकापिष्ट नामक औषध प्रयोग किया जाए तो यह रोग शान्त हो सकता है, और इस रोग की शान्ति का कोई उपाय नहीं। मुनिराज के मुख से औषधि सुन राजा श्रीकृष्ण को परम सन्तोष हुआ। मनिराज को विनयपूर्वक नमस्कार कर वे द्वारावती में आ गये और मुनिराज के रोग दूर करने के लिये उन्होंने सर्वत्र आहार की मनाही कर दी।

दूसरे दिन वे ही ज्ञानसागर मुनि आहारार्थ नगर में आये। विधि के अनुसार वे इधर-उधर नगर में घूमे, किन्तु राजा की आज्ञानुसार उन्हें किसी ने आहार न दिया। अन्त में वे राजमन्दिर में आहारार्थ गये। ज्यों ही राजमन्दिर में मुनिराज ने प्रवेश किया, रानी रुक्मिणी ने उनका विधिपूर्वक आह्वानन किया। पड़गाहन आदि कार्य कर भक्तिपूर्वक आहार भी दिया। रत्नकापिष्ट चूर्ण एवं आहार ले चुकने पर मुनिराज वन को चले गये।

इस प्रकार औषधि के सेवन करने से मुनिराज का रोग सर्वथा नष्ट हो गया। वे शीघ्र ही निरोग हो गये।

किसी समय किसी वैद्य के साथ महाराज श्रीकृष्ण वन में गये, जहाँ पर परम पवित्र मुनिराज विराजमान थे, उसी स्थान पर पहुँच उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और मुनिराज के सामने ही वैद्य ने यह कहा—प्रजानाथ ! मुनिराज का रोग दूर हो गया है। वैद्य के मुख से जब मुनिराज ने ये वचन सुने तो वे इस प्रकार उपदेश देने लगे—

नरनाथ ! संसार में जीवों को जो सुख-दुःख, कल्याण और

अकल्याण भोगने पड़ते हैं, उनके भोगने में कारण पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्म हैं। जिस समय ये शुभ-अशुभ कर्म सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, उस समय किसी प्रकार का सुख-दु:ख भोगना नहीं पड़ता। कर्मों के सर्वथा नष्ट हो जाने पर परमोत्तम सुख मोक्ष मिलता है। राजन्! शुभ-अशुभ कर्मरूपी अन्तरंग व्याधि के दूर करने में अतिशय पराक्रमी चक्रवर्ती भी समर्थ नहीं हो सकते। ये औषधि आदि व्याधि की निवृत्ति में बाह्य कारण हैं। उनसे अन्तरंग रोग की निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती।

मुनिराज तो वीतरागभाव से यह उपदेश दे रहे थे, उन्हें किसी से उस समय द्वेष न था किन्तु वैद्यराज को उनका वह उपदेश हलाहल विष सरीखा जान पड़ा। वह अपने मन में ऐसा विचार करने लगा, यह मुनि बड़ा ही कृतघ्नी है। रोग की निवृत्ति का उपाय इसने शुभाशुभ कर्म की निवृत्ति ही बतलायी है, मेरा नाम तक भी नहीं लिया। इस मुनि के वचनों से यह साफ मालूम होता है कि हमने कुछ नहीं किया है, कर्म की निवृत्ति ने ही किया है। इस प्रकार रौद्र विचार करते-करते वैद्य ने उसी समय आयुबंध बाँध लिया और आयु के अन्त में मरकर वह वानरयोनि में उत्पन्न हो गया।

कदाचित् विहार करते-करते मुनिराज, जिस वन में यह वानर रहता था, उसी वन में जा पहुँचे और पर्यंक आसन माँडकर, नासाग्रदृष्टि होकर, ध्यानैकतान हो गये। किसी समय मुनिराज पर बन्दर की दृष्टि पड़ी। मुनिराज को देखते ही उसने जातिस्मरण बल से उसने अपने पूर्वभव का सब समाचार जान लिया।

राजा श्रीकृष्ण के सामने मुनिराज के उपदेश से जो उसने अपना पराभव समझा था, वह पराभव भी उसे उस समय स्मरण हो

आया और मारे क्रोध के उस पापी ने पवित्र किन्तु ध्यानरस में लीन मुनि गुणसागर के ऊपर एक विशाल काष्ठ पटक दिया। उन्हें अनेक प्रकार पीड़ा भी देने लगा, किन्तु मुनिराज जरा भी ध्यान से विचलित न हुए।

चिरकाल तक अनेक प्रयत्न करने पर भी जब बन्दर ने देखा कि मुनिराज ममता रहित समता रस में लीन, निर्मल ज्ञान के धारक, हलन-चलन क्रिया से रहित, परमपद मोक्षपद के अभिलाषी, परम किन्तु उत्कृष्ट धर्मध्यान शुक्लध्यान के आचरण करनेवाले, ध्यानबल से परम सिद्धि प्राप्ति के इच्छुक, पाषाण में उकली हुई प्रतिमा के समान निश्चल और हाथ-पैर की समस्त चेष्टाओं से रहित हैं, तो उसे भी एकदम वैराग्य हो गया।

कुछ समय पहले जो उसके परिणामों में रौद्रता थी, वही मुनिराज की शान्तमुद्रा के सामने शान्तिरूप में परिणत हो गयी। वह अपने दुष्कर्म के लिये अधिक निन्दा करने लगा। मुनिराज पर जो काष्ठ डाला था, वह भी उसने उठा के एक ओर रख दिया। वह पूर्वभव में वैद्य था, इसलिए मुनिराज पर काष्ठ पटकने से जो उनके शरीर में घाव हो गये थे, उत्तमोत्तम औषधियों से उन्हें भी उसने अच्छा कर दिया। अब वह मुनिराज की शुद्ध हृदय से भक्ति करने लगा और यह प्रार्थना करने लगा—

प्रभो! अकारण दीनबन्धो! मेरे इन पापों का छुटकारा कैसे होगा? मैं अब कैसे इन पापों से बचूँगा? कृपाकर मुझे कोई ऐसा उपाय बतावें जिससे मेरा कल्याण हो। मुनिराज परम दयालु थे, उन्होंने वानर को पंच अणुव्रत का उपदेश दिया तथा और भी अनेक उपदेश दिये।

वानर ने भी मुनिराज की आज्ञानुसार पंच अणुव्रत पालने स्वीकार कर लिये तथा अहंकार, क्रोध आदि जो दुर्वासनाएँ थीं, उन्हें भी उसने छोड़ दिया और हरसमय अपने अविचारित काम के लिये पश्चाताप करने लगा।

सेठ जिनदत्त! तुम निश्चय समझो, जो नीच पुरुष बिना विचारे क्रोध, मान, माया आदि कर बैठते हैं, उन्हें बाद में अधिक पछताना पड़ता है। वे तिर्यंच, नरक आदि गतियों में जाते हैं और वहाँ उन्हें अनेक दुस्सह्य वेदनायें सहनी पड़ती हैं। अविचारित काम करनेवाले इस लोक में भी राजा आदि से अनेक दण्ड भोगते हैं, उनकी सब जगह निन्दा फैल जाती है। परलोक में भी उन्हें सुख नहीं मिलता। अबुद्धिपूर्वक काम करनेवालों की सब जगह हंसी होती है। देखो, अनेक शास्त्रों का भले प्रकार ज्ञाता, राजा श्रीकृष्ण के सम्मान का भाजन कहाँ तो वह वैद्य? और कहाँ अशुभकर्म के उदय से उसे बन्दर योनि की प्राप्ति? यह सब फल अज्ञानपूर्वक कार्य करने का है।

जिनदत्त! यह कथा तुम ध्यानपूर्वक सुन चुके हो, तुम्हीं कहो क्या उस बन्दर का वह कार्य उत्तम था?

जिनदत्त ने कहा—मुनिनाथ! वह बन्दर का अविचारित काम सर्वथा अयोग्य था। बिना विचारे अभिमानादि के वशीभूत हो नीच काम करनेवाले मनुष्यों को ऐसे ही फल मिलते हैं।

❀ ❀ ❀

इसके अनन्तर हे मगधदेश के स्वामी राजा श्रेणिक! सेठ जिनदत्त मेरी कथा के उत्तर में दूसरी कथा कहना ही चाहता था कि उसके पास उसका पुत्र कुबेरदत्त भी बैठा था और सब बातों

को बराबर सुन रहा था, इसलिए उसने विवाद को शांत्यर्थ शीघ्र ही वह रत्नभरित घड़ा दूसरी जगह से निकालकर मेरे देखते-देखते अपने पिता के सामने रख दिया और विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—

प्रभो! समस्त जगत के तारक स्वामिन्! मेरे पिता ने बड़ा अनर्थ कर डाला। इस दुष्ट धन के फन्दे में फँसकर आपको भी चोर बना दिया। हाय, इस धन के लिये सहस्र बार धिक्कार है।

दीनबन्धों! यह बात सर्वथा सत्य जान पड़ती है कि संसार में जो घोर से घोर पाप होते हैं, वे लोभ से ही होते हैं। संसार में यदि जीवों का परम अहित करनेवाला है तो यह लोभ ही है।

प्रभो! किसी रीति से अब मेरा उद्धार कीजिए। मुझे मुक्ति की असाधारण कारण जैनेश्वरी दीक्षा दीजिए। अब मैं क्षणभर भी भोग भोगना नहीं चाहता।

जिनदत्त भी रत्नों के घड़ा को और पुत्र को संसार से विरक्त देख अति दुःखित हुआ, अपने अविचारित काम पर उसे बहुत लज्जा आयी, संसार को असार जान उसने भी धन से सम्बन्ध छोड़ दिया। अपनी बारबार निन्दा करनेवाले, समस्त परिग्रह से विमुख उन दोनों पिता-पुत्र ने मुझसे जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली एवं अतिशय निर्मल चित्त के धारक, भले प्रकार उत्तमोत्तम शास्त्रों के पाठी, परिग्रह से सर्वथा निष्पृह, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति के धारक वे दोनों दुर्धर तप करने लगे।

इस प्रकार हे मगधदेश के स्वामी श्रेणिक! अनेक देशों में विहार करते-करते हम तीनों मुनि! राजगृह में भी आये। उक्त दो मुनियों के समान मैं त्रिगुप्ति पालक न था। मेरे अभी तक कायगुप्ति

नहीं हुई, इसलिए मैंने राजमन्दिर में आहार नहीं लिया, आहार के न लेने का और कोई कारण नहीं था।

इस रीति से तीनों मुनिराजों के मुख से भिन्न-भिन्न कथा के श्रवण से अतिशय सन्तुष्ट-चित्त मोक्ष सम्बन्धी कथा के परम प्रेमी महाराज श्रेणिक मुनिराज को नमस्कार कर राजमन्दिर में गये। राजमन्दिर में जाकर सम्यग्दर्शनपूर्वक जैनधर्म धारण कर मुनिराजों के उत्तमोत्तम गुणों को निरन्तर स्मरण करते हुए रानी चेलना और चतुरंग सेना के साथ आनन्दपूर्वक राजमन्दिर में रहने लगे।

इस प्रकार श्री पद्मनाभ भगवान के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में कायगुप्ति कथा का वर्णन करनेवाला ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

बारहवाँ सर्ग

महाराज श्रेणिक को क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति

जिस परमोत्तम धर्म की कृपा से मगधदेश के स्वामी महाराज श्रेणिक को अनुपम सुख मिला, पापरूपी अन्धकार को सर्वथा नाश करनेवाले उस परमधर्म के लिये नमस्कार है।

महाराज श्रेणिक को जैनधर्म में जो सन्देह थे, वे सब हट गये थे, इसलिए भलेप्रकार जैनधर्म के पालक, राज्य सम्बन्धी अनेक भोग भोगनेवाले, शुभ मार्ग पर आरूढ़ राजा श्रेणिक और रानी चेलना सानन्द राजगृहनगर में रहने लगे। कभी वे दोनों दम्पति जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने लगे, कभी मुनियों के उत्तमोत्तम गुणों का स्मरण करने लगे। कभी उन्होंने त्रेसठ शलाका महापुरुषों के पवित्र चरित्र से पूर्ण प्रथमानुयोग शास्त्र का स्वाध्याय किया। कभी लोक की लम्बाई, चौड़ाई आदि बतलानेवाले करणानुयोग शास्त्र को वे पढ़ने लगे। कभी-कभी अहिंसादि श्रावक और मुनियों के चरित्र को बतलानेवाले चरणानुयोग शास्त्र का उन्होंने श्रवण किया और कभी गुण-द्रव्य और पर्यायों का वास्तविक स्वरूप बतलानेवाले स्यादस्ति, स्यान्नास्ति इत्यादि सप्तभंगनिरूपक द्रव्यानुयोग शास्त्रों को विचारने लगे।

इस प्रकार अनेक शास्त्रों के स्वाध्याय में प्रवीण, धर्मसम्पदा के धारक, समस्त विपत्तियों से रहित, रति और कामदेवतुल्य भोग भोगनेवाले बड़े-बड़े ऋद्धिधारक मनुष्यों से पूजित, रतिजन्य सुख के भी भलेप्रकार आस्वादक, वे दोनों दम्पति इन्द्र-इन्द्राणी के समान सुख भोगने लगे और भोगों में वे इतने लीन हो गये कि उन्हें जाता हुआ काल भी ज्ञात नहीं होता था।

बहुत कालपर्यन्त भोग भोगने पर रानी चेलना गर्भवती हुई। उसके उदर में सुषेणचर नाम के देव ने आकर जन्म लिया। गर्भभार से रानी चेलना का मुख फीका पड़ गया। स्वाभाविक कृश शरीर और भी कृश हो गया। वचन भी वह धीरे-धीरे बोलने लग गयी, गति भी मन्द हो गयी और आलस्य ने भी उस पर पूरा-पूरा प्रभाव जमा लिया।

गर्भवर्ती स्त्रियों को दोहले हुआ करते हैं और दोहलों से सन्तान के अच्छे-बुरे का पता लग जाता है, क्योंकि यदि सन्तान उत्तम होंगी तो उसकी माता को दोहले भी उत्तम होंगे और सन्तान खराब होगी तो दोहले भी खराब होंगे। रानी चेलना को भी दोहले होने लगे।

चेलना के गर्भ में महाराज श्रेणिक का परम बैरी, अनेक प्रकार कष्ट देनेवाला पुत्र उत्पन्न होनेवाला था, इसलिए रानी के जितने भी दोहले हुए, सब खराब ही हुए, जिससे उसका शरीर दिनों-दिन क्षीण होने लगा। प्राणपति पर कष्ट आने से उसका सारा शरीर फीका पड़ गया। प्रात:काल में तारागण जैसे विच्छाय जान पड़ते हैं, रानी चेलना भी उसी प्रकार विच्छाय हो गयी।

किसी समय महाराज श्रेणिक की दृष्टि महारानी चेलना पर पड़ी। उसे इस प्रकार क्षीण और विच्छाय देख उन्हें अति दु:ख हुआ। रानी के पास आकर और स्नेह परिपूर्ण वचनों में वे इस प्रकार कहने लगे—

प्राणबल्लभे! मेरे नेत्रों को अतिशय आनन्द देनेवाली प्रिये! तुम्हारे चित्त में ऐसी कौन सी प्रबल चिन्ता विद्यमान है, जिससे तुम्हारा शरीर रात-दिन क्षीण और कान्ति रहित होता चला जाता है। कृपाकर उस चिन्ता का कारण मुझसे कहो, बराबर उसके दूर

करने के लिये प्रयत्न किया जाएगा। महाराज के ऐसे शुभ वचन सुन पहले तो लज्जावश रानी चेलना ने कुछ भी उत्तर न दिया, किन्तु जब उसने महाराज का आग्रह विशेष देखा तो वह दु:खाश्रुओं को पोंछती हुई विनय से इस प्रकार कहने लगी—

प्राणनाथ! मुझ सरीखी अभागिनी डाकिनी स्त्री का संसार में जीना सर्वथा निस्सार है। यह जो गर्भ धारण किया है, सो गर्भ नहीं, आपकी अभिलाषाओं को मूल से उखाड़नेवाला अंकुर बोया है। इस दुष्ट गर्भ की कृपा से मैं प्राण लेनेवाली डांकिनी पैदा हुई हूँ।

प्रभो! यद्यपि मैं अपने मुख से कुछ कहना नहीं चाहती, तथापि अपके आग्रहवश कुछ कहती हूँ। मुझे यह खराब दोहला हुआ है कि आपके वक्ष:स्थल को विदार रक्त देखूँ। इस दोहला की पूर्ति होना कठिन है, इसलिए मैं इस प्रकार अति चिन्तित हूँ।

रानी चेलना के ऐसे वचन सुन महाराज श्रेणिक ने उसी समय अपने वक्षस्थल को चीरा और उससे निकले रक्त को रानी चेलना को दिखाकर उसकी इच्छा की पूति की। नवम मास के पूर्ण होने पर रानी चेलना के पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्ति का समाचार महाराज के पास भी पहुँचा। उन्होंने दीन अनाथ याचकों को इच्छाभर दान दिया और पुत्र को देखने के लिये गर्भगृह में गये।

ज्यों ही महाराज अपने पुत्र के पास गये कि महाराज को देखते ही उसे पूर्वभव का स्मरण हो आया।

महाराज को पूर्वभव का अपना प्रबल वैरी जान मारे क्रोध के उसकी मुट्ठी बँध गयी, मुख भयंकर और कुटिल हो गया, नेत्र लोहूलोहान हो गये, मारे क्रोध के भोहें चढ़ गयीं, ओंठ भी डसने लगा और उसकी आँखें भी इधर-उधर फिरने लगीं।

रानी ने जब उसकी यह दशा देखी तो उसे प्रबल अनिष्ट का करनेवाला समझ वह डर गयी। अपने हित की इच्छा से निर्मोह हो, उसने वह पुत्र शीघ्र ही वन को भेज दिया। जब राजा को यह पता लगा कि रानी ने भयभीत हो पुत्र को वन में भेज दिया है तो उससे न रहा गया। पुत्र पर मोह कर उन्होंने शीघ्र ही उसे राजमन्दिर में मँगा लिया।

उसे पालन पोषण के लिये किसी धाय के हाथ सौंप दिया और उसका नाम कुणिक रख दिया एवं वह कुणिक दिनोंदिन बढ़ने लगा।

कुमार कुणिक के बाद रानी चेलना के वारिषेण नाम का दूसरा पुत्र हुआ। कुमार वारिषेण अनेक ज्ञान विज्ञानों का पारगामी, मनोहर रूप का धारक, सम्यग्दर्शन से भूषित और मोक्षगामी था। वारिषेण के अनन्तर रानी चेलना के हल्ल, हल्ल के पीछे विदल, विदल के पीछे जितशत्रु ये तीन पुत्र और भी उत्पन्न हुए और ये तीनों ही कुमार माता-पिता को आनन्दित करनेवाले हुए।

इस प्रकार पाँच पुत्रों के बाद रानी चेलना के प्रबल भाग्योदय से सबको आनन्द देनेवाला फिर गर्भ रह गया। गर्भ के प्रसाद से रानी चेलना का आहार कम हो गया। गति भी धीमी हो गयी, शरीर पर पांडिमा छा गयी, आवाज मन्द हो गयी, शरीर अति कृश हो गया, पेट की त्रिवलि भी छिप गयी। होनेवाला पुत्र समस्त शत्रुओं के मुख काले करेगा, इस बात को जतलाते हुए ही उसके दोनों चूचक भी काले पड़ गये एवं गर्भभार के सामने उसे भूषण भी नहीं रुचने लगे।

किसी समय रानी के मन में यह दोहला हुआ कि ग्रीष्म काल

में हाथी पर चढ़कर बरसते मेघ में इधर-उधर घूमूँ किन्तु इस इच्छा की पूर्ति अति कठिन जान पड़ी, इसलिए उस चिन्ता से उसका शरीर दिनोंदिन अधिक क्षीण होने लगा। जब महाराज ने रानी को अति चिन्ताग्रस्त देखा तो उन्हें परम दु:ख हुआ। चिन्ता का कारण जानने के लिये वे रानी से इस प्रकार कहने लगे—

प्रिये! मैं तुम्हारा शरीर दिनोंदिन क्षीण देखता चला जाता हूँ। मुझे शरीर की क्षीणता का कारण नहीं जान पड़ता। तुम शीघ्र कहो। तुम्हें कौन सी चिन्ता ऐसी भयंकरता से सता रही है? महाराज के ऐसे वचन सुन रानी ने कहा—

कृपानाथ! मुझे यह दोहला हुआ है कि मैं ग्रीष्मकाल में बरसते हुए मेघ में हाथी पर चढ़कर घूमूँ किन्तु यह इच्छा पूर्ण होनी दु:साध्य है, इसलिए मेरा शरीर दिनोंदिन क्षीण होता चला जाता है। रानी की ऐसी कठिन इच्छा सुनी तो महाराज अचम्भे में पड़ गये। उस इच्छा के पूर्ण करने का उन्हें कोई उपाय न सूझा, इसलिए वे मौन धारण कर निश्चेष्ट बैठ गये।

कुमार अभय ने महाराज की यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ, वे महाराज के सामने इस प्रकार विनय से पूछने लगे—पूज्य पिता! मैं आपको प्रबल चिन्ता से आतुर देख रहा हूँ, मुझे नहीं मालूम पड़ता कि अकारण आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं? कृपया चिन्ता का कारण मुझे भी सुनावें।

पुत्र अभय के ऐसे वचन सुनकर महाराज श्रेणिक ने सारी आत्मकहानी कुमार को कह सुनायी और चिन्ता दूर करने का कोई उपाय न समझ वे अपना दु:ख भी प्रगट करने लगे।

कुमार अभय अति बुद्धिमान थे। ज्यों ही उन्होंने पिता के मुख

से चिन्ता का कारण सुना, शीघ्र ही सन्तोषप्रद वचनों में उन्होंने कहा—पूज्यवर! यह बात क्या कठिन है, मैं अभी इस चिन्ता के हटाने का उपाय सोचता हूँ, आप अपने चित्त को मलिन न करें तथा चिन्ता दूर करने का उपाय भी सोचने लगे।

कुछ समय सोचने पर उन्हें यह बात मालूम हुई कि यह काम बिना किसी व्यन्तर की कृपा के नहीं हो सकता। इसलिए आधी रात के समय घर से निकले। व्यन्तर की खोज में किसी श्मशानभूमि की ओर चल दिए एवं वहाँ पहुँचकर किसी विशाल वटवृक्ष के नीचे इधर-उधर घूमने लगे।

वह श्मशान उल्लुओं के फूत्कार शब्दों से व्याप्त था, शृंगालों के भयंकर शब्दों से भयावह था, जगह-जगह वहाँ अजगर फुंकार शब्द कर रहे थे, मदोन्मत्त हाथियों से अनेक वृक्ष उजड़े पड़े थे, अर्द्धदाह मुर्दे और फूटे घड़ों के समान उनके कपाल वहाँ जगह-जगह पड़े थे, माँसाहारी भयंकर जीवों के रौद्र शब्द क्षण-क्षण में सुनाई पड़ते थे, अनेक जगह वहाँ मुर्दे जल रहे थे और चारों ओर उनका धुआं फैला हुआ था। माँस लोलुपी कुत्ते भी वहाँ, जहाँ-तहाँ भयावह शब्द करते थे। चारों ओर वहाँ राख की ढेरियाँ पड़ी थीं। इसलिए मार्ग जानना भी कठिन पड़ जाता था एवं चारों ओर वहाँ हड्डियाँ भी पड़ी थीं।

बहुत काल अन्धकार में इधर-उधर घूमने पर किसी वटवृक्ष के नीचे कुछ दीपक जलते हुए कुमार को दिख पड़े, वह उसी वृक्ष की ओर झुक पड़ा और वृक्ष के नीचे आकर उसे धीर-वीर जयशील स्थिरचित्त चिरकाल से उद्विग्न एवं जिसके चारों ओर फूल रखे हुए हैं ऐसा कोई उत्तम पुरुष दिख पड़ा। उस पुरुष को ऐसी दशापन्न देख कुमार ने पूछा—

भाई ! तू कौन है ? क्या तेरा नमा है ? कहाँ से तू यहाँ आया ? तेरा निवासस्थान कहाँ है ? और तू यहाँ आकर क्या सिद्ध करना चाहता है ? कुमार के ऐसे वचन सुन उस पुरुष ने कहा—

राजकुमार ! मेरा वृत्तान्त अतिशय आश्चर्यकारी है। यदि आप उसे सुनना चाहते हैं तो सुनें, मैं कहता हूँ—

❀ ❀ ❀

विजयार्धपर्वत की उत्तर दिशा में एक गमनप्रिय नाम का नगर है। गमनप्रिय नगर का स्वामी अनेक विद्याधर और मनुष्यों से सेवित मैं राजा वायुवेग था। कदाचित् मुझे विजयार्धपर्वत पर जिनेन्द्र चैत्यालयों के वन्दनार्थ अभिलाषा हुई। मैं अनेक राजाओं के साथ आकाशमार्ग से अनेक नगरों को निहारता हुआ विजयार्धपर्वत पर आ गया। उसी समय राजकुमार सुभद्रा जो कि बालकपुर के महाराज की पुत्री थी, अपनी सखियों के साथ विजयार्धपर्वत पर आयी।

राजकुमार सुभद्रा अतिशय मनोहरा थी, यौवन की अद्वितीय शोभा से मण्डित थी, मृगनयनी थी। उसके स्थूल किन्तु मनोहर नितम्ब उसकी विचित्र शोभा बना रहे थे एवं रति के समान अनेक विलास संयुक्त होने से वह साक्षात् रति ही जान पड़ती थी।

ज्यों ही कमलनेत्रा सुभद्रा पर मेरी दृष्टि पड़ी मैं बेहोश हो गया, कामबाण मुझे बेहद रीति से बेंधने लगे, मेरा तेजस्वी शरीर भी उस समय सर्वथा शिथिल हो गया। विशेष कहाँ तक कहूँ, तन्मय होकर मैं उसी का ध्यान करने लगा।

सुभद्रा बिना जब मेरा एक क्षण भी वर्ष सरीखा बीतने लगा तो बिना किसी के पूछे मैं जबरन सुभद्रा को हर लाया और गमनप्रिय नगर में आकर आनन्द से उसके साथ भोग भोगने लगा। इधर मैं

तो राजकुमारी सुभद्रा के साथ आनन्द से रहने लगा और उधर किसी सखी ने बालकपुर के स्वामी सुभद्रा के पिता से सारी वार्ता कह सुनायी और ठिकाना भी बतला दिया।

सुभद्रा की इस प्रकार हरणवार्ता सुन मारे क्रोध के उसका शरीर भभक उठा और विमान पंक्तियों से समस्त गगनमण्डल को आच्छादन करता हुआ शीघ्र ही गगनप्रिय नगर की ओर चल पड़ा।

बालकपुर के स्वामी का इस प्रकार आगमन मैंने भी सुना, अपनी सेना सजाकर मैं शीघ्र उसके सन्मुख आया। चिरकाल तक मैंने उसके साथ और विद्याओं के जानकार तीक्ष्ण खड्गों के धारी उसके योद्धाओं के साथ युद्ध किया। अन्त में बालकपुर के स्वामी ने अपने विद्याबल से मेरी समस्त विद्या छीन ली। सुभद्रा को भी जबरन ले गया। विद्या के अभाव से मैं विद्याधर भी भूमिगोचरी के समान रह गया।

अनेक शोकों से आकुलित हो मैं पुन: उस विद्या के लिये यह मन्त्र सिद्ध कर रहा हूँ, बारह वर्ष पर्यन्त इस मन्त्र के जपने से वह विद्या सिद्ध होगी, ऐसा नैमित्तिक ने कहा है, किन्तु बारह वर्ष बीत चुके, अभी तक विद्या सिद्ध नहीं हुई; इसलिए मैं अब घर जाना चाहता हूँ। ज्यों ही कुमार ने उस पुरुष के मुख से ये समाचार सुने शीघ्र ही पूछा—

भाई! यह कौन सा मन्त्र है, मुझे भी तो दिखाओ, देखूँ तो वह कैसा कठिन है? कुमार के इस प्रकार पूछे जाने पर उस पुरुष ने शीघ्र ही वह मन्त्र कुमार को बतला दिया।

कुमार अतिशय पुण्यात्मा थे। उस समय उनका सौभाग्य था, इसलिए उन्होंने मन्त्र सीखकर शीघ्र ही उधर-उधर कुछ बीज

क्षेपण कर दिये और बात की बात में वह मन्त्र सिद्ध कर लिया। मन्त्र से जो विद्या सिद्ध होनेवाली थी, शीघ्र ही सिद्ध हो गयी। कुमार के प्रसाद से राजा वायुवेग को भी विद्या सिद्ध हो गयी जिससे उसे परम सन्तोष हो गया एवं वे दोनों महानुभाव आपस में मिल भेंटकर बड़े प्रेम से अपने-अपने स्थान चले गये।

मन्त्र सिद्ध कर कुमार अपने घर आये। विद्याबल से उन्होंने शीघ्र ही कृत्रिम मेघ बना दिये। रानी चेलना को हाथी पर चढ़ा लिया। इच्छानुसार उसे जहाँ-तहाँ घुमाया। जब उसके दोहले की पूर्ति हो गयी तो वह अपने राजमहल में आयी। दोहले की पूर्ति समझ जो उसके चित्त में खेद था, वह दूर हो गया। अब उसका शरीर सोने के समान दमकने लगा। नौ मास के बीत जाने पर रानी चेलना के अतिशय प्रतापी शत्रुओं का विजयी पुत्र उत्पन्न हुआ और दोहले के अनुसार उसका नाम गजकुमार रखा गया।

गजकुमार के बाद रानी चेलना के मेघकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सात ऋषियों से आकाश में जैसी तारा शोभित होती है, रानी चेलना भी ठीक उसी प्रकार सात पुत्रों से शोभित होने लगी। इस प्रकार आपस में अतिशय सुखी समस्त खेदों से रहित वे दोनों दम्पति आनन्दपूर्वक भोग भोगते राजगृहनगर में रहने लगे।

कदाचित् अनेक राजा और सामन्तों से सेवित, भले प्रकार बन्दीजनों से स्तुत्य महाराज श्रेणिक छत्र और चंवर चमरों से शोभित अत्युन्नत सिंहासन पर बैठे ही थे कि अचानक ही सभा में वनमाली आया। उसने विनय से महाराज को नमस्कार किया एवं षट्काल के फल और पुष्प महाराज की भेंट कर, वह इस प्रकार निवेदन करने लगा—

समस्त पुण्यों के भण्डार! बड़े-बड़े राजाओं से पूजित! दयामयचित्त के धारक! चक्र और इन्द्र की विभूति से शोभित! देव! विपुलाचल पर्वत पर धर्म के स्वामी भगवान महावीर का समवसरण आया है। भगवान के समवसरण के प्रसाद से वनश्री साक्षात् स्त्री बन गयी है, क्योंकि स्त्री जैसी पुत्ररूपी फलयुक्त होती है, वनश्री भी स्वादु और मनोहर फलयुक्त हो गयी है। स्त्री जैसी सुपुष्पा रजोधर्मयुक्त होती है, वनश्री भी सुपुष्पा हरे-पीले अनेक फूलों से सज्जित हो गयी है। स्त्री जैसी यौवन अवस्था में मदनोद्दीप्ता काम से दीप्त हो जाती है, वनश्री भी मदनोद्दीप्ता मदनवृक्ष से शोभित हो गयी है।

भगवान के समवसरण की कृपा से तालाबों ने सज्जनों के चित्त की तुलना की है, क्योंकि सज्जनों का चित्त जैसा रसपूर्ण करुणा आदि रसों से व्याप्त रहता है, तालाब भी उसी प्रकार रस पूर्ण जल से भरे हुए हैं। सज्जानों का चित्त जैसा सपद्म अष्टदल-कमलाकार होता है, तालाब भी सपद्म-मनोहर कमलों से शोभित है। सज्जनचित्त जैसा वर-उत्तम होता है, तालाब भी वर-उत्तम है। सज्जन का चित्त जैसा निर्मल होता है, तालाब भी उसी प्रकार निर्मल है। सज्जनों के चित्त जैसे गम्भीर होते हैं, तालाब भी इस समय गम्भीर है।

इस प्रकार से भी वनश्री ने स्त्री की तुलना की है क्योंकि स्त्री जैसी सवंशा-कुलीन होती है, बनश्री भी सवंशा बाँसों से शोभित है। स्त्री जैसी तिलकोद्दीप्ता तिलक से शोभित रहती है, वनश्री भी तिलकोद्दीप्ता तिलकवृक्ष से शोभित है। स्त्री जैसी मदनाकुला-काम से व्याकुल रहती है, वनश्री भी मदनाकुला-मदन वृक्षों से

व्याप्त है। स्त्री जैसी सुवर्णा मनोहर वर्णवाली होती है, वनश्री भी सुवर्णा हरे-पीले वर्णों से युक्त है। स्त्री के सर्वांग में जैसा मन्मथ-काम जाज्वल्यमान रहता है, वनश्री भी मन्मथ जाति के वृक्षों से जहाँ-तहाँ व्याप्त है।

पद्मिनी स्त्री जैसी भोरों की जंघारों से युक्त रहती है, वनश्री भी भारों की जंघार से शोभित है। स्त्री जैसी हास्ययुक्त होती है, वनश्री भी पुष्परूपी हास्ययुक्त है। स्त्री जैसी स्तनयुक्त होती है, वनश्री भी ठीक उसी प्रकार फलरूपी स्तनों से शोभित है। प्रभो! इस समय नैवले आनन्द से सर्पों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। बिल्ली के बच्चे वैर रहित मूसों के साथ खेल रहे हैं। अपना पुत्र समझ हथिनी सिंहनी के बच्चों को आनन्द से दूध पिला रही है और सिंहनी हथिनियों के बच्चों को प्रेम से दूध पिला रही है।

प्रजापालक! समवसरण के प्रसाद से समस्त जीव वैररहित हो गये हैं, मयूरगण सर्पों के मस्तकों पर अनंद से नृत्य कर रहे हैं। विशेष कहाँ तक कहा जाए, इस समय असम्भव भी काम बड़े-बड़े देवों से सेवित महावीर भगवान की कृपा से सम्भव हो रहे हैं।

माली से इस प्रकार अचिन्त्य प्रभावशाली भगवान महावीर का आगमन सुन मारे आनन्द के महाराज का शरीर रोमांचित हो गया। उदयाद्रि से जैसा सूर्य उदित होता है, महाराज भी उसी प्रकार शीघ्र ही सिंहासन से उठ पड़े।

जिस दिशा में भगवान का समवसरण आया था, उस दिशा की ओर सात पैंड चलकर भगवान को परोक्ष नमस्कार किया। उस समय जितने उनके शरीर पर कीमती भूषण और वस्त्र थे, तत्काल उन्हें माली को दे दिया। धन आदि देकर भी माली को सन्तुष्ट

किया। समस्त जीवों की रक्षा करनेवाले महाराज ने समस्त नगरवासियों के बताने के लिये बड़ी भक्ति और आनन्द से नगर में ड्योढ़ी पिटवा दी। ड्योढ़ी की आवाज सुनते ही नगरनिवासी शीघ्र ही राजमहल के आँगन में आ गये। उनमें अनेक तो घोड़े पर सवार थे और अनेक हाथी पर और रथों पर बैठे थे।

सब नगरवासियों के एकत्रित होते ही रानी, पुरवासी, राजा, सामन्त और मन्त्रियों से वेष्टित महाराज शीघ्र ही भगवान की पूजार्थ वन की ओर चल दिये। मार्ग में घोड़े आदि के पैरों से जो धूलि उठती थी, वह हाथियों के मदजल से शान्त हो जाती थी। उस समय जीवों के कोलाहलों से समस्त आकाश व्याप्त था, इसलिए कोई किसी की बात तक भी नहीं सुन सकता था। यदि किसी को किसी से कुछ कहना होता था तो वह उसके मुँह की ओर देखता था और बड़े कष्ट से इशारे से अपना तात्पर्य उसे समझाता था।

उस समय ऐसा जान पड़ता था मानों बाजों के शब्दों से सेना दिक्स्त्रियों को बुला रही है। उस समय सभी का चित्त कर्मविजयी भगवान महावीर में लगा था और छत्रों का तेज सूर्यतेज को भी फीका कर रहा था। इस प्रकार चलते-चलते महाराज समवसरण के समीप जा पहुँचे।

समवसरण को देख महाराज शीघ्र ही गज से उतर पड़े। मानस्तम्भ और प्रतिहार्यों की अपूर्व शोभा देखते-देखते समवसरण में घुस गये।

वहाँ जिनेन्द्र महावीर को विशाल किन्तु मनोहर सिंहासन पर विराजमान देख भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं मन्त्रपूर्वक पूजा करना प्रारम्भ कर दिया। सबसे प्रथम महाराज ने क्षीरोदधि के

समान उत्तम और चन्द्रमा के समान निर्मल जल से प्रभु की पूजा की। पश्चात् चारों दिशा में महकनेवाले चन्दन से और अखण्ड तन्दुल से जिनेन्द्र पूजे। कामबाण के विनाशार्थ पुष्प और क्षुधारोग के विनाशार्थ उत्तमोत्तम नैवेद्य चढ़ाये। समस्त दिशाएँ प्रकाश करनेवाले रत्नमयी दीपकों से और उत्तम धूप से भी भगवान का पूजन किया एवं मोक्षफल की प्राप्ति के लिये उत्तमोत्तम फल और अनर्धपद की प्राप्तर्थ अर्ध भी भगवान के सामने चढ़ाये। जब महाराज श्रेणिक अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा कर चुके तो उन्होंने सानन्द हो इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया—

हे समस्त मानवों के स्वामी! बड़े-बड़े इन्द्र और चक्रवर्तिकों से पूजित आपमें इतने अधिक गुण हैं कि प्रखर ज्ञान के धारक गणधर भी आपके गुणों का पता नहीं पा सकते। आपके गुण स्तवन करने में विशाल शक्ति के धारक इन्द्र भी असमर्थ हैं। मुझे जान पड़ता है काम को सर्वथा आपने ही जलाया है, क्योंकि महादेव तो उसके भय से अपने अंग में उसकी विभूति लपेटे फिरते हैं। विष्णु रात-दिन स्त्री समुदाय में घुसे रहते हैं, ब्रह्मा भी चतुर्मुख हो चारों दिशा की ओर कामदेव को देखते रहते हैं और सदा भय से कांपते रहते हैं।

प्रभो! ऊँचापना जैसा मेरुपर्वत में है, अन्य किसी में नहीं, उसी प्रकार अखण्ड ज्ञान जैसा आप में है, वैसा किसी में नहीं।

दीनबन्धो! जो मनुष्य आपके चरणाश्रित हो चुका है, यदि वह मत्त और सुगन्ध से आये मोरों की झन्कार से अतिशय क्रुद्ध महाबली गज के चक्र में भी आ जाए तो भी गज उसका कुछ नहीं कर सकता। जिस मनुष्य के पास आपका ध्यानरूपी अष्टापद मौजूद है,

मत्त हाथियों के गण्डस्थल विदारण करने में चतुर सिंह भी उसे कष्ट नहीं पहुँचा सकता। आपके चरणसेवी मनुष्य का कल्पान्तकालीन और अपने फुलिंगों से जाज्वल्यमान अग्नि भी कुछ नहीं कर सकती।

महामुने! जिस मनुष्य के हृदय में आपकी नामरूपी नागदमनी विराजमान है, चाहे सर्प कैसा भी भयंकर हो, उस मनुष्य के देखते ही शीघ्र निर्विष हो जाता है। दयासिन्धो! जो मनुष्य आपके चरणरूपी जहाज में स्थित है, चाहे वह बडवानल से व्याप्त, मगर आदि जीवों से पूर्ण समुद्र में ही क्यों न जा पड़े, बात की बात में तैरकर पार पर आ जाता है।

जिनेन्द्र! जिन मनुष्यों ने आपका नामरूपी कवच धारण कर लिया है, वे अनेक भाले, बड़े-बड़े हाथियों के चित्कारों से परिपूर्ण, भयंकर संग्राम में भी देखते-देखते विजय पा लेते हैं। कोढ़, जलोदर आदि भयंकर रोगों से पीड़ित भी मनुष्य आपके नामरूपी परमौषधि की कृपा से शीघ्र ही निरोग हो जाता है।

गुणाकर! जिसका अंग सांकलों से जड़का हुआ है, हाथ-पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं, यदि ऐसे मनुष्यों के पास आपका नामरूपी अद्भुत खड्ग मौजूद है, तो वे शीघ्र ही बन्धनरहित हो जाते हैं। प्रभो! अनादिकाल से संसाररूपी घर में मग्न अनेक दु:खों का सामना करनेवाले जीवों के यदि शरण है तो तीनों लोक में आप ही है।

प्रभो! गणनातीत आपके गुणों की गणना करना असम्भव है, तथापि हे कृपानाथ! मैंने थोड़े से गुणों का वर्णन किया है। हे कल्याणरूप जिनेन्द्र! आपके लिये नमस्कार है। महामुने! परम योगेश्वर वीर भगवान! आप मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार भगवान महावीर को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर और गौतम गणधर को भी भक्तिपूर्वक सिर नवाकर महाराज मनुष्य कोठे में बैठ गये एवं धर्मरूपी अमृतपान की इच्छा से हाथ जोड़कर धर्म के बावत कुछ पूछा।

महाराज श्रेणिक के इस प्रकार पूछने से समस्त प्रकार की चेष्टाओं से रहित भगवान महावीर अपनी दिव्यवाणी से इस प्रकार उपदेश देने लगे—

राजन्! सकल भव्योत्तम! प्रथम ही तुम सात तत्त्वों का श्रवण करो। सातों सम्यग्दर्शन के कारण हैं और सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण है। वे सात तत्त्व—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं। जीव के मूलभेद दो हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर पाँच प्रकार हैं—पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति। ये पाँचों प्रकार के जीव चारों प्राणवाले होते हैं और इनके केवल स्पर्शन इन्द्रिय होती है। ये पाँचों प्रकार के जीव सूक्ष्म और स्थूल भेद से दो प्रकार भी कहे गये हैं और ये सब जीव अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त इस रीति से तीन प्रकार भी हैं।

पृथ्वी जीव चार प्रकार हैं—पृथ्वीकाय, पृथ्वीजीव, पृथ्वी और पृथ्वीकायिक। इसी प्रकार जलादि के भी चार भेद समझ लेना चाहिए। आदि के चार जीव घनांगुल के असंख्यातवें भाग शरीर के धारक हैं। वनस्पतिकाय के जीवों का उत्कृष्ट शरीर परिमाण तो संख्यातांगुल है और जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग है। शुद्धेतर पृथ्वीजीवों की आयु बारह हजार वर्ष की है।

जलजीवों की बाईस हजार वर्ष की है, तेजकायिक जीवों की सात हजार और तीन वर्ष की है एवं वायुकायिक जीवों की तीन

हजार और वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की है। विकलेन्द्रिय जीव तीन प्रकार हैं—दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चौइन्द्रिय। संज्ञी और असंज्ञी भेद से पंचेन्द्रिय भी दो प्रकार हैं। पंचेन्द्रिय जीव मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी भेद से भी चार प्रकार हैं। नारकी सातों नरक में रहने के कारण सात प्रकार हैं।

तिर्यंचों के तीन भेद हैं—जलचर, थलचर और नभचर। भोगभूमिज और कर्मभूमिज भेद से मनुष्य दो प्रकार के हैं। जो मनुष्य कर्मभूमिज हैं, वे ही मोक्ष के अधिकारी हैं।

देव भी चार प्रकार हैं—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। भवनवासी दस प्रकार हैं, व्यन्तर आठ प्रकार, ज्योतिषी पाँच प्रकार और वैमानिक दो प्रकार हैं। इस प्रकार संक्षेप से जीवों का वर्णन कर दिया गया। अब अजीवतत्त्व का वर्णन भी सुनिये—

अजीवतत्त्व के पाँच भेद हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। उनमें धर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी, जीव और पुद्गल के गमन में कारण, एक अपूर्व और सत्तारूप द्रव्य लक्षण युक्त है। अधर्मद्रव्य भी वैसा ही है किन्तु इतना विशेष है कि यह स्थिति में सहकारी है।

आकाश एक अखण्ड द्रव्य होने पर भी जीवादि द्रव्यों की विद्यमानता और अविद्यमानता की अपेक्षा से उसके दो भेद हैं—एक लोकाकाश, दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है और अलोकाकाश अनन्त प्रदेशी है। लोकाकाश सब द्रव्यों को घर के समान अवगाह दान देने में सहायक है।

कालद्रव्य भी लोकप्रमाण असंख्यात और एक है, प्रदेशी द्रव्य लक्षण युक्त है। यह रत्नों की राशि के समान लोकाकाश में व्याप्त

है और समस्त द्रव्यों के वर्तना परिणाम में कारण है। कर्मवर्गणा, आहारवर्गणा आदि भेद से पुद्गलद्रव्य अनन्त प्रकार हैं और यह शरीर और इन्द्रिय आदि की रचना में कारण हैं!

आस्रव दो प्रकार हैं—द्रव्यास्रव और भावास्रव। दोनों ही प्रकार के आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग हैं। जीव के विभाव परिणामों से बन्ध होता है, और उसके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। आस्रव का रुकना संवर है। संवर के भी दो भेद हैं—द्रव्यसंवर और भावसंवर। और इन दोनों ही प्रकार के संवरों के कारण गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि हैं।

निर्जरा दो प्रकार हैं—सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। सविपाक निर्जरा साधारण और अविपाक निर्जरा तप के प्रभाव से होती है। द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष के भेद से मोक्ष भी दो प्रकार कहा गया है और समस्त कर्मों से रहित हो जाना मोक्ष है। मगधेश! यदि इन्हीं तत्त्वों के साथ पुण्य और पाप जोड़ दिये जाएँ तो ये ही नव पदार्थ कहलाते हैं।

इस प्रकार पदार्थों के स्वरूप के वर्णन के अनन्तर भगवान ने श्रावक व मुनिधर्म का भी वर्णन किया।

महाराज श्रेणिक के प्रश्न से भगवान ने त्रेसठशलाका पुरुषों का चरित्र भी वर्णन किया। जिससे महाराज श्रेणिक के चित्त में जो जैनधर्म विषयक अन्धकार था, वह शीघ्र ही निकल गया। जब महाराज श्रेणिक भगवान की दिव्यध्वनि से उपदेश सुन चुके तो अतिशय विशुद्ध मन से राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर को नमस्कार किया और विनय से इस प्रकार निवेदन करने लगे—

भगवान! पुराणश्रवण से जैनधर्म में मेरी बुद्धि दृढ़ है। संसार नाश करनेवाली श्रद्धा भी मुझमें है, तथापि प्रभो! मैं नहीं जान सकता कि मेरे मन में ऐसा कौन सा अभिमान बैठा है, जिससे मेरी बुद्धि व्रतों की ओर नहीं झुकती।

मगधेश के ऐसे वचन सुन गणनायक—गौतम ने कहा—

राजन्! भोग के तीव्र संसर्ग से, गाढ़ मिथ्यात्व से, मुनिराज के गले में सर्प डालने से, दुश्चरित्र से और तीव्र परिग्रह से तूने पहले नरकायु बाँध रखी है, इसलिए तेरी परिणति व्रतों की ओर नहीं झुकती। जो मनुष्य देवगति का बन्धन बाँध चुके हैं, उन्हीं की बुद्धि व्रत आदि में लगती है। अन्य गति की आयु बाँधनेवाले मनुष्य व्रतों की ओर नहीं झुकते।

नरनाथ! संसार में तू भव्य और उत्तम है। पुराणश्रवण से उत्पन्न हुई विशुद्धि से तेरा मन अतिशय शुद्ध है, सात प्रकृतियों के उपशम से तेरे औपशमिक सम्यग्दर्शन था। अन्तर्मुहूर्त में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पाकर उन्हीं सात प्रकृतियों के क्षय से अब तेरे क्षायिक-सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी है। यह क्षायिक सम्यक्त्व निश्चल अविनाशी और उत्कृष्ट है।

भव्योत्तम! जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित पूर्वापरविरोध रहित शास्त्रों द्वारा निरूपित निर्दोष सात तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा गया है।

इस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अतिशय दुर्लभ मानी गयी है। संसाररूपी विषवृक्ष के जलाने में सम्यग्दर्शन के सिवाय कोई वस्तु समर्थ नहीं। सम्यग्दर्शन से बढ़कर संसार में कोई सुख भी नहीं और न कोई कर्म और तप है। देखो—सम्यग्दर्शन की कृपा से समस्त सिद्धियाँ मिलती हैं। सम्यग्दर्शन की ही कृपा से तीर्थंकरपना

और स्वर्ग मिलता है एवं संसार में जितने सुख हैं, वे भी सम्यग्दर्शन की कृपा से बात की बात में प्राप्त हो जाते हैं।

राजन्! इस सम्यग्दर्शन की कृपा से जीवों के कुव्रत भी सुव्रत कहलाते हैं और उसके बिना योगियों के सुव्रत भी कुव्रत हो जाते हैं। भव्योत्तम! तू अब किसी बात का भय मत कर। सम्यग्दर्शन की कृपा से आगे उत्सर्पिणी काल में तू इसी भरतक्षेत्र में पद्मनाभ नाम का धारक तीर्थंकर होगा, इसलिए तू आसन्नभव्य है। तू अब निर्भय हो। तूने तीर्थंकरप्रकृति की कारण भावनायें भा ली है, समस्त दोष रहित तूने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है और विनयगुण तुझमें स्वभाव से है। तेरा चित्त भी शीलव्रत की ओर झुका है। यह शीलव्रत व्रतों की रक्षार्थ छत्र के समान है।

मगधेश्वर! तू अपने चित्त में संवेग की भावना करता है, भवभोग से निवृत्त होने के लिये तप में भी मन लगाता है, शक्त्यानुसार धर्मार्थ जिनपूजा आदि में तेरा धन भी खर्च होता है, साधुओं का समाधान भी तू आश्चर्यकारी करता है, शास्त्रानुसार तू योगियों का वैयावृत्य भी करता है, समस्त कर्मरहित जिनेन्द्र भगवान में तेरी भक्ति भी अद्वितीय है, भले प्रकार शास्त्र के जानकार उत्तमोत्तम आचार्यों की उपासना तू भक्ति और हर्षपूर्वक करता है, जिनप्रतिपादित शास्त्रों का तू भक्त भी है, इस समय षट् आवश्यकों में तेरी बुद्धि भी अपूर्व है, धर्म के प्रसार के लिये तू जैनमार्ग की प्रभावना भी करता है। जैनमार्ग के अनुयायी मनुष्यों में वात्सल्य भी तेरा उत्तम है।

राजन्! त्रैलोक्य में मोक्ष की कारण परम पवित्र सोलहकारण भावना भाने से तूने तीर्थंकर पद का बन्ध भी बाँध लिया है। अब तू प्राणों का त्यागकर प्रथम नरक रत्नप्रभा में जाएगा और वहाँ

मध्य आयु को भोगकर भविष्यत् काल में नियम से रत्नधामपुर में तू तीर्थंकर होगा।

मुनिनाथ गौतम के ऐसे वचन सुन महाराज श्रेणिक ने कहा—

नाथ! अधोगति का प्रियपना क्या है? श्रेणिक का भीतरी भाव समझ गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को कालसूकर की कथा सुनायी। उसने पहले अपने पापोदय से सप्तम नरक की आयु बाँध पुनः किस रीति से उसका छेद किया, सो भी कह सुनाया।

इस प्रकार गौतम गणधर के वचनों से अतिशय सन्तुष्ट, अनेक बड़े-बड़े राजाओं से पूजित महाराज ने जिनराज के चरणकमलों से अपना मन लगाया और समस्त कल्याणकों से युक्त हो वे अपने पुत्र-पौत्रों के साथ शत्रुरहित हो गये।

पापों से जो पहिले सप्तम नरक की आयु बाँध ली थी, उस आयु का अपने उत्कृष्ट भावों द्वारा महाराज श्रेणिक ने छेद कर दिया तथा तीर्थंकर नामकर्म की शुभ भावना भाने से भविष्यत् में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध बाँधकर अतिशय शोभा को धारण करने लगे।

देखो भावों की विचित्रता! कहाँ तो सप्तम नरक की उत्कृष्ट स्थिति और कहाँ फिर केवल प्रथम नरक की मध्यम स्थिति!! यह सब धर्म का ही प्रसाद है।

धर्म की कृपा से जीवों को अनेक कल्याण आकर उपस्थित हो जाते हैं और धर्म की कृपा से तीर्थंकरपद की भी प्राप्ति हो जाती है। इसलिए उत्तम पुरुषों को चाहिए कि वे निरन्तर धर्म का आराधन करें।

इस प्रकार भविष्यत् काल में होनेवाले श्री पद्मनाभ तीर्थंकर के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में महाराज श्रेणिक को क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति वर्णन करनेवाला बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

तेरहवाँ-सर्ग

देव द्वारा अतिशय प्राप्ति का वर्णन

गण के स्वामी मुनियों में उत्तम श्री गौतम गणधर को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बड़ी विनय से कुमार अभय ने अपने भवों को पूछा। कुमार को इस प्रकार अपने पूर्वभव श्रवण की अभिलाषा देख गौतम गणधर कहने लगे—

कुमार अभय! यदि तुम्हें अपने पूर्ववृत्तान्त सुनने की अभिलाषा है तो मैं कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो:—

इसी लोक में एक वेणातड़ाग नाम की पुरी है, वेणातड़ाग में कोई रुद्रदत्त नाम का ब्राह्मण निवास करता था। वह रुद्रदत्त बड़ा पाखण्डी था, इसलिए किसी समय तीर्थाटन के लिए निकल पड़ा और घूमता-घूमता उज्जयनी में जा निकला।

उस समय उज्जयनी में कोई अर्हदास नाम का सेठ रहता था। उसकी प्रिय भार्या जिनमती थी। वे दोनों ही दम्पति जैनधर्म के पवित्र सेवक थे। अनेक जगह नगर में फिरता-फिरता रुद्रदत्त, सेठ अर्हदास के घर आया और कुछ भोजन माँगने लगा। वह समय रात्रि का था, इसलिए ब्राह्मण की भोजनार्थ प्रार्थना सुन जिनमती ने कहा—

यह समय रात्रि का है। विप्र! मैं रात्रि को भोजन नहीं दूँगी।

सेठानी जिनमती के ऐसे वचन सुन रुद्रदत्त ने कहा—

बहिन! रात्रि में भोजन देने में और करने में क्या दोष है? जिससे तू मुझे भोजन नहीं देती?

जिनमती ने कहा—प्रिय भव्य! रात्रि में भोजन करने से पतंग,

डांस, मक्खी आदि जीवों का घात होता है, इसलिए महापुरुषों ने रात्रि का भोजन अनेक पाप प्रदान करनेवाला, हिंसामय, घृणित और अनेक दुर्गतियों का देनेवाला कहा है। यह निश्चय समझो कि जो मनुष्य रात्रि में भोजन करते हैं, वे नियम से उल्लू, बाघ, हिरण, सर्प, बिच्छु होते हैं और रात्रि-भोजियों को बिल्ली और मूसों की योनियों में घूमना पड़ता है और सुन—जो मनुष्य रात्रि में भोजन नहीं करते उन्हें अनेक सुख मिलते हैं!

रात में भोजन न करनेवालों को न तो इस भव सम्बन्धी कष्ट भोगना पड़ता है और न परभव सम्बन्धी, इसलिए हे विप्र! मैं तुम्हें रात में भोजन न दूँगी, सवेरा होते ही भोजन दूँगी। जिनमती की ऐसी युक्तियुक्त वाणी सुनकर विप्र ने शीघ्र ही रात्रिभोजन का त्याग किया और सवेरे आनंदपूर्वक भोजन कर, सम्यक्त्व गुण से भूषित किसी जैन मनुष्य के साथ गंगास्नान के लिये चल दिया।

मार्ग में चलते-चलते एक पीपल का वृक्ष, जो कि फलों से व्याप्त था, लम्बी शाखाओं का धारी, भाँति-भाँति के पक्षियों से युक्त और जिसके चौतरफा बड़े-बडे पाषाणों के ढ़ेर थे, दिख पड़ा।

वृक्ष को देखते ही ब्राह्मण का कण्ठ भक्ति से से गद्गद् हो गया। उसे देव जान शीघ्र ही उसने नमस्कार किया, गाढ़ मिथ्यात्व से मोहित हो शीघ्र ही उसकी तीन परिक्रमा दीं और बार-बार उसकी स्तुति करने लगा। विप्र रुद्रदत्त की ऐसी चेष्टा देख और उसे प्रबल मिथ्यामती समझ उसके बोधार्थ वह वणिक कहने लगा—

विप्रवर! कृपया कहो, यह किस नाम का धारक देव है और इसका माहात्म्य क्या है?

विप्र ने जवाब दिया—

विष्णु भगवान के वास के लिये यह बोधिकर्म नाम का देव है। यह इच्छानुसार मनुष्यों का बिगाड़-सुधार कर सकता है।

ब्राह्मण के मुख से वृक्ष की यह प्रशंसा सुन वणिक ने शीघ्र ही उसमें दो लात मारी और उसके पत्ते तोड़कर उन्हें जमीन पर बिछाकर शीघ्र ही उनके ऊपर बैठ गया और विप्र से कहने लगा—

प्रिय विप्र! अपने ईश्वर का प्रताप देखो। अरे! यह वनस्पति मनुष्यों पर क्या बिगाड़-सुधार कर सकती है? वणिक की वैसी चेष्टा देख रुद्रदत्त ने जवाब तो कुछ नहीं दिया, किन्तु अपने मन में यह निश्चय किया कि अच्छा, क्या हर्ज है? कभी मैं भी इसके देवता को देखूँगा। इस वणिक ने नियम से मेरा अपमान किया है। इस प्रकार अपने मन में विचार करता-करता कहने लगा—भाई! देव की परीक्षा में किसी को मध्यस्थ करना चाहिए।

ब्राह्मण रुद्रदत्त के ऐसे वचन सुन वणिक ने उसके अन्तरंग की कालिमा समझ ली तथा वह उसे इस रीति से समझाने लगा—

प्रियमित्र! यह पीपल एकेन्द्रिय जीव है। इसमें न तो मनुष्यों के समान विशेष ज्ञान है, न किसी प्रकार की सामर्थ्य है। यह तो केवल पक्षियों का घर है। तुम निश्चय समझो सिवाय शुभाशुभकर्म के यहाँ किसी में सामर्थ्य नहीं जो मनुष्यों का बिगाड़-सुधार कर सके। प्रिय भ्राता! यह निश्चय है कि जो मनुष्य धर्मात्मा हैं, बड़े-बड़े देव भी उनके दास बन जाते हैं और पापियों के आत्मीयजन भी उनसे विमुख हो जाते हैं।

इस प्रकार अपनी वचनभंगी से और जिनेन्द्र भगवान के आगम की कृपा से उस श्रावक वणिक ने शीघ्र ही ब्राह्मण का मिथ्यात्व

दूर कर दिया और वे दोनों स्नेहपूर्वक बातचीत करते हुए आगे को चल दिये।

आगे चलकर ये दोनों गंगा नदी के किनारे पहुँचे। वणिक तो भूखा था, इसलिए वह खाने को बैठ गया और रुद्रदत्त शीघ्र ही स्नानार्थ गंगा में घुस गया। बहुत देर तक उसने गंगा में स्नान किया और पानी उछालकर पितरों को पानी दिया; पश्चात् जहाँ वह जैन श्रावक भोजन करने बैठा था, वहीं आया। विप्र को आता देख वणिक ने कहा—

विप्रवर! यह झूठा भोजन रखा है, आनन्दपूर्वक इसे खाओ। वणिक की ऐसी बात सुन विप्र ने जवाब दिया—

वणिक सरदार! यह बात कैसे हो सकती है? झूठा भोजन खाना किसी प्रकार योग्य नहीं।

विप्र के ऐसे वचन सुन वणिक ने जवाब दिया—भाई! यह भोजन गंगाजल मिश्रित है। इसमें झूठापन कहाँ से आया? तुम निर्भय हो खाओ। गंगाजल मिश्रित होने से इसमें जरा भी दोष नहीं। यदि कहो कि तीर्थ जल से मिश्रित भी झूठा भोजन योग्य नहीं हो सकता तो तुम्हीं बताओ पाप की शुद्धि गंगाजल से कैसे हो सकती है?

अरे भाई! यदि यह बात ठीक हो कि स्नान से शुद्धि हो जाती है तो मछलियाँ रात-दिन गंगा के जल में पड़ी रहती हैं, धीवर हमेशा नहाते-धोते रहते हैं, उन्हें शुद्ध हो सीधे स्वर्ग चले जाना चाहिए। प्रिय भाई! तुम निश्चय समझो, भीतरी शुद्धि स्नान से नहीं होती किन्तु तप, व्रत, ध्यान, क्षमा और शुभभाव से होती है।

देखो, शराब का घड़ा ऊपर से हजार बार धोने पर भी जैसे

शुद्ध नहीं होता; उसी प्रकार यह देह भी पापमय है, अब्रह्म आदि पापों से व्याप्त है। कदापि इस देह की स्नान से शुद्धि नहीं हो सकती, किन्तु जिस मनुष्यों ने ज्ञानतीर्थ का अवगाहन किया है, ज्ञानतीर्थ में स्नान किया है, वे बिना जल के ही घी के घड़े के समान शुद्ध रहते हैं।

वणिक के वचन सुन ब्राह्मण ने शीघ्र ही तीर्थमूढ़ता का त्याग कर दिया।

वहीं पर एक तपस्वी भी पंचाग्नि तप रहा था। वणिक ब्राह्मण रुद्रदत्त को उसके पास ले गया और जलती हुई अग्नि में अनेक प्राणियों को मरते दिखाया, जिससे विप्र से पाखण्डी तपोमूढ़ता भी छुड़वा दी और यह उपदेश भी दिया कि—

वेद में जो यह बात बतलायी है कि हिंसा वाक्य भय का देनेवाला होता है। पाखण्डी तप महान हिंसा का करनेवाला है, सो कैसे तुम्हारे मन में योग्य जँच सकता है ? प्रिय विप्र! यदि बिना दया के भी धर्म कहा जाएगा तो बिल्ली, मूसे, बाघ, व्याघ्र आदि भी धर्मात्मा कहे जाएँगे। यज्ञ में सफेद छाग का मारना यदि ठीक है तो धनयुक्त मनुष्य का चोरों द्वारा मारना भी किसी प्रकार पापप्रद नहीं हो सकता।

यदि कहो कि नरमेध और अश्वमेध यज्ञ में जो प्राणी मरते हैं, वे सीधे स्वर्ग में चले जाते हैं तो उक्त यज्ञ भक्तों को चाहिए कि वे अपने कुटुम्बीजनों को भी उसमें होम कर दें। प्रिय रुद्रदत्त! वेद हो, चाहें लोक हो किसी पापप्रद प्राणी-घात से कदापि धर्म नहीं हो सकता। प्राणिघात से धर्म मानना बड़ी भारी भूल है।

इस प्रकार अपने उपदेश से वणिक ने रुद्रदत्त की आगम

मूढ़ता भी छुड़वा दी। सांख्यादि दूसरे-दूसरे मतों के सिद्धान्तों का खण्डन करता हुआ उसे जैन तत्त्वों का उपदेश दिया, जिससे उस ब्राह्मण ने समस्त दोषरहित बड़े-बड़े देवों से पूजित सम्यक्त्व में अपने चित्त को जमाया। जिनोक्त तत्त्वों में श्रद्धा की और मिथ्यात्व की कृपा से जो उसके चित्त में मूढ़ता थी, सब दूर हो गयी।

कदाचित् श्रावक व्रतों से युक्त सम्यक्त्व के धारी आपस में परमस्नेही वे दोनों तत्त्वचर्चा करते हुए मार्ग में जा रहे थे कि पूर्व पाप के उदय से उन्हें दिशा भूल हो गयी। वह वन निर्जनवन था, वहाँ कोई मनुष्य रास्ता बतलानेवाला न था।

इसलिए जब उन दोनों का संग छूट गया तो ब्राह्मण रुद्रदत्त ने शीघ्र ही संन्यास लेकर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया और प्रथम स्वर्ग में जाकर देव हो गया। वहाँ पर बहुत काल तक उसने देवियों के साथ उत्तमोत्तम स्वर्गसुख भोगे।

आयु के अन्त में मरकर अब तू अभयकुमार नाम का धारी राजा श्रेणिक का पुत्र उत्पन्न हुआ और अब जैन शास्त्रानुसार तप कर तू नियम से सिद्धपद को प्राप्त होगा। इस प्रकार जब गौतम गणधर अभयकुमार के पूर्वभव का वृत्तान्त कह चुके तो दन्तिकुमार ने भी विनय से कहा—

प्रभो! मैं पूर्वभव में कौन था? कैसा था? कृपा कर कहें। दन्तिकुमार के ऐसे वचन सुन गौतम भगवान ने कहा—

यदि तुम्हें अपने पूर्वभव के सुनने की इच्छा है तो मैं कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो—इसी पृथ्वीतल में एक अनेक प्रकार के वृक्षों से मंडित भयंकर दारुण नाम का वन है। किसी समय उस वन में अतिशय ध्यानी सुधर्म नाम का योगी तप करता था और

अतिशय निर्मल अपनी शुद्धात्मा में लीन था। उस वन का रखवाला दारुणमिल नाम का देव था।

कार्यवश मुनिराज को बिना देखे ही उसने वन में अग्नि जला दी। कल्पांतकाल के समान अग्नि की ज्वाला धधकने लगी। अग्नि ज्वाला से मुनिराज का शरीर भस्म होने लगा। उनके प्राण-पखेरु उड़ भागे और मरकर मुनिराज अच्युत स्वर्ग में जाकर देव हो गये।

जब वनरक्षक देव ने मुनिराज का अस्थिपंजर देखा तो उसे महा दु:ख हुआ। अपनी बार-बार निन्दा करता वह इस प्रकार विचारने लगा—हाय! चारित्र से व पवित्र तप से शोभित, बिना कारण मैंने मुनिराज के शरीर को जला दिया। हाय! मुझसे अधिक संसार में पापी कोई न होगा। इस प्रकार विचार करते-करते उसकी आयु भी समाप्त हो गयी और वह मरकर उसी जगह शुभ, विशाल शरीर का धारक उन्नत दाँतों से शोभित एवं अंजन पर्वत के समान ऊँचा हाथी हो गया।

कदाचित् अष्टाह्निका पर्व में अच्युत स्वर्ग का निवासी वह मुनि का जीव नन्दीश्वर पर्वत की वन्दनार्थ निकला और उसी वन में उसे वह हाथी दिख पड़ा। अपने अवधिज्ञान के बल से देव ने अपनी पूर्व मुनिमुद्रा जान ली और पुष्कर विमान से उतर कर उस वन में उसी प्रकार ध्यान में लीन हो गया।

हाथी ने जब उसे देखा तो उसे शीघ्र ही जातिस्मरण हो गया। जातिस्मरण होते ही उसकी आँखों से अश्रुपात होने लगा। अपने पूर्वभव की बार-बार निन्दा करते हुए शीघ्र ही उस देव को नमस्कार किया।

देव के उपदेश से हाथी ने सम्यग्दर्शन के साथ शीघ्र ही श्रावक व्रत पालन करने लगा। अपनी आयु के अन्त में संन्यास धारण कर हाथी ने समाधिपूर्वक अपना चोला छोड़ा और अनेक देवों से सेवित सहस्रार स्वर्ग में जाकर देव हो गया। जैसे क्षण भर में आकाश में मेघसमूह प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार उत्पाद शैया पर उत्पन्न होते ही अन्तर्मुहूर्त में उसे पूर्ण शरीर की प्राप्ति हो गयी, उसके कान में कुण्डल और केयूर झलकने लगे।

वक्षस्थल में मनोहर विशाल हार और सिर पर मनोहर रत्नजड़ित मुकुट झिलमिलाने लगा। चारों ओर दिशा सुगन्धि से व्याप्त हो गयी, निर्मल ऋद्धियों की प्राप्ति हो गयी, शरीर दिव्य वस्त्र और आभूषणों से शोभित हो गया तथा नेत्र विशाल और निर्निमेष हो गये। जिस समय देव ने अपनी ऐसी सुन्दर दशा देखी तो वह विचारने लगा—

मैं कौन हूँ? यहाँ कहाँ से आया हूँ? मेरा क्या स्थान और क्या गति है? मनोहर शब्द करनेवाली ये देवांगनाएँ क्यों इस प्रकार मुझे चाहती हुई नृत्यु कर रही हैं? इस प्रकार विचार करते-करते अपने अवधिज्ञान बल से शीघ्र ही उसने 'मैं व्रतों की कृपा से हाथी की योनि से यहाँ आया हूँ' इत्यादि वृत्तान्त जान लिया तथा वृत्तान्त जानकर और अपने को स्वर्गस्थ देव समझकर जिनेन्द्र आदि को पूजते हुए उसने धर्म में मति की।

दिव्यांगनाओं के साथ वह आनन्द सुख भोगने लगा, नन्दीश्वर पर्वत पर जिनमन्दिरों को पूजने लगा। इस रीति से वचनगोचर स्वर्ग सुख-भोगकर और वहाँ से च्युत होकर अब तू रानी चेलना के गर्भ में आकर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार गौतम गणधर द्वारा

अभयकुमार व दन्तिकुमार का पूर्वभववृत्तान्त सुन श्रेणिक आदि प्रधान-प्रधान पुरुषों को अतिशय आनन्द हुआ।

सभी ने शीघ्र ही मुनिनाथ को नमस्कार किया। दृढ़ सम्यक्त्व कथा से पूर्ण जिनशासन को स्मरण करते हुए भगवान के गुणों में दत्तचित्त वे सब प्रीतिपूर्व नगर में आ गये, और बड़े-बड़े महाराजाओं वश में कर महाराज श्रेणिक ने महामंडलेश्वर पद प्राप्त कर लिया। किसी समय महाराज इन्द्र अपनी सभा में अनेक देवों के साथ बैठे थे। अपने वचनों से सम्यक्त्व की महिमा गान करते हुए वे कहने लगे—

भरतक्षेत्र में महाराज श्रेणिक सम्यग्दर्शन से अतिशय शोभित हैं। वर्तमान में उनके समान क्षायिक सम्यक्त्व का धारक दूसरा कोई नहीं। जिसके सम्यग्दर्शनरूपी विशाल वृक्ष को मिथ्यादर्शनरूपी गज तोड़ नहीं सकता और वह वृक्ष महाशास्त्ररूपी दृढ़मूल का धारक और स्थिर है। कुसंगम कुठार उसे छेद नहीं सकता। कुशास्त्ररूपी प्रबल पवन भी उसे नहीं चला सकती। उसका सम्यक्त्वरूपी वृक्ष शास्त्ररूपी जल से सिंचित है और उस सम्यग्दर्शन का दृढ़भावरूपी महामूल छिन्न नहीं किया जा सकता।

महाराज इन्द्र द्वारा श्रेणिक के सम्यग्दृष्टिपने की इस प्रकार प्रशंसा सुन सभा में स्थित समस्त देव आश्चर्य करने लगे एवं अतिशय प्रीतियुक्त किन्तु मन में अति आश्चर्ययुक्त दो देव शीघ्र ही महाराज श्रेणिक की परीक्षार्थ पृथ्वीमण्डल पर उतरे और कहाँ तो महाराज श्रेणिक मनुष्य? और कहाँ फिर उसकी इन्द्र द्वारा तारीफ? यह भले प्रकार विचार कर जो महाराज श्रेणिक के आने का मार्ग था, उस मार्ग पर स्थित हो गये।

उनमें एक देव ने पीछी-कमंडलु हाथ में लेकर मुनिरूप धारण किया और दूसरे ने आर्यिका का। वह आर्यिका गर्भवती बन गयी और मुनि वेषधारी वह देव मछलियों को किसी तालाब से निकाल अपने कमंडलु में रखता हुआ उस गर्भवती आर्यिका के साथ रहने लगा। महाराज श्रेणिक वहाँ आये। उन्हें देख जल्दी घोड़े से उतर और उन्हें वार्तारम्भ के लिए योग्य अभिवादन कर कहने लगे—

समस्त मनुष्यों को हास्यास्पद यह दुष्कर्म आप क्या कर रहे हैं? इस वेष में यह दुष्कर्म आपको सर्वथा वर्जनीय है।

श्रेणिक के ऐसे वचन सुन मायावी उस देव ने जवाब दिया—

राजन्! गर्भवती इस आर्यिका को मछली के माँस खाने की अभिलाषा हुई है, इसलिए इसके लिये मैं मछलियाँ पकड़ रहा हूँ। इस कर्म से मुझे कोई दोष नहीं लग सकता।

देव की यह बात सुन श्रेणिक ने कहा—मुनिवेष धारण कर यह कर्म आपके लिये सर्वथा अयोग्य है। इसमें मुनिलिंग की बड़ी भारी निन्दा है। आपको चाहिए कि इस काम को आप सर्वथा छोड़ दें।

देव ने कहा—राजन्! तुम्हीं कहो, इस समय हमें क्या करना चाहिए? मेरा अनायास ही इस निर्जन वन में इस आर्यिका के साथ सम्बन्ध हो गया, इसलिए इसे गर्भोत्पत्ति और माँसाभिलाषा हो गयी। मैं इसे अब चाहता हूँ, इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मैं इसकी इच्छाएँ पूर्ण करूँ।

छली मुनि की यह बात सुनकर राजा ने कहा—तथापि मुने! इस वेष में तुम्हारा यह कर्तव्य सर्वथा अयोग्य है। आपको कदापि यह काम नहीं करना चाहिए।

राजा के ऐसे वचन सुन देव ने कहा—राजन्! आप क्या विचार कर रहे हैं? जितने मुनि और आर्यिकाओं को आप देख रहे हैं, वे सब मेरे ही समान शुभ कार्य से विमुख हैं। निर्दोष कोई नहीं। महाराज! जिसकी अंगुली दबती है, उसे ही वेदना होती है, अन्य मनुष्य वेदना का अनुभव नहीं कर सकते, वे तो हँसते हैं; उसी प्रकार आप हमें देखकर हँसते हैं।

देव की यह बात सुन श्रेणिक को कुछ क्रोध सा आ गया। वे कहने लगे—मुने! तू मुनि नहीं है, बड़ा निकृष्ट दयारहित चारित्रविमुख और मूर्ख है। तेरे सम्यग्दर्शन भी नहीं मालूम होता।

श्रेणिक के ऐसे वचन सुन देव ने जवाब दिया—राजन्! जो मैंने कहा है, सो बिल्कुल ठीक कहा है। क्या तेरा यह कर्तव्य है कि तू परम योगियों को गाली प्रदान करे? हमने समझ लिया कि तुझमें जैनीपना नाममात्र का है। यतियों को मर्मविदारक गाली देने से जैनीपने का तुझमें कोई गुण नहीं दिख पड़ता।

देव के ऐसे वचन सुन महाराज ने कहा—मुने! संवेगादि गुणों के अभाव से तो तेरे सम्यग्दर्शन नहीं है और दया बिना चारित्र नहीं है। ऐसे दुष्कर्म करने से तू बुद्धिमान भी नहीं, नीतिमान योगी और शास्त्रवेत्ता भी नहीं। साधो! यदि तू ऐसा करेगा तो जैनधर्म की प्रभावना का नाश हो जाएगा। इसलिए तेरा यह कर्तव्य सर्वथा अनुचित है। यदि तू नहीं मानता तो तुझे नियम से इस दुष्कर्म का फल भोगना पड़ेगा।

मुने! जो तुमने मुझसे दुष्ट वचन कहे हैं, उनसे तुम कदापि मुनि नहीं हो सकते, इसलिए तुम शीघ्र ही दुष्कर्म का त्याग करो, जिससे तुम्हें मुक्ति मिले। अभी तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारी

सब आशा पूरी करूँगा और यदि तुम मेरे साथ न चलोगे तो तुम्हें गधे पर चढ़ाकर तुम्हारा हाल-बेहाल करूँगा। इस प्रकार साम्य आदि वचनों से मुनि को समाश्वासन दे राजा श्रेणिक उन दोनों को घर ले आये और अपने मन्दिर में लाकर ठहराया। जिस समय मन्त्रियों ने राजा श्रेणिक को चारित्रभ्रष्ट मुनि और आर्यिका के साथ देखा तो वे कहने लगे—

राजन्! आप क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं, आपके संग इस चारित्रभ्रष्ट मुनि-आर्यिका युगल का साथ कदापि योग्य नहीं हो सकता। आपको इनका सम्बन्ध छोड़ देना योग्य है। चारित्रभ्रष्ट मुनि-आर्यिका के नमस्कार करने से आपके दर्शन में अतिचार आता है। मन्त्रियों के ऐसे वचन सुन महाराज श्रेणिक ने जवाब दिया—

मन्त्रीवर! मैंने इस वेषधारी को वास्तविक मुनि मानकर वन्दन नहीं किया है, मात्र वार्तारम्भ करने हेतु किया जानेवाला शिष्टाचार किया है, इसलिए सम्यक्त्व में मलिनता का प्रश्न ही नहीं। तथा मेरी भावना इनका स्थितिकरण करके पुन: धर्म में स्थापित करने की है, इसी उद्देश्य से इन्हें यहाँ लेकर आया हूँ।

महाराज श्रेणिक का ऐसा पाण्डित्य देख और इन्द्र द्वारा की हुई प्रशंसा को वास्तविक प्रशंसा जान वे दोनों देव अति आनन्दित हुए।

अपना रूप बदल उन्होंने शीघ्र ही आनन्दपूर्वक रानी चेलना और महाराज श्रेणिक के चरणों में नमस्कार किया। उन्हें सुवर्ण सिंहासन पर बैठाकर दोनों देवों ने भक्तिपूर्वक गंगा सीता आदि नदियों के निर्मल जल से राजा-रानी को स्नान कराया, वस्त्राभूषण फूलों से प्रशंसापूर्वक उनकी पूजा की। अनेक अनान्य गुण और

सम्यग्दर्शन से शोभित उन दोनों दम्पति को नमस्कार कर आकाश में पुष्पवर्षा के साथ वाद्यनादों को कर अतिशय हर्षित और राजा-रानी के गुणों में दत्तचित्त वे दोनों देव कीर्ति भाजन बने। सो ठीक ही है, सम्यग्दर्शन की कृपा से सम्यग्दृष्टियों की बड़े-बड़े देव परम सन्तोष देनेवाली पूजन करते हैं और संसार में सम्यग्दर्शन की कृपा से इन्द्रों द्वारा प्रशंसा भी मिलती है।

इस प्रकार पद्मनाभ तीर्थंकर के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में देव द्वारा अतिशय प्राप्ति वर्णन करनेवाला तेरहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

चौदहवाँ-सर्ग

श्रेणिक, चेलना आदि की गति का वर्णन

कदाचित् महाराज सानन्द सभा में विराजमान थे कि समस्त भयों से रहित संसार की वास्तविक स्थिति जाननेवाले कुमार अभय सभा में आये। उन्होंने भक्तिपूर्वक महाराज को नमस्कार किया और सर्वज्ञभाषित अनेक भेद-प्रभेदयुक्त वे समस्त सभ्यों के सामने वास्तविक तत्त्वों का उपदेश करने लगे। तत्त्वों का व्याख्यान करते-करते जब सब लोगों की दृष्टि तत्त्वों की ओर झुक गयी तो वे अवसर पाकर अपनी पूर्व भवावली के स्मरण से चित्त में अतिशय खिन्न हो अपने पिता से कहने लगे—

पूज्य पिता! इस संसार से अनेक पुरुष चले गये, युग के आदि में ऋषभ आदि तीर्थंकर, भरत आदि चक्रवर्ती भी कूच कर गये। कृपानाथ! यह संसार एक प्रकार का विशाल समुद्र है, क्योंकि समुद्र में जैसे मछलियाँ रहती हैं, संसाररूपी समुद्र में भी जन्मरूपी मछलियाँ हैं। समुद्र में जैसे भंवर पड़ते हैं, संसाररूपी समुद्र में भी दु:खरूपी भंवर पड़ते हैं। समुद्र में जैसी कल्लोलें होती हैं, संसार-समुद्र में भी जरारूपी तीव्र कल्लोलें मौजूद हैं। समुद्र में जिस प्रकार कीचड़ होती है, संसाररूपी समुद्र में भी पापरूपी कीचड़ है। जैसा समुद्र तटों में भयंकर होता है, उसी प्रकार संसाररूपी समुद्र भी मृत्युरूपी तट से भयंकर है।

समुद्र में जैसे वड़वानल होता है, संसार समुद्र में चतुर्गतिरूप वड़वानल है, समुद्र में जैसे कछुवे होते हैं, संसार समुद्र में वेदनारूपी कछुवे मौजूद हैं। समुद्र में जैसे बालू के ढ़ेर होते हैं, वैसे संसार समुद्र में भी दरिद्रतारूपी बालू के ढ़ेर मौजूद हैं एवं समुद्र जैसा अनेक

नदियों के प्रवाहों से पूर्ण रहता है, संसार भी उसी प्रकार अनेक प्रकार के आस्रवों से पूर्ण है।

महनीय पिता! बिना धर्मरूपी जहाज के इस संसार से पार करनेवाला कोई नहीं। यह देह सप्त धातुमय है, नाक, आँख आदि नौ द्वारों से सदा मल निकलता रहता है। यह पापकर्ममय, पाप का उत्पादक और कल्याण का निवारक है। ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो इन्द्रियों के समूह से दैदीप्यमान, मन के व्यापार से परिपूर्ण, विष्टा आदि मलों से मण्डित इस शरीर से प्रीति करेगा?

पूज्य पिता! ज्यों-ज्यों इन भोगों का भोग और सेवन किया जाता है, त्यों-त्यों ये तृप्ति को नहीं करते, किन्तु घी की आहुति से जैसे अग्नि प्रवृद्ध होती चली जाती है, वैसे ही प्रवृद्ध होते जाते हैं। काष्ठ से जैसे अग्नि को तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार जिन मनुष्यों की तृप्ति स्वर्गभोग भोगने से भी नहीं हुई है, उन मनुष्यों को तृप्ति थोड़े से स्त्रियों के सम्पर्क से कैसे हो सकती है?

संसार को इस प्रकार क्षणभंगुर समझ पूज्यपिता! मुझ पर प्रसन्न हूजिये और मनुष्यों को अनेक कल्याण देनेवाली तपस्या के लिये आज्ञा दीजिए।

पूज्यपाद! आपकी कृपा से आज तक मैं राज्य सम्बन्धी सुख और स्त्रीजन्य सुख खूब भोग चुका। अब मैं इससे विमुख होना चाहता हूँ।

पुत्र के ऐसे वचन सुन राजा श्रेणिक ने अपने कान बन्द कर लिये। उनके चित्त पर भारी आघात पहुँचा। अत: मूर्छित हो वे शीघ्र ही जमीन पर गिर गये और उनकी चेतना थोड़ी देर के लिये एक ओर किनारा कर गयी। महाराज श्रेणिक की ऐसी विचेष्टा देख,

उन्हें शीघ्र सचेतन किया गया। जब वे बिल्कुल होश में आये तो कहने लगे—

प्रिय पुत्र! तूने यह क्या कहा? तेरा यह कथन मुझे अनेक भय प्रदान करनेवाला है। तेरे बिना नियम से यह समस्त राज्य शून्य हो जाएगा। मैं राज्य करूँ और तू तप करे, यह सर्वथा अयोग्य है। जिनभगवान के समीप जाकर तुझे चौथेपन में तप धारण करना चाहिए, इस समय तेरी उम्र एकदम छोटी है।

कहाँ तो तेरा रूप? कहाँ तेरा सौभाग्य? राज्ययोग्य तेरी क्रीड़ा कहाँ? कहाँ तेरा लावण्य तथा कहाँ तेरी युक्तियुक्त वाणी और कोमल देह? तेरी बुद्धि इस समय असाधारण है। बलवानपना, वीरता, वीर मान्यता जैसी तुझमें है, वैसी किसी में नहीं।

प्रिय पुत्र! अनेक राजा और सामन्तों से सेवनीय पुण्यवानों द्वारा प्राप्त करने योग्य यह राज्यभार तुम ग्रहण करो और तप की हठ छोड़ो।

पिता के ऐसे वचन सुन अभयकुमार ने कहा—पूज्य पिता! संसार में जितने भी उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं, वे तप की कृपा से मिलते हैं, ऐसा बड़े-बड़े पुरुषों का कथन है। आपने जो यह कहा कि तप चौथेपन में धारण करना चाहिए, सो चौथेपन में शरीर तप के योग्य रहता ही कहाँ है? उस समय तो शरीर मन्द पड़ जाता है। इन्द्रियाँ भी शिथिल पड़ जाती हैं! इसलिए स्वस्थ अवस्था में ही तप महापुरुषों द्वारा माना गया है। महनीय पिता! रूप, लावण्य आदि क्षणिक हैं-निस्सार हैं। गृहादिक में संलग्न जो बुद्धि है, सो मिथ्याबुद्धि है और असार है।

कृपानाथ! यह राज्य भी विनाशीक है, मैं कदापि इस राज्य को

स्वीकार न करूँगा, किन्तु समस्त पापों से रहित मैं निश्चल तप धारण करूँगा। मैंने अनेक बार इस राज्य का भोग किया है। मेरे सामने यह राज्य अपूर्व नहीं हो सकता। अक्षय सुख मोक्षसुख ही मेरे लिये अपूर्व है।

पूज्यवर! मैंने आपकी आज्ञा का भी अच्छी तरह पालन किया है। अब में भविष्यत् काल में आपकी आज्ञा पालन न कर सकूँगा, इसलिए आप कृपाकर मुझे तप के लिये आज्ञा प्रदान करें।

पुत्र के तप के लिये उद्यमी देख महाराज श्रेणिक के मुख से अविरल अश्रुधारा बहने लगी, तथापि अभयकुमार उन्हें अच्छी तरह समझाकर अपनी माता को भी सम्बोधकर और अतिशय मगोहरांगी अपनी प्रिय स्त्रियों को भी समझाकर शीघ्र ही घर से निकले और राजा आदि के रोके जाने पर भी राजकुमार आदि के साथ हाथी पर सवार हो विपुलाचल की ओर चल दिये।

उस समय विपुलाचल पर महावीर भगवान का समवसरण विराजमान था, इसलिए ज्यों ही अभयकुमार विपुलाचल के पास पहुँचे, उन्होंने राजचिह्न छोड़ दिये, गज से उतर शीघ्र ही समवसरण में प्रवेश किया। समवसरण में विराजमान महावीर भगवान को देख तीन प्रदक्षिणा दीं, पूजन, नमस्कार और स्तुति की।

गौतम गणधर को भी प्रणाम किया और दीक्षार्थ प्रार्थना की। वस्त्राभूषण का त्याग कर बहुत से कुटुम्बियों के साथ शीघ्र ही परम तप धारण किया। तेरह प्रकार के चारित्र पालने लगे एवं ध्यानैकतान मुक्ति के अभिलाषी वे परमपद की आराधना करने लगे।

जो अभयकुमार आदि महापुरुष अनेक कोमल-कोमल वस्त्रों से शोभित हंसों के समान स्वच्छ रुई से बने मनोहर पलंगों पर सोते

थे, वे ही अब कंकरीली जमीन पर सोने लगे। जो शीतकाल में मनोहर-मनोहर महलों में काम-विह्वला रमणियों के साथ आनन्द शयन करनेवाले थे, वे चौतरफा अतिशय शीतल पवन से व्याप्त नदी के तीरों पर सोते हैं।

ग्रीष्म काल में जो शरीर पर हरिचन्दन का लेप कराकर फुव्वारा सहित महलों के रहनेवाले थे, वे ही अब अतिशय तीक्ष्ण सूर्य के आताप को झेलते हुए पर्वतों की शिखरों पर निवास करते हैं।

जो उत्तम पुरुष वर्षाकाल में, जहाँ किसी प्रकार के जल का संचार नहीं, ऐसे उत्तमोत्तम घरों में रहते थे, उन्हें अब जल से व्याप्त वृक्षों के नीचे रहना पड़ता है। पतले किन्तु उत्तम चीनी वस्त्रों से सदा जिनके शरीर ढ़ंके रहते थे, वे ही अब चोहट्टों में वस्त्ररहित हो सानन्द रहते हैं।

जो चित्र-विचित्र रत्नों से जड़ित सुवर्णपात्रों में भोजन करते थे, उन्हें अब सछिद्र पाणिपात्रों में भोजन करना पड़ता है। जो भाँति-भाँति के पके अन्न और खीर आदि पदार्थों का भोजन करते थे, उन्हें अब पारणा में तेलयुक्त कोदों, कंगु आदि पदार्थ खाने पड़ते हैं। जो हाथी-घोड़े आदि सवारियों पर सवार हो, जहाँ-तहाँ घूमते थे, वे ही अब कंटकाकीर्ण जमीन पर चलते हैं। जो सात-सात ड्योढ़ीयुक्त मणिजड़ित महलों में सोते थे, वे ही अब अनेक सर्पों से व्याप्त पहाड़ी की गुफा में सोते हैं। राज्यावस्था में जिनकी प्रशंसा पराक्रमी और मेहमानी बड़े-बड़े राजा करते थे, उनकी प्रशंसा अब चारित्र से पवित्र निरभिमानी बड़े-बड़े मुनिराज करते हैं।

राज्य अवस्था में जो रतिजन्य सुख का आस्वादन करते थे, वे ही अब विषयातीत नित्य ध्यानजन्य सुख का आस्वाद करते हैं।

जो राजमन्दिर में कामिनियों के मुख से उत्तमोत्तम गायन सुनते थे, उन्हें अब श्मशानभूमि में मृग और श्रृंगालों के भयंकर शब्द सुनने पड़ते हैं।

राजघर में जो पुत्र–नातियों के साथ खेल खेलते थे, अब वे निर्भय किन्तु विश्वस्त मृगों के साथ खेल खेलते हैं।

इस प्रकार चिरकाल तक घोर तप, तपकर परीषह जीतकर और घातियाकर्मों का विध्वंसकर शुक्लध्यान के प्रभाव से मुनिवर अभयकुमार ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया, एवं केवलज्ञान की कृपा से संसार के समस्त पदार्थ जानकर भूमण्डल पर बहुत काल तक विहार कर अचिन्त्य अव्याबाध मोक्षसुख पाया। इनसे अन्य और जितने योगी थे, वे भी अपने–अपने परिणामों के अनुसार स्वर्ग आदि उत्तमोत्तम गतियों में गये।

❀ ❀ ❀

तीन लोक में यशस्वी अतिशय सन्तुष्ट जैनधर्म के आराधक नीतिपूर्वक प्रजा के पालक महाराज आनन्दपूर्वक राजगृही में रहने लगे। उनका पुत्र वारिषेण अतिशय बुद्धिमान, मनोहर, जैनधर्म में रति करनेवाला एवं व्रतरूपी भूषण से भूषित था। कदाचित् राजकुमार वारिषेण ने चतुर्दशी का उपवास किया।

इधर यह तो रात्रि में किसी वन में जाकर कायोत्सर्ग धारण कर ध्यान करने लगा और उधर किसी वेश्या ने सेठ श्रीकीर्ति की सेठानी के गले में पड़ा अतिशय देदीप्यमान सुन्दर हार देखा और हार देखते ही वह विचारने लगी—

इस दिव्य हार के बिना संसार में मेरा जीवन विफल है तथा ऐसे विचार से शीघ्र ही उदास हो शयनागार में खाट पर गिर पड़ी।

एक विद्युत नाम का चोर जो उसका आशिक था, रात्रि में वेश्या के पास आया। उसने कई बार वेश्या से वचनालाप करना चाहा परन्तु वेश्या ने जवाब तक न दिया किन्तु जब वह चोर विशेष अनुनय करने लगा तो वह कहने लगी—

प्रिय बल्लभ! मैंने सेठ श्रीकीर्ति की सेठानी के गले में हार देखा है। मैं उसे चाहती हूँ, यदि मुझे हार न मिला तो मेरा जीवन निष्फल है और तुम्हारे साथ दोस्ती भी किसी काम की नहीं। वेश्या की ऐसी रूखी बात सुन चोर शीघ्र ही चला तथा सेठ श्रीकीर्ति के घर जाकर और हार चुराकर अपनी चतुराई से बाहर निकल आया।

हार बड़ा चमकदार था, इसलिए ज्यों ही चोर सड़क पर आया और ज्यों ही कोतवाल ने हार का प्रकाश देखा तो ले जानेवाले को चोर समझ शीघ्र ही उसके पीछे धावा किया। चोर को और कोई रास्ता न सूझा, वह शीघ्र ही भागता-भागता श्मशानभूमि में घुस गया।

जब वह श्मशानभूमि में घुसा तो उसे आगे को वहाँ कोई रास्ता न दिखा, इसलिए उसने शीघ्र ही कुमार वारिषेण के गले में हार डाल दिया और आप एक ओर छिप गया। हार की चमक से कोतवाल भागता-भागता कुमार के पास आया। कुमार को हार पहिने देख शीघ्र ही दौड़ता-दौड़ता राजा के पास पहुँचा और कहने लगा—

राजन्! यदि आपका पुत्र ही चोरी करता है तो चोरी करने से दूसरों को कैसे रोका जा सकता है? राजकुमार का चोरी करना उसी प्रकार है, जैसे वाड़ द्वारा खेत का खाना। कोतवाल की बात सुन इधर महाराज ने तो श्मशानभूमि की ओर गमन किया और उधर कुमार वारिषेण के व्रत के प्रभाव से हार फूल की माला बन गया।

ज्यों ही महाराज ने यह दैवी अतिशय सुना तो वे कोतवाल की निन्दा करने लगे और कुमार के पास क्षमा कराना चाहा। विद्युतचोर भी यह सब दृश्य देख रहा था, उससे ये बातें न देखी गयीं। वह शीघ्र ही महाराज के सन्मुख आया तथा महाराज से अभयदान की प्रार्थना कर और अपना स्वरूप प्रकट कर जो कुछ सच्चा हाल था, सारा कह सुनाया। जब महाराज ने चोर के मुख से सब समाचार सुन लिये तो उन्होंने कुमार वारिषेण से घर चलने के लिये कहा किन्तु कुमार ने कहा—

पूज्यपिता! मैं पाणिपात्र में भोजन करूँगा–दिगम्बर व्रत धारण करूँगा। यह व्रत मैंने ले लिया है, अब मैं घर जा नहीं सकता। महाराज आदि ने कुमार को दीक्षा से बहुत रोका किन्तु उन्होंने एक न मानी।

वे सीधे सूर्यदेव मुनिराज के पास चले गये और केशलुंचन कर दीक्षा धारण कर ली, एवं अष्ट अंग सहित सम्यग्दर्शन के धारक बड़े-बड़े देवों द्वारा पूजित वारिषेण मुनि तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करने लगे।

वारिषेण मुनिराज के व्रत रहित पुष्पडाल आदि अनेक शिष्य थे, उन्हें उपदेश, शुभाचार और चातुर्य से सन्मार्ग में प्रतिष्ठित किया, बहुत कालपर्यन्त भूमण्डल पर विहार किया, अनेक जीवों को सम्बोधा, आयु के अन्त में रत्नत्रययुक्त हो संन्यास धारण किया। भले प्रकार आराधना आराधों एवं समाधिपूर्वक अपने प्राण त्यागकर मुनि वारिषेण का जीव अनेक देवियों से व्याप्त महान ऋद्धि का धारक देव हो गया।

किसी समय धर्मसेवनार्थ, चिन्ता विनाशार्थ और सुखपूर्वक

स्थिति के लिये पूर्वजन्म के मोह से महाराज ने समस्त भूपों को इकट्ठा किया और उनकी सम्मतिपूर्वक बड़े समारोह के साथ अपना विशाल राज्य युवराज कुणिक को दे दिया।

अब, पूर्व पुण्य के उदय से युवराज कुणिक महाराज कहे जाने लगे। वे नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे और समस्त पृथ्वी उन्होंने चौरादि भय से विवर्जित कर दी।

कदाचित् महाराज कुणिक सानन्द राज्य कर रहे थे कि अकस्मात् उन्हें पूर्वभव के वैर का स्मरण हो आया। महाराज श्रेणिक को अपना वैरी समझ पापी हिंसक महा अभिमानी दुष्ट कुणिक ने मुनि कण्ठ में निक्षिप्त सर्पजन्य पाप के उदय से शीघ्र ही उन्हें काठ के पिंजरे में बन्द कर दिया।

महाराज श्रेणिक के साथ कुणिक का ऐसा बर्ताव देख रानी चेलना ने उसे बहुत रोका, किन्तु उस दुष्ट ने एक न मानी, उल्टा वह मूर्ख गाली और मर्मभेदी दुर्वाक्य कहने लगा। खाने के लिये महाराज को वह रूखा-सूखा कोदों का अन्न देने लगा और प्रतिदिन भोजन देते समय अनेक कुवचन भी कहने लगा।

महाराज श्रेणिक चुपचाप कीलोंयुक्त पींजरे में पड़े रहते और कर्म के वास्तविक स्वरूप को जानते हुए पाप के फल पर विचार करते रहते थे।

किसी समय दुष्टात्मा पापी राजा कुणिक अपने लोकपाल नामक पुत्र के साथ सानन्द भोजन कर रहा था। बालक ने राजा के भोजनपात्र में पेशाब कर दिया। राजा ने बालक के पेशाब की ओर कुछ भी ध्यान न दिया, वह पुत्र के मोह से सानन्द भोजन करने लगा। उसी समय उसने अपनी माता से कहा—

माता! मेरे समान पुत्र का मोही इस पृथ्वीतल में कोई नहीं, यदि है तो तू कह!

माता ने जवाब दिया—राजन्! तेरा पुत्र में क्या अधिक मोह है? सबका मोह तीनों लोक में बालकों पर ऐसा ही होता है। देख! यद्यपि तेरे पिता के अभयकुमार आदि अनेक उत्तमोत्तम पुत्र थे तो भी बाल्य अवस्था में पिता का प्यारा और मान्य जैसा तू था, वैसा कोई नहीं था। प्यारे पुत्र! तेरे पिता का तुझसे इतना अधिक स्नेह था, सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ—

एक समय तेरी अंगुली में बड़ा भारी घाव हो गया था एवं उसमें पीव बढ़ गया था, बहुत दुर्गन्ध आती थी, जिससे तुझे बहुत पीड़ा थी। घाव के अच्छे करने के लिये बहुत सी दवाइयाँ की गयी तो भी तेरी वेदना शांत न हुई। उस समय तेरे प्रति विशेष अनुराग से तेरे पिता ने अपने मुख में तेरी अंगुली लेकर सारा पीव चूसकर तेरी सब पीड़ा दूर कर दी। माता चेलना की यह बात सुन दुष्ट कुणिक ने जवाब दिया—

माता! यदि पिता का मुझमें मोह अधिक था तो जिस समय मैं पैदा हुआ था, उस समय पिता ने मुझे निर्जन वन में क्यों फिंकवा दिया था? माता ने जवाब दिया—

प्रिय पुत्र! तू निश्चय समझ, तेरे पिता ने तुझे वन में नहीं फिंकवाया था, किन्तु तेरी भृकुटी भयंकर देख मैंने फिंकवाया था, तेरा पिता तो तुझे वन से ले आया और राजा बनाने के लिये सानंद तेरा पालन-पोषण किया था।

यदि तेरा पिता ऐसा काम न करता तो तुझे राज्य क्यों देता? पुत्र! तेरे पिता का तुझमें बड़ा स्नेह, बड़ा मोह और बड़ी भारी प्रीति थी।

तुझसे वे अनेक आशा भी रखते थे, इसमें जरा भी झूठ नहीं।

जैसी वेदना इस समय तू अपने पिता को दे रहा है 'याद रख' तेरा पुत्र भी तुझे वैसी ही वेदना देगा। खेत में जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल काटा जाता है, उसी प्रकार जैसा काम किया जाता है, फल भी उसी के अनुसार भोगना पड़ता है।

राजन्! जिसने तुझे राज्य दिया, जन्म दिया और विशेषतया पढ़ा-लिखाकर तैयार किया, क्या उस पूज्यपाद के साथ तेरा यह क्रूर बर्ताव प्रशंसनीय हो सकता है? अरे! जो मनुष्य उत्तम हैं, वे अपने पिता को पुण्य समझ भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। पिता से भी अधिक राज्य देनेवाले को और उससे भी अधिक विद्या प्रदान करनेवाले को पूजते हैं। तू यह निकृष्ट काम क्या कर रहा है?

जो उपकारी का आदर करनेवाले हैं, सज्जन लोग जब उसका भी उपकार करते हैं, तो उपकार करनेवाले का तो वे अवश्य ही उपकार करते हैं। जो मनुष्य, पर उपकार को नहीं मानते हैं, वे नराधम कहलाते हैं और वे नियम से नरक जाते हैं।

राजन्! जो किये उपकार का लोप करनेवाले हैं, वे संसार में कृतघ्न कहलाते हैं, किन्तु जो कृत उपकार को माननेवाले हैं, वे कृतज्ञ कहे जाते हैं और सब लोग उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं।

प्यारे पुत्र! पिता आदि का बन्धन पुत्र के लिये सर्वथा अनुचित है, महापाप का करनेवाला है, इसलिए तू अभी जा और अपने पिता को बन्धनरहित कर।—माता द्वारा इस प्रकार सम्बोधन पा राजा कुणिक मन में अति खिन्न हुए। अपने दुष्कर्म की बार-बार निन्दा कर वे ऐसा विचारने लगे—

हाय! मुझ पापात्मा ने बड़ा निन्द्य काम कर दिया। हाय! अब मैं इस महापाप से कैसे छुटकारा पाऊँगा? अनेक हित करनेवाले पूज्य पिता को मैं अभी जाकर छुड़ाता हूँ। इस प्रकार क्षण एक अपने मन में विचार कर राजा कुणिक महाराज को बन्धनमुक्त करने चल दिये। ज्यों ही राजा कुणिक कठेरे के पास पहुँचे और ज्यों ही क्रूर-मुख राजा कुणिक को महाराज ने देखा कि देखते ही उनके मन में यह विचार उठ खड़ा—

यह दुष्ट भी पीड़ा देकर गया है, अब यह क्या करना चाहता है, जिससे मेरी ओर आ रहा है? पहले मुझे बहुत सन्ताप दे चुका है, अब भी यह मुझे अधिक सन्ताप देगा। हाय! इस निर्दयी द्वारा दिया हुआ दु:ख अब मैं सहन नहीं कर सकता।

बस इस प्रकार अपने मन में अतिशय दु:खी हो शीघ्र ही तलवार की धार पर सिर मारा। तत्काल उनके प्राण पखेरु उड़ गये और प्रथम नरक में पहुँच गये। पिता को असिधारा पर प्राणरहित देख राजा कुणिक के होश उड़ गये। उस समय उन्हें और कुछ न सूझा। वे चेलना और अन्त:पुर के साथ बेहोश हो करुणाजनक इस प्रकार रुदन करने लगे—

हा नाथ! हा कृपाधीश! हा स्वामिन्! हा महामते! हा बिना कारण समस्त जगत के बन्धु! हा प्रजाधीश! हा शुभ! हा तात! हा गुणमन्दिर! हा मित्र! हा शुभाकर! हा ज्ञानिन्! यह तुमने बिना समझे क्या कर डाला? आप ज्ञानी थे। आपको ऐसा करना सर्वथा अनुचित था।

महाराज की मृत्यु से नन्दश्री और रानी चेलना को परम दु:ख हुआ। उनकी आँखों में अविरल अश्रुधारा बह निकली। उन्होंने

शीघ्र ही अपने केश उखाड़ दिये, छाती कूटने लगीं, हार तोड़ दिये। हाथ के कंकण तोड़कर फेंक दिये, हाहाकार करती जमीन पर गिर गयीं और मूर्छित हो गयीं। शीतोपचार से बड़े कष्ट से रानी को होश में लाया गया। ज्यों ही रानी होश में आयी तो उसे और भी अधिक दु:ख हुआ। वह पति बिना चारों ओर अपना पराभव देख इस प्रकार विलाप करने लगी—

हा प्राणबल्लभ! हा नाथ! हा प्रिय! हा कान्त! हा दयाधीश! हा देव! हा शुभाकर! हा मनुष्येश्वर! मुझ पापिनी को छोड़ आप कहाँ चले गये? हाय! मुझे अशरण निराधार आपने कैसे छोड़ दी?

रनवास के इस प्रकार रोने पर समस्त पुरवासी जन और स्त्रियाँ भी असीम रुदन करने लगीं। पश्चात् राजा कुणिक ने महाराज का संस्कार किया। रानी चेलना द्वारा रोके जाने पर भी मिथ्यादृष्टि राजा कुणिक ने 'महाराज सीधे मोक्ष जावें' इस अभिलाषा से सर्वथा व्रत रहित ब्राह्मणों के लिये गौ, हाथी, घोड़ा, घर, जमीन, धन आदि का दान दिया तथा और भी अनेक विपरीत क्रियाऐं की!

❀ ❀ ❀

कदाचित् रानी चेलना सानन्द बैठी थी कि अकस्मात् उसके चित्त में ये विचार उठ खड़े कि यह संसार सर्वथा असार है तथा संसार से सर्वथा भयभीत हो वह इस प्रकार सोचने लगी—

संसार में न तो पिता का स्नेह पुत्र में है और न पुत्र का स्नेह पिता में है। समस्त जीव स्वेच्छाचारी हैं और जब तक स्वार्थ रहता है, तभी तक आपस में स्नेह करते हैं। संसार में सम्पत्ति यौवन और ऐन्द्रियक सुख भी अस्थिर हैं। भोग ज्यों-ज्यों भोगे जाते हैं, उनसे तृप्ति तो बिल्कुल नहीं होती किन्तु कोष्ठ से अग्नि-ज्वाला जैसी

बढ़ती चली जाती है, उसी प्रकार भोग भोगने से और भी अभिलाषा बढ़ती ही चली जाती है।

कदाचित् तैल से अग्नि की और जल से समुद्र की तृप्ति हो जाए किन्तु इन्द्रियभोग भोगने से मनुष्य की कदापि तृप्ति नहीं हो सकती। अनेक बड़े-बड़े पुरुष पहिले घर-परिवार का त्याग कर गये, अब जा रहे हैं और जाएँगे। मैं केवल पुत्र के मोह से मोहित हो घर में कैसे रहूँ? विषयभोग से जीव निरन्तर पाप का उपार्जन करते रहते हैं और उस पाप की कृपा से उन्हें नियम से नरक जाना पड़ता है।

हजार कण्टकों के धारक प्राणी के स्पर्श से जैसा दु:ख होता है, उससे भी अधिक जीवों को नरक में दु:ख भोगना पड़ता है। संसार में जो स्त्रियाँ दूसरे मनुष्यों की अभिलाषा करती हैं, नियम से वे पूर्वपापोदय से लोहे की तप्त पुतलियों से विपकायी जाती हैं। जो मनुष्य परस्त्रियों के साथ विषय भोगते हैं, उन्हें नरक में स्त्री के आकार की तप्त पुतलियों के साथ आलिंगन कराया जाता है।

जो मूर्ख यहाँ शराब गटकते हैं, हाहाकार करते हुए भी उन मनुष्य को जबरन लोह पिघलाकर पिलाया जाता है। जो यहाँ बिना छने जल में स्नान करते हैं, नारकी उन्हें तप्त तेल की भरी कढ़ाई में जबरन स्नान कराते हैं। जो पापी मोहवश यहाँ परस्त्रियों के स्तनमर्दन करते हैं, नारकी उन्हें मर्मघाती अनेक शस्त्रों से पीड़ा देते हैं। नरकों में अनेक नारकी आपस में लड़ते हैं, अनेक पैने हथियारों से और नखों से छिन्न-भिन्न होते हैं। अनेक अग्नि में डालकर मारे जाते हैं और आपस में अनेक पीड़ा सहते हैं।

नरक में रात-दिन भवनवासी देव भिड़ाते हैं। इसलिए एक नारकी दूसरे नारकी को आपस में बुरी तरह मारता है, मुष्टियों से

पीस देता है, इस रीति से नारकी सदा पूर्व पापोदय से नरकों में दु:ख भोगते रहते हैं—नरक में जीवन पर्यन्त क्षणभर भी सुख नहीं मिलता, किन्तु तीव्र दु:ख का सामना करना पड़ता है। तिर्यंचों पर भी हमेशा विविध प्रकार का दु:ख बना रहता है। बेचारे तिर्यंचों पर अधिक बोझ लादा जाता है, उन्हें भूख-प्यास से पीड़ित रखा जाता है, जिसमें तिर्यंचों को असह्य वेदना भोगनी पड़ती है।

आपस में भी तिर्यंच एक-दूसरे को दु:ख दिया करते हैं। मनुष्यों द्वारा भी वे अनेक दु:ख भोगते हैं एवं जब बलवान तिर्यंच दूसरे निर्बल तिर्यंच को पकड़कर खा जाता है, तब भी उन्हें अनेक दु:ख भोगने पड़ते हैं। मनुष्य भव में भी जब मनुष्यों के माता-पिता-पुत्र-मित्र मर जाते हैं। उस समय उन्हें अधिक दु:ख होता है।

धनाभाव, दरिद्रता, सेवा आदि से भी अनेक दु:ख भोगने पड़ते हैं। देवगति में भी अनेक प्रकार के मानसिक दु:ख होते हैं। मरण काल में भी माला सूख जाने से और देवांगनाओं के वियोग से भी देवों को अनेक दु:ख भोगने पड़ते हैं। दुष्ट देवों द्वारा भी अनेक दु:ख सहने पड़ते हैं।

इस प्रकार सर्वथा दु:खप्रद चतुर्गतिरूप संसार में चारों ओर दु:ख ही दु:ख भरा हुआ है, रंचमात्र भी सुख नहीं। इस रीति से चिरकालपर्यन्त विचार कर रानी चेलना भवभोगों से सर्वथा विरक्त हो गयी और शीघ्र ही भगवान महावीर के समवसरण की ओर चल दी।

समवसरण में जाकर रानी ने तीन प्रदक्षिणा दीं, भक्तिपूर्वक पूजा और स्तुति की और यति धर्म का व्याख्यान सुना, पश्चात् चन्दना नाम की आर्यिका के पास गयी। आर्यिका माता को भक्तिपूर्वक

नमस्कर कर अनेक रानियों के साथ शीघ्र ही संयम धारण कर लिया और चिरकाल तक तप किया।

आयु के अन्त में संन्यास लेकर और ध्यान बल से प्राण परित्याग कर निर्मल सम्यग्दर्शन की कृपा से स्त्रीवेद का त्याग किया और महान ऋद्धि का धारक अनेक देवों से पूजित देव हो गया।

स्वर्ग के अनेक सुख भोग भविष्यत् काल में चेलना का जीव नियम से मोक्ष जाएगा। रानी चेलना के सिवाय और जितनी रानियाँ थीं, वे भी तप कर और प्राणों का परित्याग कर यथायोग्य स्थान गयीं!

इस प्रकार चेलना आदि रानियाँ समस्त पापों का नाश कर पुरुषवेद पाकर स्वर्ग गयीं और वहाँ देव हो अनेक मनोहर देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा कर भोग भोगने लगीं।

महाराज श्रेणिक भी सप्तम नरक की प्रबल आयु का नाश कर रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में गये तथा वहाँ पापफल का विचार करते हुए और अपनी निन्दा करते हुए रहने लगे। जब वे चौरासी हजार वर्ष नरक दु:ख भोगकर और वहाँ की आयु को छेदकर भविष्यत् काल में प्रथम तीर्थंकर होंगे और कर्म नाश कर सिद्धपद प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार तीर्थंकर पद्मनाभ के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चरित्र में श्रेणिक, चेलना आदि गति वर्णन करनेवाला चौदहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

पन्द्रहवाँ सर्ग

भविष्यकाल के तीर्थंकर पद्मनाभ का पंच कल्याण वर्णन

समस्त पदार्थों के प्रकाश करने में सूर्य के समान, भावि तीर्थंकर श्री पद्मनाभ भगवान को नमस्कार कर स्वकल्याण सिद्ध्यर्थ उन्हीं भगवान के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित पाँच कल्याणों का वर्णन करता हूँ।

उत्सर्पिणी काल के एक हजार वर्ष बाद अतिशय चतुर उत्तम ज्ञान के धारक चौदह कुलकर 'मनु' होंगे और वे अपने बुद्धिबल से प्रजा को शुभ कार्य में लगावेंगे। उन सबमें शुभकर्ता, अनेक देवों से पूजित, अनेक गुणों के आकर, अपनी किरणों से समस्त अन्धकार को नाश करनेवाले गम्भीर, अनेक आभरणों से शोभित और अतिशय प्रसिद्ध तीर्थंकर पद्मनाभ के पिता अन्तिम कुलकर महापद्म होंगे।

कुलकर महापद्म मुख से चन्द्रमा को, नेत्रों से ताराओं को, वक्ष:स्थल से शिला को, दाँतों से कुन्दपुष्प को और बाहुयुग्म से शेषनाग को जीतेंगे। अनेक राजाओं से वन्दित राजा महापद्म में उत्तमोत्तम गुण, रूप, समस्त कलायें, शील, यश आदि होंगे।

महापद्म अपने उत्तम बुद्धि बल से जीवेंगे। मनोहररूप से कामदेव की तुलना करेंगे, निरन्तर विभूति के प्रभाव से देवतुल्य और अपने शरीर की कान्ति से सूर्य के समान होंगे। महापद्म के रहने के लिये इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अनेक रत्नों से जड़ित, मनोहर भूमियों से शोभित, अयोध्यानगरी का निर्माण करेगा।

अयोध्या का परकोटा मनोहर किरणों से व्याप्त मुक्ताफल और भी अनेक रत्नों से निर्मित स्वर्ग की समता को धारण करेगा और घर स्वर्ग घरों के साथ स्पर्धा करेंगे। अयोध्या के घर विमानों को जीतेंगे। मनुष्य देवों को, स्त्रियाँ देवांगनाओं को, राजा इन्द्रों को और वृक्ष कल्पवृक्षों को नीचा दिखायेंगे।

अयोध्या में रहनेवाली कामिनियों के मुख से चन्द्रमण्डल जीता जाएगा। नखों से तारागण, मनोहर नेत्रों से कमल और गमन से हाथी पराजित होंगे। अयोध्यापुरी के महलों पर लगीं ध्वजाएँ चन्द्र मण्डल का स्पर्श करेंगी। अयोध्यापुरी का विशेष कहाँ तक वर्णन किया जाए? जिनेन्द्र के रहने के लिये कुबेर इन्द्र की आज्ञा से उसे एक ही बनावेगा, और जहाँ अनेक राजाओं से पूजित चौतरफा अपनी कीर्ति प्रसार करनेवाले अतिशय मनोहर पुण्यवान, चतुर, सुन्दर और सात हाथ शरीर के धारक कुलकर महापद्म रहेंगे। महापद्म की प्रिया भार्या सुन्दरी होगी।

सुन्दरी अतिशय शरीर की धारक, पद्म के समान सुन्दर, रति के समान होगी। उसके केश अतिशय देदीप्यमान और उत्तम होंगे। मुख कमल की सुगन्धि से उसके मुख पर भौंरे गिरेंगे और उसके सिर पर रत्नजड़ित देदीप्यमान चूड़ामणि शोभित होगा। अतिशय तिलक से युक्त उसका भाल अतिशय शोभा को धारण करेगा और वह ऐसा मालूम पड़ेगा मानो त्रिलोक की स्त्रियों के विजय के लिये विधाता ने एक नवीन यन्त्र रचा हो।

कानों तक विस्तृत विशाल और रक्त उसके नेत्र होंगे और वे पद्मदल की शोभा धारण करेंगे। सुन्दरी की भृकुटियों के मध्य में ओंकार अतिशय शोभा को धारण करेगा।

विधाता उसे समस्त जगत को वश करने के लिये निर्माण करेगा, ऐसा मालूम पड़ता है। दाँतरूपी अनुपम केसर का धारक, नासिका रूपी विश से मनोहर व श्रोष्ठरूपी पल्लवों से व्याप्त उसका मुखकमल अतिशय शोभा धारण करेगा। मनोहर कम्बु के समान सुन्दर, तीन रेखा की धारक, मुखरूपी घर के लिये खम्भे के समान कोकिला ध्वनियुक्त उसकी ग्रीवा अतिशय शोभित होगी।

मुक्ताफल से शोभित भाँति-भाँति के रत्नों से दैदीप्यमान सुन्दरी के वक्षस्थल का हार अतिशय शोभा धारण करेगा और वह ऐसा जान पड़ेगा मानो विधाता ने स्तनकलशों की रक्षार्थ मनोहर सर्प का ही निर्माण किया हो। सुदुर्लभ हाररूपी सर्पों से शोभित चूचुकरूपी वस्त्र से आच्छादित उसके दोनों स्तन मनोहर घड़े के समान जान पड़ेगे। अंगुलीरूपी पत्तों से व्याप्त बाहुरूपी दण्डों का धारक, कंकणरूपी उन्नत केसर में शोभित दोनों करकमल अतिशय शोभा धारण करेंगे।

मनोहरांगी सुन्दरी का कामदेवरूपी हाथों से युक्त मनोहर बिखरे हुए केशरूपी पद्म का धारक कामीजनों की क्रीड़ा का इष्टस्थल नाभिरूपी तालाब संसार में एक ही होगा। सुन्दरी का उन्नत स्तनों के भार से अतिशय कृश कटिभाग अति शोभित होगा, सो ठीक ही है, दो आदमियों के विवाद में मध्यस्थ मारे भय के कृश हो ही जाता है। सुन्दरी के दोनों जानु, कदली स्तम्भ के समान शोभा धारण करेंगे।

कामीजनों को वश करने के लिये वे कामदेव के दो बाण कहलाये जायेंगे, और अनेक शुभ लक्षणों के धारक होंगे। मीन शंख आदि उत्तमोत्तम गुणों से उसके दोनों चरण अत्यन्त शोभित होंगे और नखरूपी रत्नों से युक्त उसकी अंगुली होंगी।

सरस्वती जैसी सर्वगुणा सर्वगुणयुक्त होती है, उसी प्रकार सुन्दरी भी सर्व गुणों से युक्त होगी। सरस्वती जैसी विदोषा—दोषरहित होती है, सुन्दरी भी निर्दोष होगी। सरस्वती उत्तम रीति से दैदीप्यमान होती है, उसी प्रकार सुन्दरी भी अतिशय सुडोल होगी। सरस्वती जैसी अनेक रसों से युक्त होती है, सुन्दरी भी लावण्ययुक्त होगी। सरस्वती जैसी शुभ अर्थयुक्त होती है, सुन्दरी भी अपने अवयवों से सुडोल होगी।

माता सुन्दरी गति से हथिनी को जीतेगी और नयन से मृगी, वाणी से कोकिल, रूप से रति एवं मुख से चन्द्रमा को जीतेगी। भगवान के जन्म के छह मास पहले से अन्त तक पन्द्रह मास पर्यन्त कुबेर इन्द्र की आज्ञा से तीनों काल अमोघ रत्नों की वर्षा करेगा। माता की सेवा के लिये इन्द्र की आज्ञा से छप्पन कुमारियाँ आवेगी और राजा को नमस्कार कर राजमहल में प्रवेश करेंगी।

किसी समय कमलनेत्रा रानी सुन्दरी शयनागार में अपनी मनोहर शैया पर शयन करेगी। अचानक ही वह रात्रि के पिछले पहर में ये स्वप्न देखेगी।

1. जिससे मद चू रहा है, ऐसा सफेद हाथी।
2. उन्नत स्कन्ध का धारक नाद करता हुआ बैल।
3. हाथी को विदारण करता बलवान केहरी।
4. दुग्ध से स्नान करती लक्ष्मी।
5. भ्रमरों से व्याप्त उत्तम दो मालाएँ।
6. सम्पूर्ण चन्द्रमा।
7. अन्धकार का नाशक प्रतापी सूर्य।

8. जल से किलोल करती दो मछलियाँ।
9. दो उत्तम घड़े।
10. अनेक पद्मों से व्याप्त सरोवर।
11. रत्न मीन आदि से युक्त विशाल समुद्र।
12. मणिजड़ित सोने का सिंहासन।
13. अनेक देवांगनाओं से शोभित सुरविमान।
14. नागेन्द्र का घर।
15. रत्नों का ढ़ेर और
16. निर्धूम वह्नि।

तथा उन्नत देह के धारक पवित्र किसी हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते भी वह सुन्दरी देखेगी।

प्रात:काल में वीण, डंका, शंख आदि के शब्दों से और मागधों की स्तुति के साथ रानी पलंग से उठाई जाएगी और शैया से उठते समय वह प्राची दिशा में जैसे सूर्य उदित होता है, वैसी शोभा धारण करेगी। महाराणी उठकर स्नान करेगी और सिर पर मुकुट, कण्ठ में ललित हार, हाथों में कंकण, भुजाओं में बाजूबन्ध, कानों में कुण्डल, कमर पर करधनी एवं पैरों में नूपूर पहनेगी तथा अपने स्वामी राजा महापद्म के पास जाएगी और सिंहासन पर उनके वामभाग में बैठकर चित्त में हर्षित हो इस प्रकार कहेगी—स्वामिन्! रात्रि के पिछले प्रहर मैंने १६ स्वप्न देखे, कृपाकर उनका जैसा फल हो, वैसा आप कहें। रानी के ऐसे वचन सुन राजा महापद्म इस प्रकार कहेंगे—

प्रिये! मृगाक्षि! जो तुमने मुझसे स्वप्नों का फल पूछा है। मैं

कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो, जिससे तुम्हें सुख मिले। स्वप्न में हाथी के देखने का फल तो यह है कि तेरे पुत्ररत्न उत्पन्न होगा।

बैल का देखने का फल यह है कि वह तो तीनों लोक में अतिशय पराक्रमी होगा।

तूने जो सिंह देखा है, उसका फल यह है कि तेरा पुत्र अनन्त वीर्यशाली होगा और दो मालाओं के देखने से धर्मतीर्थ का प्रवर्तक होगा।

जो तूने लक्ष्मी को स्नान करते देखा है, उसका फल यह है कि मेरुपर्वत पर तेरे पुत्र को ले जाकर देवगण क्षीरोदधि के जल से स्नान करावेंगे। चन्द्रमा के देखने से तेरा पुत्र समस्त जगत को आनन्द प्रदान करनेवाला होगा। सूर्य के देखने का फल यह है कि तेरा पुत्र अद्वितीय कान्तिधारक होगा। कुम्भ के देखने से अगाध द्रव्य का स्वामी होगा। मीन के देखने से तेरा पुत्र सुख का भण्डार होगा और उत्तमोत्तम लक्षणों का धारक होगा।

समुद्र के देखने का फल यह है कि तेरा पुत्र ज्ञान का समुद्र होगा और जो तूने सिंहासन देखा है, उससे तेरा पुत्र तीनों लोक के राज्य का स्वामी होगा। देवविमानों के देखने से बलवान और पुण्यवान होगा। तूने जो नागेन्द्र का घर देखा है, उसका फल यह है कि तेरा पुत्र जन्मते ही अवधिज्ञान का धारक होगा।

चित्र-विचित्र रत्नराशि देखने से तेरा पुत्र अनेक गुणों का धारक होगा। निर्धूम अग्नि के देखने का यह फल है कि तेरा पुत्र समस्त कर्म नाश कर सिद्धपद प्राप्त करेगा और तूने जो मुख में हाथी प्रवेश करते देखा है, उसका फल यह है कि तेरे शीघ्र पुत्र होगा।

राजा के मुख से ज्यों ही रानी स्वप्नफल सुन हर्षित होगी, त्यों

ही महान पुण्य का भण्डार महाराज श्रेणिक का जीव नरक की आयु का विध्वंसकर रानी सुन्दरी के शुभ उदर में जन्म लेगा।

तीर्थंकर पद्मनाभ का आगमन अवधिज्ञान से विचार देवगण अयोध्या आयेंगे। तीर्थंकर के माता-पिता को भक्तिपूर्वक प्रणाम करेंगे। उन्हें उत्तमोत्तम वस्त्र पहनायेंगे। भगवान क गर्भकल्याणक कर सीधे स्वर्ग चले जाएँगे और वहाँ समस्त पुण्यों के भण्डार समस्त कर्म नाश करनेवाले भगवान तीर्थंकर की कथा सुन आनन्द से रहेंगे।

छप्पन कुमारियाँ माता की भोजनादि से भक्तिपूर्वक सेवा करेंगी। आज्ञानुसार माता का स्नपन विलेपन आदि काम करेंगी। कोई कुमारी माता के पैर धोयेगी। कोई उनके सामने उत्तमोत्तम पुष्प लाकर धरेंगी। कोई माता की देह से तेल मलेगी। कोई क्षीरोदधि जल से माता को स्नान करायेगी। कोई पूजा, मांड-लाडू, खीर, उर्द, मूंग के स्वाद दही और भी भाँति-भाँति के व्यंजन माता को देगी। कोई माता के भोजनार्थ उत्तमोत्तम भोजन बनाने के लिये उत्तमोत्तम पात्र देगी। कोई-कोई माता की प्रसन्नता के लिये हाव-भावपूर्वक नृत्य करेगी। कोई माता की आज्ञानुसार बरताव करेगी और कोई कुमारिका अपने योग्य बरताव से माता के चित्त को अतिशय आनन्द देगी।

कोई-कोई सुन्दरी कत्था, चूना, सुपारी रखकर सुन्दरी को पान देगी। कोई उसके गले में अतिशय सुगन्धित माला पहनायेगी। कोई-कोई माता के लिये मनोहर शैया का निर्माण करेगी और कोई रत्नों के दिया लगायेगी और कोई-कोई कुमारी माता के मस्तक पर मुकुट, कान में कुण्डल, हाथ में कंकण, गले में हार, नेत्र में

काजल, मुख में पान, मस्तक पर तिलक, कमर में करधनी, नाक में मोती, कण्ठ में कण्ठी, पैर में नूपुर, पाँव की अंगुलियों में बिछिये पहिनायेगी।

जब नौवाँ महिना पास आ जाएगा, तब कुमारियाँ माता के विनोदार्थ क्रियागुप्त, कर्तृगुप्त, कर्मगुप्त और प्रहेलिका कहकर माता को आनन्द बढ़ायेंगी। कोई पूछेंगी, बता माता-शरीर का ढ़कनेवाला कौन हैं? चन्द्रमण्डल में क्या है? और पाप की कृपा से जीव कैसे होते हैं? माता उत्तर देगी—सभा विभा अभा:

कुमारियाँ फिर पूछेंगी, बता माता-जीवों का अन्त में क्या होता है? कामी लोग क्या करते हैं? ध्यान के बल से योगी कैसा होता है? माता उत्तर देगी—1. विनाश, 2. विलास, 3. विपाश।

कोई कुमारी क्रियागुप्त श्लोक कहकर माता से पूछने लगेगी—

शुभे[1] द्य जन्मसन्तानसंभवं कल्विषं धनं।
प्राणिनां भ्रूणभावेन विज्ञानशत पारगे॥

इसमें क्रिया कौन[2] है? कोई कहने लगी, बता माता—

आनन्दयन्तु लोकानां मनांसि वचनोत्करैः।
मातः कर्तृपदं गुप्तं बदभ्रूण विभावतः॥

इसमें कर्ता[3] कौन है? कोई कहने लगी, बता माता—

1- हे अनेक विज्ञानों की आकर! शुभे! गर्भ के प्रभाव से जीवों के अनेक जन्मों से चले आये वज्रपापों का नाश करो।

2- इसमें 'दो अवखण्डने' धातु का लोटके मध्यम पुरुष का एक वचन 'द्य' क्रियापद है।

3- लोगों के मन, वचनों से आनन्द प्राप्त हों। हे माता! इसमें कर्तृपद गुप्त है, गर्भ के प्रभाव से आप कहें। इस श्लोक में मनांसि कर्ता है।

[1]सुधीमनसम्पन्ना लाभन्ते किंनराः क्वचित्।
स्वकर्मबशगा भीमे भवे विक्षिप्तमानसाः॥

इसमें कर्म क्या है?

कोई-कोई कुमारी कहने लगी—माता! तुम समस्या पूरण करने में बड़ी चतुर हो। इस समय तुम गर्भवती भी हो।'मुनिर्वेश्यायते सदा' इस समस्या की पूर्ति करो। माता ने जवाब दिया—

[2]नरार्थं लोकयत्येव गृहीत्वार्थं विमुञ्जति।
धत्ते नाभिविकारं च मुनिर्वेश्यायते सदा॥

दूसरी कुमारी बोली—माता! वली वेश्यायते सदा॥1॥ धरायां संगतं नमः॥2॥ इन दो समस्याओं की पूर्ति जल्द करो। माता ने जवाब दिया—

[3] स्वपुष्पं दर्शत्येव कुलीना सुपयोधरा।
मधुपैश्चुंव्यमानां च वली वेश्यायते सदा॥1॥
[4] पानीये वालिशैर्नूनं धरास्थे प्रतिबिंबितं।
दृश्यते च शुभाकारं धरायां संगतं नभः॥2॥

1- विशेष चितयुक्त, कर्मों के वशीभूत और नीतिरहित मनुष्य क्या संसार में कहीं उत्तम बुद्धि के धारक हो सकते हैं? कदापि नहीं, इसमें सुधी कर्ता है।

2- जो मुनि परधन की ओर देखता रहता है, धन लेकर धनी को छोड़ देता है और नाभिविकारयुक्त होता है, वह मुनि वेश्या के समान होता है।

3- लता वेश्या के समान आचरण करती है, क्योंकि वेश्या जैसी 'स्वपुष्पं दर्शयति' रजोधर्मयुक्तं होती है, लता भी पुष्प (फूल) युक्त होती है। वेश्या जैसी कुलीनी नीच पुरुषों में लीन रहती है, लता भी कुलीना पृथ्वी में है। वेश्या जैसी सुपवोधरा उत्तम स्तनयुक्त होती है, लता भी उत्तम दुधयुक्त है। वेश्या जैसी मधुपैश्चुंव्यमाना मद्यपज्जनों से चुंव्यमान होती है, लता भी भोरों से चुंव्यमान है।

4- मूर्ख लोग भूमिस्थ पानी में स्पष्टतया आकाश को देखते हैं, इसलिए आकाश भूमि पर कहा जाता है।

[1] दूरस्थैर्दूरतो नूनं नरैर्विज्ञानपारगैः।
इष्यते च शुभाकारं धरायां संगतं नभः ॥3 ॥

कोई कुमारी माता से यह कहेगी, शुभ लक्षणों की आकर— मृगनयनी! प्रियवादिनि! नियम से आपके गर्भ में किसी पुण्यवान ने अवतार लिया है। माता यह झूठ न समझो, क्योंकि जो मनुष्य पक्षपाती और पूज्यों का वंचन करते हैं, संसार में वे अनेक कष्ट भोगते हैं।

इस प्रकार समस्त कुमारियाँ तीनों काल हृदय से माता की सेवा करेंगी और तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, वासुदेव आदि महापुरुषों की कथा कहकर माता का मन आनन्दित करेंगी। प्राय: स्त्रियों के गर्भ के समय उदरवृद्धि, आलस्य, तन्द्रा वगैरह हुआ करते हैं, किन्तु माता के गर्भ के समय न तो उदरवृद्धि होगी, न आलस्य और तन्द्रा होगी, मुख पर सफेदाई भी न होगी।

जब पूरे नौ मास हो जाएँगे, तब उत्तम योग, दिन, चन्द्रमा, लग्न और नक्षत्र में माता उत्तम पुत्ररत्न जनेगी। उस समय पुत्र के शरीर की कान्ति से दिशाएँ निर्मल हो जाएँगीं। भवनवासियों के घर में शंख शब्द होने लगेंगे। व्यन्तरों के घरों में भेरी बजेगी। ज्योतिषियों के घर मेघध्वनि के समान सिंहासन रव और वैमानिक देवों के यहाँ घण्टा शब्द होंगे। अपने अवधि बल से तीर्थंकर का जन्म जान देवगण अपने-अपने वाहनों पर सवार हो अयोध्या आयेंगे।

प्रथम स्वर्ग का इन्द्र भी अतिशय शोभनीय ऐरावत गज पर सवार हो अपनी इन्द्राणी के साथ अयोध्या आयेगा। अयोध्या

1- विज्ञान के वेत्ता पुरुष दूर से आकाश को पृथ्वी पर रखा हुआ समझते हैं।

जाकर इन्द्राणी इन्द्र की आज्ञा से शीघ्र ही प्रसूतिघर में प्रवेश करेगी। वहाँ तीर्थंकर को अपनी माता के साथ सोता देख उनकी गूढ़-भाव से स्तुति करेगी।

माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसलिए इन्द्राणी उस समय एक मायामयी पुत्र का निर्माण करेगी और उसे माता के पास सुलाकर और भगवान को हाथ में लेकर इन्द्र के हाथ में देगी। भगवान को देख इन्द्र अति प्रसन्न होगा और शीघ्र ही हाथी पर विराजमान करेगा। उस समय ईशान इन्द्र भगवान पर छत्र लगायेगा।

सनत्कुमार और महेन्द्र दोनों इन्द्र चंवर ढोरेंगे एवं सबके सब मिलकर आकाश मार्ग से मेरुपर्वत की ओर उसी क्षण चल देंगे। मेरुपर्वत पहुँच इन्द्र भगवान को पाण्डुकशिला पर बैठायेगा। उस समय देवगण एक हजार आठ कलशों से भगवान का अभिषेक करेंगे।

इन्द्र उसी समय भगवान का नाम पद्मनाभ रखेगा, अनेक प्रकार भगवान की स्तुति करेगा और उस समय भगवान का रूप देख तृप्त न होता हुआ सहस्राक्ष होगा। बालक भगवान को इन्द्राणी अपनी गोद में लेगी और अनेक भूषणों से भूषित करेगी। भूषणभूषित भगवान उस समय सूर्य के समान जान पड़ेंगे और दुंदुभि आनक शंख काहलों के शब्दों के साथ नृत्य करते हुए, ताल के शब्दों से समस्त दिशा पूर्ण करते हुए, लयपूर्वक रागसहित सरस गान करते हुए और जय-जय शब्द करते हुए समस्त देव मेरुपर्वत पर भगवान के जन्मकाल का उत्सव मनायेंगे। पश्चात् अनेक देवों से सेवित इन्द्र भगवान को गोद में लेकर हाथी पर विराजमान करेगा।

अनेक शालि धान्य युक्त, बड़ी-बड़ी गलियों से व्याप्त ध्वजायुक्त अनेक मकानों से शोभित अयोध्यापुरी में आयेगा। बड़े-बड़े नेत्रों से शोभित भगवान को पिता के सुपुर्द करेगा। मेरुपर्वत पर जो काम होगा, इन्द्र उस सबको भगवान के पिता महापद्म से कहेगा। पिता -माता के विनोदार्थ इन्द्र फिर नृत्य करेगा एवं भगवान को अनेक भूषण प्रदान कर और भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर इन्द्र समस्त देवों के साथ स्वर्ग चला जाएगा।

इस प्रकार समस्त देवों से पूजित भाँति-भाँति के आभरणयुक्त देह का धारक, अनेक गुणों का आकर बालक पद्मनाभ दिनोंदिन बढ़ता हुआ पिता-माता का सन्तोषस्थान होगा। पद्मनाभ अमृत के परिपूर्ण अपने पाँव के अंगूठे को चूसेगा और पवित्र देह का धारक शुभ लक्षणों का स्थान वह कलाओं से जैसा चन्द्रमा बढ़ता चला आता है, वैसा ही शुभ लक्षणों से बढ़ता चला जाएगा।

अतिशय पुण्यात्मा तीर्थंकर पद्मनाभ के शरीर की ऊँचाई सात हाथ होगी और आयु 116 (एक सौ सोलह) वर्ष की होगी। तीर्थंकर पद्मनाभ की स्त्रियाँ अनेक गुणों से भूषित सुवर्ण के समान कान्ति की धारक शुभ यौवनकाल में अतिशय शोभायुक्त होंगी।

भगवान ऋषभदेव के जैसे भरत चक्रवर्ती आदि शुभलक्षणों के धारक पुत्र हुए थे, वैसे ही तीर्थंकर पद्मनाभ के भी चक्रवर्ती पुत्र होंगे। तीर्थंकर ऋषभदेव के ही समान तीर्थंकर पद्मनाम राज्य करेंगे, नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करेंगे और प्रजावर्ग को षट्कर्म की ओर योजित करेंगे तथा देश, ग्राम, पुर, द्रोण आदि की रचना कराएँगे। वर्णभेद और नृपवंशभेद का निर्माण करेंगे।

राजा लोगों को नीति की शिक्षा देंगे, व्यापार का ढंग सिखलायेंगे

और भोजनादि सामग्री की शिक्षा प्रदान करेंगे। इस रीति से भगवान पद्मनाभ कुछ दिन राज्य करेंगे। पश्चात् कुछ निमित्त पाकर शीघ्र ही भवभोगों से विरक्त हो जाएँगे और सद्धर्म की ओर अपना ध्यान खीचेंगे। भगवान को भवभोगों से विरक्त जान शीघ्र ही लोकान्तिक देव आएँगे और महाराज की बार-बार स्तुति कर उन्हें पालकी में बैठा वन ले जाएँगे।

भगवान तप धारण करेंगे और तप के प्रभाव से मन:पर्ययज्ञान प्राप्त करेंगे और पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। भगवान को केवलज्ञानी जान देवगण आयेंगे और समवसरण की रचना करेंगे। भगवान समवसरण में सिंहासन पर विराजमान हो भव्य जीवों को धर्मोपदेश देंगे। जहाँ-तहाँ विहार भी करेंगे और अपने उपदेशरूपी अमृत से भव्य जीवों के मन सन्तुष्ट कर समस्त कर्मों का नाश कर निर्वाण स्थान चले जाएँगे। जिस समय भगवान मोक्ष चले जाएँगे, उस समय देव आकर उनका निर्वाणकल्याणक मनाएँगे, फिर सानन्द अपनी देवांगनाओं के साथ स्वर्ग चले जाएँगे और वहाँ आनन्द से रहेंगे।

इस प्रकार भगवान पद्मनाभ के पूर्वभव के जीव महाराज श्रेणिक के चारित्र में भविष्यत काल में होनेवाले भगवान पद्मनाभ के पंच कल्याणक वर्णन करनेवाला पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त हुआ।